स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ — भाग ४

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

चतुर्थ भाग

(संशोधित संस्करण)

विश्वानुभूति

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

लखनऊ

तृतीयावृत्ति] सन् १९५०

श्री स्वामी रामतीर्थ

संन्यासाश्रम की अंतिम फोटो

लखनऊ १९०५

दो शब्द

राम की वाणी अमर है। उसमें आत्मज्ञान का अथाह सागर भरा हुआ है। जो कोई निश्चल चित्त से उसमें अवगाहन करेगा, वह अपरोक्ष-ज्ञान से वंचित नहीं रह सकता। रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी वाणी को जिज्ञासुओं के पास पहुँचाने में प्रयत्नशील रहता है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम की वाणी श्री 'रामतीर्थ ग्रन्थावली' के नाम से २८ भागों में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ था। तदुपरान्त सन् १९२९ में यही वाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। अब सन् १९५० में इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागों में प्रारम्भ हुआ है। आज 'विश्वानुभूति' के नाम से इस ग्रन्थावली का यह चतुर्थ भाग पाठकों के हाथों सौंपते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है।

सम्प्रति हमारा सभी राम-प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान दूने उत्साह से राम की इस अमर वाणी के प्रचार में हमारा हाथ बटायें।

हरि ॐ

शिवरात्रि
सम्वत् २००७

रामेश्वरसहायसिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

राम-परिचय

["तीन आधुनिक भारतीय सुधारक ।" लेखक, रायबहादुर लाला बैजनाथजी बी० ए०, जज]

"........तीसरे महापुरुष, जिनसे मेरा घनिष्ट परिचय था और जिनके साथ मैंने काम किया था, पंजाब के स्वामी रामतीर्थ एम्० ए० थे। आप उन उत्तम और उत्कृष्ट आत्माओं में से थे, जो आत्मा की उच्चतम आकांक्षाओं की प्राप्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिए कभी कभी मानव-जाति के मध्य में आया करती हैं। स्वामीजी ने पंजाब के गुजरानवाला ज़िले के एक धर्म-परायण ब्राह्मण-वंश में जन्म लेकर, और कोई पूँजी पास न होते हुए भी, २०-२१ वर्ष की अवस्था में, पंजाब युनिवर्सिटी में, गणित में एम० ए० परीक्षा पास करके नाम पैदा किया। इसके बाद वे लाहौर के फ़ोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज के प्रोफ़ेसर बनाये गये। परन्तु उपनिषदों के महान् सिद्धान्त 'तत्त्वमसि' (वह तू है) की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए वे शीघ्र ही अपने इस पद तथा कुटुम्बियों और मित्रों से सारा सम्बन्ध त्यागकर हिमालय की ओर चल दिये। बगल में उपनिषद् की एक पोथी दबी हुई है, साथी हैं जंगल के पशु-पक्षी और पहाड़ी गंगा का स्वच्छ जल। गरमी, सर्दी और वन की सभी मुसीबतों को झेलता हुआ, जीवन की समस्याओं पर गंभीर विचार में रत, यह नवयुवक बरसों तक लगातार भटकता रहा। कभी वह कैलाश-शिखर पर चढ़ता है, तो कभी कश्मीर में अमरनाथ की यात्रा कर रहा है। यदि आज यमुना के के मूल-स्थान यमुनोत्तरी के दर्शन करने गया है, तो कल गंगा के मूल-स्रोत गंगोत्तरी जायगा। नित्य नदी के तट पर विचार में बराबर दिन-पर-दिन बिता रहा है। इतने पर भी जब वह अनुसन्धान की वस्तु को

प्राप्त न कर सका, तो संसार का अस्तित्व भूलकर उसने अपने शरीर को गंगा में डाल दिया और लो, गंगा ने उसे उठाकर एक चट्टान पर बिठा दिया। अन्त को २६ वर्ष की अवस्था में उसे ध्यान के द्वारा उस वस्तु की प्राप्ति हुई, जिसे वह ढूँढ रहा था।

अब वह अपने आपको भारत की सेवा में लगाने के लिए पहाड़ों से नीचे उतरकर जन-समाज में आता है, और अनेक सम्प्रदायों तथा राष्ट्रों के हज़ारों मनुष्यों को उपदेश देता है। केवल अपनी ज्ञान-पिपासा और मनोहर व्यक्तित्व के बल पर ही वह लोगों को अपना अनुयायी बना लेता है। वह शारीरिक आराम-चैन से बेपरवाह है, जो कुछ सादा-से-सादा भोजन उसे मिल जाता है, कर लेता है, और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के सिवा कोई भी चीज़ कभी अपने साथ नहीं रखता। रुपया-पैसा या वस्त्र अथवा दूसरी चीज़ें ज्यों ही उसे भेंट की जाती हैं, वह दूसरों को दे देता है। इस संन्यासी द्वारा प्रेमी भक्तों के दिये हुए स्वादिष्ट भोजन इस कारण त्याग दिये जाते हैं कि जो लोग सत्य का जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखते हैं, उनके भाग्य में रहता है केवल उच्च विचार और सादा रहन-सहन। न अपनी श्रेष्ठता का व्याख्यान, न आचरणों का अभिमान और न अपनी बड़ाई का भान। जिस किसी का इस स्वामी से संसर्ग हो जाता है, वही उसकी मुस्कराहटों से मोहित हो जाता है, और उसे जान पड़ने लगता है, मानों उसके सब संकट और दुःख उस समय दूर हो गये। उन्हें अध्ययन का अनुराग इतना अधिक था कि थोड़े ही समय में पाश्चात्य धार्मिक और तात्त्विक पुस्तकों का पूरा पुस्तकालय ही पढ़ डाला। उप-निदों के ऋषियों, व्यास, कृष्ण, शङ्कर, बुद्ध के वाक्य उतने ही उनकी जिह्वा के अग्र-भाग पर थे, जितने कि शम्स तबरेज़ और मौलाना रूम के। कांट, शोपेनहार, फिचटे और हिगेल उनके उतने ही परिचित थे, जितने कबीर और नानक। परन्तु उर्दू-काव्य स्वामीजी का विशेष विषय

था और लक्षणों से प्रतीत होता है कि उनके पद्य भारतीयों में वेदान्त के अन्य अनेक प्रमाणभूत श्लोकों की तरह प्रचलित हो जायँगे।

सन् १९०२ में, हम उन्हें जापान होकर अमेरिका जाता हुआ पाते हैं। वहाँ उन्होंने दो वर्ष के काल में अनेक विद्वान् और अग्रणी जनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। अमेरिका की 'ग्रेट पैसिफ़िक रेलरोड कम्पनी' के प्रबन्धकर्ता ने उन्हें 'पुल मैन कार' में स्थान देते हुए कहा था—"उनकी मुस्कराहट दुर्निवार है।" अमेरिका में अपने भक्तों की पूजा-अर्चा से ही उन्हें संतोष नहीं हुआ, वहाँ वे भारत का हित साधन करने के लिए प्रयत्न करते रहे। कार्य करना, निरन्तर कार्य करना, उनका मूल मंत्र था। वे कहते थे—"हमारे सामने ठीक तरह का यज्ञ (बलिदान) अर्थात् दीनों की सेवा और रक्षा करने और इस यज्ञ को इस प्रकार करने का प्रश्न है कि कार्य अपने उद्देश्य को ही नष्ट न कर सके। प्रत्येक भारतवासी को अपने से छोटों को, चाहे वे पद, धन, विद्या या शक्ति किसी में छोटे हों, अपने बच्चों की तरह मानना और उनकी सहायता करना चाहिए और बिना किसी पुरस्कार की इच्छा से माता के उस परम आनन्द को, जो उत्साह और प्रेम-रूपी आत्मिक भोजन के देने से मिलता है, प्राप्त करना चाहिए। यही वास्तविक निष्काम यज्ञ है।" जैसा कि उन्होने अपने निराले ढंग से कहा था—

"आवश्यकता है, सुधारकों की—
उनकी नहीं, जो औरों को सुधारते हैं;
किन्तु उनकी जो अपने आपको सुधारना चाहते हैं।
उनकी नहीं, जिन्होंने विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ प्राप्त की हैं;
किन्तु उनकी, जिन्होंने अपने आप पर विजय पाई है।
अवस्था—ब्रह्मानन्द की जवानी।
वेतन—ईश्वरत्व।
शीघ्र प्रार्थनापत्र भेजो—

जिसमें भिखमंगों की-सी दीन याचना न हो ;
किन्तु हो जिसमें आदेश-पूर्ण निश्चय—
विश्व के सञ्चालक, अर्थात् अपने आपको ।"

पश्चिम में दो वर्ष रहकर स्वामीजी भारतवर्ष लौटे ; परन्तु इतने ही समय में वहाँ की असली ज़िन्दगी का जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, वह किसी दूसरे मनुष्य को बीसों वर्षों में भी नहीं हो सकता था। इस ज्ञान को उन्होंने उदारतापूर्वक अपने लेखों और व्याख्यानों द्वारा अपने देशवासियों के चरणों में रक्खा है। उनके समस्त लेख और व्याख्यान पूर्व के अगाध पाण्डित्य और पश्चिम के व्यावहारिक जीवन की छाप से अङ्कित होते थे। भारत के लिए हल करने योग्य जो प्रश्न हैं, उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

"व्यावहारिक बुद्धि की दरिद्रता के साथ-साथ यहाँ पर जनसंख्या की अधिकता है। शारीरिक श्रम से घृणा, जाति-पाँति के अस्वाभाविक विभाग, विदेश-यात्रा का विरोध, बाल-विवाह और स्त्रियों को व्यापक शारीरिक और बौद्धिक अंधकार में रहने को विवश करना आदि सब बातें इस व्यावहारिक बुद्धि के अभाव के ही अन्तर्गत हैं। पूर्व-पुरुषों से दाय (वरसा) मिले बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जो समाज इस वरसे का त्याग करता है, वह अवश्य बाहर से नष्ट हो जायगा। साथ ही इस अंश के बहुत अधिक होने से भी काम नहीं चलता। जिस समाज में इसका प्राबल्य है, वह भीतर से नष्ट हो जायगा। उन बड़े आदमियों से, जिनके विचार छोटे हैं, देश बलवान् नहीं होता ; परन्तु उन छोटे आदमियों से, जिनके विचार बड़े हैं, देश बलिष्ठ होता है। एक औसत भारतीय घर समग्र राष्ट्र की अवस्था का प्रतिनिधि है। दरिद्रता का हेतु केवल आमदनी की कमी और खानेवालों की हर वर्ष वृद्धि ही नहीं है ; परन्तु निरर्थक और निष्ठुर रीतियों में अनुचित ख़र्च करने की ग़ुलामी भी है। यदि आबादी की समस्या

बिना हल किये छोड़ दी गई, तो राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय मैत्री की सभी चर्चा निष्फल होगी। विदेश-यात्रा से जाति या धर्म के नष्ट होने का विचार दूर करना भी इसकी एक औषध है। यह धारणा त्यागी जानी चाहिए कि बच्चों के होने पर ही स्वर्ग तुम्हारा में प्रवेश निर्भर करता है। विवाह को पूर्ववत् मधुर सम्बन्ध बनाना चाहिए। देश में अयोग्य, असमर्थ, असार, पराश्न-भोजियों की वृद्धि करने के लिए विवाह मत करो। खाँडे की धार पर तुम्हें शुद्धता प्राप्त करना चाहिए। बिना शुद्धता के न वीरता है, न एकता और न शान्ति। शिक्षा के क्षेत्र में, प्रधान कर्तव्य हमारे सामने ग़रीबों और स्त्रियों को शिक्षा देना और अधिक उन्नत देशों में जाकर कृषि-विद्या और कला-कौशल सीखना तथा उन उपयोगी विद्याओं को भारत में खूब फैलाना है। यदि विश्वास की लौ और प्रज्वलित ज्ञान की मशाल तुम्हारे हृदय में सजीव नहीं है, तो तुम एक क़दम भी नहीं बढ़ सकते। ज़बानी जमा-ख़र्च की अपेक्षा प्रकृति की गहराई में रहना, अपने अस्तित्व की गहराइयों को नापना, तुम में जो आन्तरिक वास्तविकता है, जो प्रकृति में भी आन्तरिक वास्तविकता है, उसे अनुभव करना और प्राप्त करना, 'तत्त्वमसि' की जीती-जागती मूर्ति होना, यही जीवन है, यही अमरता है।"

किसी धर्मोपदेशक और किसी समाज-सुधारक ने इस प्रश्न को महामना स्वामीजी से बढ़कर न तो अधिक स्पष्टता से वर्णन किया है और न इस गुत्थी को सुलझाया है। खेद इसी बात का है कि भारत में उनके कथनों की सत्यता का अनुभव करनेवाले बहुत थोड़े लोग हैं।

अस्तु। थोड़े दिनों तक मैदानों में काम करने के बाद वे अपने साधारण अध्ययन और ध्यान करने के लिए हिमालय में एकान्तवास को चले गये और ३३ वर्ष की अवस्था में, टिहरी के निकट, स्नान करते समय गंगा में डूबकर उन्होंने यह शरीर त्याग दिया।

उनके उपदेश का सार पूर्व की दार्शनिक बुद्धिमत्ता का जापान और अमेरिका की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से मेल कराना था। "न आत्म-अपकर्ष, न जान-बूझकर सिसक-सिसककर आत्म-हत्या, न संसार से बिलकुल विलगता, न संयम-शून्य और विवेक-रहित वंश-वृद्धि, न अज्ञानता और दासता में तृप्ति, न भूतकाल का विचारहीन और निर्बलकारी संकीर्तन और न वर्तमान तथा भविष्य का विस्मरण ; परन्तु पुराने आडम्बरों का त्याग और अन्धविश्वास का दूरीकरण"—यही उस महान् ऋषि का संदेश है। उनके प्रभाव का उन्हीं के साथ अन्त नहीं हो गया ; वरन् हर साल वह धीरे-धीरे और तत्परता से केवल हमारे नवयुवकों में ही नहीं, प्रत्युत साधु-समाज में भी, जो पहले उनकी उपेक्षा करता और उन्हें संशालु-दृष्टि से देखता था, प्रवेश करता जाता है।

परम ज्ञान और उसका अनुभव

चौथा भाग

१

सत्य का मार्ग

(अमेरिका में १ मार्च १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान)

जैसा कि समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ है, आज के व्याख्यान का विषय है—"सत्य का मार्ग"। पाश्चात्य लोगों के लिए इस शीर्षक के कुछ अर्थ हो सकते हैं, किन्तु वेदान्त की दृष्टि से यह शीर्षक भ्रमात्मक है। 'सत्य' का मार्ग या 'सत्य' के लिए मार्ग एक असंगत बात है। 'सत्य' दूर नहीं है, तो उसका मार्ग फिर कैसे हो सकता है? सत्य अब भी तुम्हारे पास है, वह सदा से तुम्हारा अपना आप, तुम्हारी आत्मा है। तुम अब भी उसमें हो; नहीं-नहीं, तुम स्वयं सत्य हो। तुम वही हो।

इस तरह, "सत्य का मार्ग"—ऐसे शब्दों का व्यवहार करना ही ग़लती है। ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति, आत्मदेव (ब्रह्म) का अनुभव ऐसी वस्तु नहीं है जिसे सिद्ध करना है, ऐसी चीज़ नहीं है जिसे पाना है, ऐसा काम नहीं है जिसे पूरा करना है, वह तो पूरा हुआ ही है। तुम तो अब भी वही हो। तुम्हें केवल इच्छाओं के जाल को जो तुम्हें फँसाये हुए है, तोड़ डालना है, तुमने जो कुछ किया है केवल उसे मिटाना भर है। यदि 'करने' शब्द के विधि-आत्मक अर्थ ग्रहण किये जायँ, तो ईश्वर (सत्य) की प्राप्ति के लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है। अपना कारागार बनाने में तुमने जो कुछ किया है सिर्फ़ उसे मिटा भर दो और फिर तुम ईश्वर ही हो, सत्यस्वरूप ही हो। किन्तु जो कुछ किया जा चुका है उस पर हरताल फेर देने का यह काम कुछ लोगों के लिए अति कठिन हो जाता है। और इसलिए "सत्य के मार्ग" के सम्बन्ध में हम अपने किये हुए को मिटाने की विधि पर विचार करेंगे। अपने बन्धनों को तोडने में कुछ यत्न निस्संदेह करना पड़ेगा। अच्छा, तुम्हें बाँधनेवाले ये फंदे, ये बन्धन, ये ज़ंजीरें और बेड़ियाँ क्या वस्तु हैं? तुम्हारे कान आज इस सत्य का आदर कर सकें या नहीं, अमेरिका वाले और यूरोपीयन लोग इस कथन की सुन्दरता को आज समझ सकें या नहीं, किन्तु इसकी सत्यता में कोई अन्तर नहीं पडने का। सच तो यह है कि तुम्हारी सारी आसक्तियाँ और वासनायें, तुम्हारा राग-द्वेष और सांसारिक प्रेम ही तुम्हारे लिए बेड़ियाँ और ज़ंजीरें बनी हुई हैं। यही तुम्हें बाँधती हैं। यही तुम्हें ईश्वर को नहीं देखने देतीं, यही तुम्हारा कारागार है। तुम्हारी कामनायें तुम्हें बाँधती हैं। तुम दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकते। तुम एक ही समय में परमेश्वर और माया की सेवा नहीं कर सकते। जब तक तुम शरीर के दास हो, तब तक तुम विश्व के विधाता नहीं बन सकते। सत्य, आत्म-तत्व को प्राप्त करना अखिल विश्व का स्वामी बनना है। और कामनाओं को इष्ट बनाना बंधन को स्वीकार करना है। दूसरे शब्दों में

सांसारिक वस्तुओं, स्थूल पदार्थों की इच्छा करना ही तुम्हारी दास्यता, तुम्हारी ग़ुलामी का कारण है। प्रत्येक मनुष्य ईसामसीह (महान् पुरुष) होना चाहता है, प्रत्येक मनुष्य सत्य का अनुभव करना चाहता है, सिद्ध और महात्मा बनना चाहता है, किन्तु इसका मूल्य चुकाने के लिए बहुत ही थोड़े लोग तैयार होते हैं, विरला ही कोई मिलता है।

भारतवर्ष में एक बड़ा कसरती पहलवान था। गोदना गुदवाने के लिए अपनी भुजा पर सिंह की तसवीर खुदवाने के लिए उसे एक नाई की ज़रूरत पड़ी। उसने नाई से अपनी दोनों भुजाओं पर एक बड़ा तेजस्वी सिंह अंकित कर देने को कहा। उसने कहा—मेरा जन्म सिंह राशि में हुआ था, लग्न-घड़ी बड़ी अच्छी थी और मैं बड़ा बहादुर हूँ, ऐसा लोग मुझे समझते भी हैं। नाई ने सुई ली और सिंह चित्रित करना अर्थात् गोदना आरम्भ किया। किन्तु ज़रा-सी सुई चुभाते ही पहलवान को कष्ट मालूम हुआ। साँस खींचकर वह नाई से बोला—"ठहरो-ठहरो, यह क्या कर रहे हो?" नाई ने कहा कि मैं शेर की दुम अंकित करने लगा हूँ। वास्तव में, यह मनुष्य सुई के चुभने की वेदना न सह सका और भद्दा-सा बहाना करके बोला—"तुम यह नहीं जानते कि शौकीन लोग अपने कुत्तों और घोड़ों की दुम कटवा डालते हैं और इसलिए दुमकटा सिंह ही बड़ा बली सिंह समझा जाता है? तुम सिंह की दुम क्यों बनाते हो? दुम की कोई ज़रूरत नहीं।" नाई ने कहा—"बहुत ख़ूब! मैं पूँछ न अंकित करूँगा, सिंह के दूसरे अंग गोदूँगा।" नाई ने फिर सुई उठाई और उसके शरीर में भोंकी। इस बार भी वह न सह सका और झुँझलाकर बोला—"अब तुम क्या करनेवाले हो?" नाई ने कहा—"अब मैं सिंह के कान खींचने लगा हूँ।" पहलवान ने कहा—"अरे नाई! तू बड़ा मूर्ख है। क्या तू यह नहीं जानता कि लोग अपने कुत्तों के कान कटवा डालते हैं? लम्बे कानोंवाले कुत्ते घरों में नहीं रखे जाते। क्या तू यह नहीं जानता कि बिना कानों का ही सिंह

सर्वोत्तम होता है ?" नाई रुक गया। कुछ देर बाद नाई ने सुई उठाई और फिर गोदने लगा। पहलवान उसे न सह सका और बिगड़कर बोला—"अब तू क्या करने लगा है नाई ?" नाई ने कहा—"अब मैं सिंह की कमर गोदने लगा हूँ।" पहलवान ने कहा—"तूने हम लोगों का काव्य नहीं पढा है ? भारतीय कवियों का श्रेष्ठ वर्णन तूने नहीं पढ़ा है क्या ? शेरों की कमर हमेशा बहुत छोटी, पतली, नाममात्र की चित्रित की जाती है। तुझे सिंह की कमर अंकित करने की ज़रूरत नहीं।" अब तो नाई ने अपने रंग और गोदने की सुई फेंक दी और गुदवानेवाले से कहा—"बस, आप सिंह गुदवा चुके !"

यह एक मनुष्य है जो अपने को सिंह राशि में जन्मा बतलाता है; जो बडा पहलवान, बडा कसरती होने का दम भरता है; यह आदमी अपने को शेर कहता है। वह अपने सारे वदन पर सिंह गुदवाना चाहता है, किन्तु सुई का चुभना सह नहीं सकता। अधिकांश मनुष्य ऐसे ही होते हैं जो ईश्वर को देखना चाहते है, वेदान्त का अनुभव करना चाहते है, इसी क्षण, इसी घड़ी में, पूर्ण सत्य को जानना चाहते है, प्रत्येक बात को पूरा कर डालना चाहते हैं, आधे मिनट में ईसामसीह (महान् पुरुष) हो जाना चाहते हैं। पर उस शेर (सत्य) को अपने अन्तःकरण में अंकित करवा लेने का, उस सदाचार रूप शेर को अपने हृदय में चित्रित करवाने का जब समय आता है, तब वे डंक लगते ही भाग खड़े होते है, तब बहानाबाजी करके आगा-पीछा करने लगते है। "वस्तु तो मैं चाहता हूँ, पर दाम न दूँगा।"

ईश्वरानुभव और सत्य को प्राप्त करने के लिए, तुम्हारी प्यारी-से-प्यारी कामनायें और इच्छायें आर-पार छेदी जायँगी, तुम्हें अपनी प्रियतम वासनाओं और आसक्तियों को काटना होगा, तुम्हें अपने समस्त अन्ध विश्वासों और पक्षपातों को मिटा देना होगा, तुम्हें अपनी सकल पूर्व-कल्पित कल्पनाओं को काटकर फेंक देना होगा। नीच और तुच्छ बनाने-

वाली सभी आकांक्षाओं से तुम्हें अपना पिण्ड छुड़ाना होगा, तुम्हें अपने को पवित्र करना पड़ेगा। विशुद्धता, विशुद्धता! विना मूल्य चुकाये तुम ईश्वर को नहीं पा सकते, तुम अपने जन्मजात स्वत्व को लाभ नहीं कर सकते। शुद्ध हृदयवाले सचमुच धन्य है, क्योंकि उन्हें परमेश्वर के दर्शन होंगे; किन्तु हृदय की यह शुद्धता, विमलता क्या वस्तु है? केवल वैवाहिक पापों से बचने ही का नाम हृदय की शुद्धता नहीं है। यह तो उसके अर्थ है ही, किन्तु और भी बहुत कुछ उसके अर्थ में है। आज ये वचन तुम्हें चाहे अच्छे लगें या न लगें; किन्तु एक दिन आयेगा जब ये तुम्हें अवश्य अच्छे लगेंगे, आज या कल तुम्हें इस परिणाम पर पहुँ-चना ही पड़ेगा। तात्पर्य यह कि आसक्ति मात्र, वह चाहे आपको अपने घर से हो, चाहे अपने पिता, माता या बच्चे से और चाहे अपने कुत्ते से हो या अपनी बड़ी से, छोटी-बड़ी किसी चीज़ से हो, सत्य-जिज्ञासु के लिए, तुरन्त ही पूर्ण सत्य पर अधिकार पाने के इच्छुक के लिए वह आसक्ति उतनी ही नीच और दुर्बल बनानेवाली है, जितना कि व्यभिचार। हृदय की शुद्धता का अर्थ है संसार के सब पदार्थों की आसक्ति से अपने आपको मुक्त कर लेना; त्याग, पूर्ण त्याग, उससे इतर कुछ नहीं। यह है हृदय की पवित्रता का अर्थ। शुद्ध अन्तःकरण वाले सचमुच धन्य हैं, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन करेंगे। इस पवित्रता को प्राप्त करो और तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

प्राचीन इतिहास में अटलांटा की एक बड़ी ही सुन्दर कथा है। उसमें ऐसा कहा है कि जो मनुष्य उससे ब्याह करना चाहता था, उसे उसके साथ दौड़ की बाज़ी लगानी पड़ती थी। कोई भी मनुष्य दौड़ में उससे आगे नहीं निकल पाता था। एक ने अपने देवता जूपिटर की शरण ली और दौड़ में अटलांटा से आगे निकल जाने के लिए अपने इष्टदेव से प्रार्थना की। देवता ने उसे एक बड़ी ही विलक्षण राय दी। उसने इस मनुष्य से कहा कि दौड़ के रास्ते पर सोने की ईंटें बिछा दो। सच तो

यह है कि दौड़ में अटलांटा को जीत लेने के लिए कोई और सहायता जूपिटर अपने इस भक्त को नहीं दे सकते थे। अखिल विश्व में सबसे तेज़ और बलवान होने का वरदान अटलांटा को सुरेश (जूपिटर) से पहले ही मिल चुका था। बस, जूपिटर के इस भक्त ने दौड़ के पूरे चक्कर पर सोने की ईंटें डाल दीं। और अटलांटा को अपने साथ दौड़ने के लिए आह्वान किया। दोनों ने दौड़ना प्रारम्भ किया। यह मनुष्य स्वभावतः अटलांटा से बहुत दुर्बल था। एक क्षण में वह उससे आगे निकल गई। किन्तु जब वह मनुष्य उसकी नज़र से ओट हो गया, तब उसकी दृष्टि रास्ते पर पड़ी हुई सोने की ईंटों पर गई और वह उन्हें बटोरने को रुक गई। इस प्रकार जब वह सोने की ईंटें बटोरने में लगी थी, तब वह भक्त उससे आगे निकल गया। इसके एक या दो मिनट बाद उसने फिर उसे पकड़ लिया; किन्तु फिर दौड के चक्कर की बाईं ओर उसे दूसरी ईंट दिखाई दी। वह उस ईंट को उठाने गई और ले आई। इस बीच में जूपिटर का वह भक्त उससे आगे निकल गया; किन्तु कुछ ही देर में अटलांटा ने उसे फिर पकड़ लिया। फिर उसे कुछ और सोने की ईंटें मिलीं। वह उन्हें उठाने के लिए रुकी। इस बीच में वह आदमी फिर आगे निकल गया। यही होता रहा। दौड़ समाप्त होने तक अटलांटा के पास सोने का बड़ा भारी बोझ हो गया। इस बोझे को ढोकर दौड़ में आगे निकल जाना उसके लिए बडा कठिन हुआ। अन्त में वह आदमी जीत गया और अटलांटा हार गई। शर्त के अनुसार अटलांटा के साथ उसका विवाह हो गया। अटलांटा उसे मिल गई। अटलांटा की बटोरी हुई सोने की ईंटें भी उसे मिल गईं। उसे सभी कुछ मिल गया।

धर्म के रास्ते पर और सत्य के मार्ग पर जो लोग चलना चाहते हैं, उनमें से अधिकांश का यही ढंग है। सत्य के मार्ग पर जब तुम चलना शुरू करते हो, तब तुम्हें अपने आस-पास अनेक प्रकार के मायिक आकर्षण और लौकिक प्रलोभन मिलते हैं। किन्तु ज्यों ही तुम उन-

सांसारिक प्रलोभनों तथा सुखों को भोगने के लिए तैयार होगे, त्योंही तुम अपने को पिछड़ा हुआ पाओगे। तुम दौड में हारने लगोगे। अपना समय व्यर्थ गँवा दोगे और अपना पथ कंटकाकीर्ण बना लोगे। नहीं-नहीं, अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठोगे। सांसारिक आसक्ति और भौतिकता से सतर्क रहो। सांसारिक सुखों को भोगते हुए तुम कदापि सत्य को नहीं पहुँच सकते। कहावत है कि यदि तुम सत्य को स्वीकार करोगे, तो सांसारिक सुखों को भोगने के योग्य न रह जाओगे। सांसारिक सुखों को तुम भोगो, तो सत्य तुम्हारे हाथ से निकल जायगा, तुम से आगे बढ जायगा। राम तुमसे आज यथार्थ सत्य कह रहा है। अनेक लोग राम के पास आते है और बार-बार उससे कहते हैं कि वे आत्मानुभव के इच्छुक हैं। तुम इसी क्षण आत्मानुभव कर सकते हो। विषयासक्ति से अपने को मुक्त करलो और ईर्ष्या और राग-द्वेष की जड़ काट डालो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। अच्छा, ईर्ष्या क्या है, घृणा क्या है? वह है औंधा अनुराग। किसी से हम घृणा तभी करते हैं, जब किसी अन्य वस्तु पर हमारी आसक्ति होती है। यहाँ पर तुम प्रश्न करोगे कि अपने लडकों, भाई-बहनों, पति-पत्नियों से हम कैसे छुटकारा पा सकते है। यह तो तुम्हीं जानो। कैसे और किस उपाय से? यह स्वयं तुम्हारे जानने की बात है; किन्तु सच यह है कि सत्य ही तुम्हारा पिता होना चाहिए, सत्य ही तुम्हारी माता, सत्य ही तुम्हारी स्त्री, सत्य ही तुम्हारा बाबा, तुम्हारा शिक्षक, तुम्हारा घर, तुम्हारी दौलत, तुम्हारा सब कुछ होना चाहिए। प्रत्येक पदार्थ से अपनी आसक्ति को हटालो और एक वस्तु, एक तत्व, एक सत्यस्वरूप, एक अपनी आत्मा पर अपने आप को एकाग्र करो; तुरन्त ही, इसी क्षण तुम्हें आत्मानुभव की प्राप्ति होगी।

भारतीय भाषा में एक सुन्दर गीत है, जिसे यहाँ गाने की कोई ज़रूरत नहीं। गीत का अर्थ यह है कि यदि सत्य को पाने के रास्ते में तुम्हारा पिता विघ्नकर्त्ता हो, तो उसी तरह उसे रौंदकर चले जाओ, उसी

तहर उसे पार कर जाओ, जिस तरह भारत के एक वीर बालक प्रह्लाद ने अपने पिता को त्याग दिया था, क्योंकि वह उसके सत्यानुभव के मार्ग में कंटक बना था। यदि सत्य को अनुभव करने के मार्ग में तुम्हारी माता बाधक बनती हो, तो उसे त्याग दो। *यही बात नई इंजील (न्यू टेस्टामेंट) कहती है। हिन्दू इंजील भी यही कहती है। अपने माता-पिता के कल्याण के लिए सत्य को प्यार करो। अपने माता-पिता का वहीं तक आदर करो; जहाँ तक वे सत्य की ओर तुम्हारी उन्नति को नहीं रोकते। यदि तुम्हारा भाई तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में खड़ा होता है, तो उसे उसी तरह दूर कर दो जिस तरह विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण को दूर कर दिया था। यदि तुम्हारी स्त्री तुम्हारी सत्य-प्राप्ति के मार्ग में विघ्नरूप है, तो उसे ठीक भर्तृहरि की तरह दूर हटा दो। यदि तुम्हारा पति तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग में रोडा बनता है, तो मीरा-बाई की भाँति उसे तिलांजलि दे दो। यदि तुम्हारा गुरु, तुम्हारा धर्म-पिता, तुम्हारा पथ-प्रदर्शक, तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग में बाधा डालता है, तो उसे भीष्म की भाँति फेंक दो, परे कर दो, क्योंकि तुम्हारा असली सम्बन्धी, तुम्हारा सबसे सच्चा मित्र, केवल एक सत्य है। और सब नातेदार तथा साथी क्षणस्थायी या अस्थिर हैं, एक दिन के हैं, किन्तु सत्य सदा तुम्हारे माता-पिता की अपेक्षा तुम्हारे अधिक निकट है। तुम्हारी स्त्री, बच्चे, मित्रों की अपेक्षा सत्य तुम्हारे अधिक समीप है। अतएव राजा-प्रजा, माता-पिता, बाल-बच्चे, इष्ट-मित्र—हर एक से सत्य का अधिक सम्मान करो।

भारत के एक राजा के जीवन से एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त मिलता है। वह सत्य के मार्ग का पथिक था। कहते हैं कि बरफ़ में अपनी देह गला देने को वह हिमालय पर चढ रहा था। इसकी बड़ी लम्बी-चौड़ी

* जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। —तुलसीदास

कथा है। तुम्हें समग्र कथा सुनाने की राम को ज़रूरत नहीं है। किसी कारण से, किसी गुरुतर कारण से वह अपनी स्त्री और अपने चार भाइयों के साथ हिमालय की चोटियों पर चढ़ रहा था। कहते हैं कि ऐसा करके वह धर्म-पथ पर चल रहा था, वह सत्य के अन्वेषण के लिए जा रहा था। वह आगे चल रहा था, बढ़ता चला जाता था। उसका छोटा भाई उसके पीछे जा रहा था और उसके छोटे भाई के बाद उसका एक और भाई था और इस तरह पर ठीक क्रम से सब भाइयों के पीछे इस राजा की अर्द्धाङ्गिनी थी। वह आगे जा रहा है, उसका मुख अपने लक्ष्य की ओर है और आँखें सत्य पर जमी हुई हैं। उसने सुना कि उसकी रानी उसके पीछे विलाप कर रही है। उसके पैर लड़खड़ाते थे, वह उसका पीछा नहीं कर सकती थी, वह थक गई थी और मरणासन्न थी। किन्तु राजा ने अपना मुख उसकी ओर नहीं फेरा। उसने अपनी स्त्री से कहा, कुछ कदम बढ़ाकर मेरे पास आ जाओ, तब मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। आओ, मेरे पास आ जाओ, मुझ तक आ जाओ। किन्तु तीन पग बढ़कर वह उसके पास न पहुँच सकी। वह बहुत पीछे रह गई, उसके पास न पहुँच सकी और राजा भी पीछे नहीं लौटा। सत्य से एक पग भी पीछे लौटने की अनुमति नहीं होना चाहिए। सम्राट् युधिष्ठिर कदापि एक पग भी पीछे न लौटे। स्त्री लड़खड़ाकर गिर जाती है, किन्तु उसके लिए सम्राट् सत्य की ओर से मुँह नहीं फेर सकता। तुम्हारे पूर्व जन्मों में तुम्हारी हज़ारों स्त्रियाँ हो चुकी हैं और यदि तुम्हारे कुछ भावी जन्म हैं, तो न जाने फिर कितनी बार तुम्हारा विवाह होगा; न जाने कितने तुम्हारे नातेदार हो चुके हैं और भविष्य में कौन जाने कितने सम्बन्धी होंगे। इन सम्बन्धियों और बन्धनों के लिए तुम्हें सत्य से मुँह न फेरना चाहिए। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, कोई चीज़ तुम्हें लौटाने न पाये। अपनी स्त्री की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो। भगवान् का अधिक सम्मान करो। सत्य का सम्पूर्ण मानव जाति से सम्बन्ध है,

आत्मदेव सर्वकालीन है, नित्य है और तुम्हारे सांसारिक बन्धन ऐसे नहीं हैं, वे क्षणिक हैं। इस कानून को ध्यान में रक्खो कि जो कुछ वास्तव में तुम्हारे लिए हितकर है, वह तुम्हारी स्त्री और तुम्हारे साथियों के लिए भी अवश्य हितकर है। यदि तुम्हें समझ पड़े कि अपनी स्त्री से अलग रहने में वास्तव में तुम्हारी भलाई है, तो याद रक्खो कि तुमसे अलग रहना उसके लिए भी वास्तव में हितकर है। यह नियम है। जो सत्य या परमेश्वर तुम्हारे व्यक्तित्व या अस्तित्व के मूल में है, वही तुम्हारी स्त्री के व्यक्तित्व का भी मूलाधार है। सम्राट् युधिष्ठिर की रानी गिर पड़ी। किन्तु, राजा सीधा चला गया और अपने भाइयों से पीछे चले आने को कहा। कुछ देर तक वे उसके साथ दौड़े, किन्तु अब तो सबसे छोटा भाई उसके साथ चलने में असमर्थ हो गया। थकावट के मारे वह लड़खड़ाने लगा और जब गिरने को हुआ, तब चिल्लाया—"भाई ! मेरे भाई युधिष्ठिर ! मैं मरता हूँ, मुझे बचाओ, मुझे....।" राजा युधिष्ठिर ने लक्ष्य (सत्य) से अपनी आँखें नहीं हटाईं; वह बढ़ता ही गया, आगे ही बढ़ता गया। उसने अपने भाई से केवल पुकार कर कहा—"दो या तीन पग दौड़कर मेरे पास पहुँच जाने की हिम्मत करो और फिर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। परन्तु किसी भी कारण से अपने साथ तुम्हें लेने को मैं एक पग भी पीछे नहीं लौट सकता।" वह आगे बढ़ता जा रहा है। सबसे छोटा भाई मर गया। कुछ देर बाद दूसरा भाई चिल्लाया, जो अब सबसे पीछे था और वह भी लड़खड़ाने वाला ही था। उसने सहायता के लिए पुकारा—"भाई ! भैया युधिष्ठिर ! मेरी सहायता करो, मेरी मदद करो, मैं गिरा चाहता हूँ।" किन्तु भाई युधिष्ठिर पीछे नहीं लौटता वह बढ़ा चला जाता है इस तरह सब भाई मृत्यु को प्राप्त हुए, किन्तु महाराजा युधिष्ठिर टस से मस न हुआ। एक पग भी नहीं लौटा। वह चला ही जाता है, धर्म के मार्ग पर वह बढ़ता ही जाता है। आगे चलकर कहानी । है कि जब युधिष्ठिर सत्य की सर्वोच्च चोटी

पर पहुँच गया, जब वह अभीष्ट स्थान पर पहुँच गया, तब स्वयं सत्य-स्वरूप परमात्मदेव उसके सामने आविर्भूत हुआ। जैसा कि हमें इंजील में पढ़ने को मिलता है कि परमेश्वर कपोत के रूप में दिखाई पड़ा। उसी तरह हिन्दू धर्म-शास्त्रों में भी किसी-किसी व्यक्ति को देवदूत या वैकुण्ठपति इन्द्र के रूप में ईश्वर के दर्शन देने की बात हमारे पढ़ने में आती है। इस तरह आगे कथा में वर्णित है कि जब महाराजा युधिष्ठिर सत्य के शिखर पर पहुँच गया, तब मूर्तिमान सत्य ने प्रकट होकर उससे सशरीर वैकुण्ठ चलने को, स्वर्गारोहण करने को कहा। जिस तरह आप इंजील में लोगों का जीते जी स्वर्गारोहण पढ़ते हैं, उसी प्रकार महाराजा युधिष्ठिर से जीते जी स्वर्गारोहण करने की प्रार्थना वाली यह कथा है। तभी अपनी दाहिनी ओर देखने पर राजा को एक कुत्ता अपने पास दिखाई दिया। राजराजेश्वर युधिष्ठिर ने कहा—"ऐ परमात्म-देव! ऐ सत्य! यदि तुम मुझे उच्चतम वैकुण्ठ में ले चलना चाहते हो, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलना पड़ेगा। इस कुत्ते को भी मेरे साथ श्रेष्ठतम स्वर्ग को चढ़ा ले चलिए।" आगे कहानी कहती है कि देहधारी परमेश्वर ने कहा—"महाराज युधिष्ठिर! ऐसा नहीं हो सकता। कुत्ता इस योग्य नहीं है कि सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग को पहुँचाया जाय, कुत्ते को अभी अनेक योनियों में जन्म लेना है, कुत्ते को अभी मनुष्य योनि में जन्म लेना है और उत्तम जीवन व्यतीत करना है। उसे पवित्र और शुद्ध मनुष्य की तरह अभी रहना है और तब वह परम स्वर्ग को चढ़ाया जायगा। तुम सदेह सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग में जाने के योग्य हो; किन्तु कुत्ता नहीं है।" तब तो महाराजा युधिष्ठिर बोले—'ऐ सत्य! ऐ परमेश्वर! मै यहाँ तुम्हारे लिए आया हूँ, न कि स्वर्ग या वैकुण्ठ के लिए। यदि आप मुझे सर्वश्रेष्ठ वैकुण्ठ में ले जाना और वहाँ सिंहासन पर बैठाना चाहते है, तो आपको इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलना पड़ेगा। मेरी स्त्री मेरे साथ न आ सकी, वह धर्म के मार्ग पर डगमगा

गई। मेरा सबसे छोटा भाई मेरे साथ न चल सका, वह सत्य के मार्ग पर कुचिया गया, मेरे दूसरे भाई भी मेरा साथ न दे सके, उन्होंने मुझे छोड़ दिया, वे दुर्बलता के वशीभूत हो गये, वे प्रलोभनों में फँस गये और वे मेरे साथ नहीं चल सके। अकेला यह कुत्ता मेरे साथ आया है। यह कुत्ता है। इसने दुःख-दर्द में मेरा साथ दिया है, यह मेरे प्रयत्नों में मेरा साझी हुआ है, मेरे संग्रामों में इसने हिस्सा लिया है, मेरी चिन्ताओं में हाथ बँटाया है, मेरे साथ इसने परिश्रम किया है। यह कुत्ता है। जब इस कुत्ते ने मेरी कठिनाइयों में, मेरे कठिन प्रयत्नों और झंझटों में मेरा साथ दिया है, तब मेरा वैकुण्ठ या स्वर्ग वह क्यों न भोगेगा? मैं तुम्हारे स्वर्ग या वैकुण्ठ को कदापि न जाऊँगा। यदि तुम इस कुत्ते को मेरे साथ नहीं आने देते, तो मुझे तुम्हारे वैकुण्ठ की ज़रूरत नहीं है।" कथा बताती है कि देहधारी सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर महाराज युधिष्ठिर से कहा—"कृपा करके यह अनुग्रह मुझसे न माँगो, अपने साथ इस कुत्ते को ले चलने के लिए मुझसे न कहो।" किन्तु महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"देव! आप चलते बनिये। आप देहधारी सत्य या परमेश्वर नहीं हैं। आप कोई असुर हैं। आप परमेश्वर या सत्य नहीं हो सकते; क्योंकि यदि आप सत्य होते तो अपने सामने कोई अन्याय क्यों होने देते? क्या आपके ध्यान में नहीं आता कि यदि आप केवल मुझे स्वर्ग का भोग देते हैं और इस कुत्ते को मेरे सुख का साझीदार नहीं बनाते तो आप इस कुत्ते के साथ अन्याय करते हैं; जिसने मेरे कष्टों को बँटाया है। यह अनीति, देहधारी सत्य या परमेश्वर को फबती नहीं है।" कथा बताती है कि इस पर देहधारी सत्य या परमेश्वर अपने सच्चे रूप में प्रकट हुआ और लो, वह कुत्ता, कुत्ता न रह गया बल्कि स्वयं सर्वशक्तिमान महाप्रभु के पूर्ण तेज से युक्त दिखाई पड़ा। उस राजा की परख और परीक्षा हो रही थी और अन्तिम परीक्षा में, अन्तिम कस में, वह सफल सिद्ध हुआ।

इस तरह पर तुम्हें भी सत्य के पथ पर चलना है। यदि तुम्हारे अति नगीची और प्रियतम साथी और कुटुम्बी भी धर्म के रास्ते पर तुम्हारे साथ न चल सके, तो उनको अपने मित्र न समझो और यदि एक कुत्ता सदाचार के पथ में तुम्हार साथ दे, तो उस कुत्ते को तुम्हें अपना अति नगीची और प्रियतम प्राणी समझना होगा। इस तरह तुम्हें अपने धर्माचरण में सहयोग के सिद्धान्त पर अपने मित्र बनाने चाहिए। किसी ऐसे को अपना मित्र न बनाओ, जो तुम्हारी दुष्प्रकृति का पक्षपाती हो। यदि इस सिद्धान्त पर तुम अपने मित्र चुनोगे कि उनमें भी वही कुप्रवृत्तियाँ हैं जो तुम में हैं, तो पीड़ा, चिन्ता और विकट वेदना तुम्हें अवश्य भोगना पडेगी।

एक हिन्दू महात्मा के सम्बन्ध में कहते हैं कि एक बार वह भूखा सड़क पर जा रह था। आप जानते हैं कि हिन्दुस्थान में महात्मा लोग जब भूखे होते हैं, तब पहाड़ या गुफा से उतरकर मार्ग पर विचरते हैं और शरीर-रक्षा निमित्त भोजन माँगने हैं। बहुत कम अवसरों पर ही वे सड़कों पर आते हैं। आम तौर पर वे नगरों से बाहर वनों में रहते हुए ईश्वर के ध्यान में अपना सारा समय बिताते हैं। भूखे महात्मा को भोजन कराया गया। (यदि राम भी कुछ लेता है, तो उसे क्षमा करने के लिये आपके पास यह उचित कारण है।) एक महिला उसके खाने के लिये उत्तम भोजन लाई। उसने रोटी लेकर अपने रूमाल (अंगोछे) में रख ली और भारतीय साधुओं के दस्तूर के अनुसार घर से निकलकर जंगल की राह ली। वहाँ उसने रोटी पानी में डाल दी और भिगोकर खा ली। दूसरे दिन फिर मामूली समय पर वह नगर में आया। फिर वही महिला उसके पास आई और कुछ बहुत ही स्वादिष्ट भोजन उसने उसे खाने को दिया। वह लौट गया। तीसरे दिन भी वही स्त्री स्वादिष्ट आहार लाई, पर साधु को देते समय उसने कहा—"मैं तुम्हारी राह देखा करती हूँ। आज तुम्हारी राह देखते-देखते, दरवाज़े की ओर ताक्ते-ताकते मेरी आँखें दुःखने लगी हैं। तुम्हारे नेत्रों ने मुझे मोह लिया है।"

उस महिला के मुख से निकले हुए ये वचन सुनकर साधु चला और फिर एक दूसरे दरवाजे पर गया, जहाँ उसे कुछ भोजन मिला। उस भोजन को लेकर वह वन में चला गया और उस पहली महिला के दिये हुए भोजन को, जिसने उसके प्रति अपने प्रेमभाव की सूचना दी थी, उसने नदी में फेंक दिया और दूसरी महिला के भेंट किये हुए भोजन को उसने खाया। क्या आप सोच सकते है कि दूसरे दिन उसने क्या किया! लोहे के सूजें को खूब तपाकर उससे अपनी आँखें छेदकर निकाल डालीं और उनको अपने अंगोछे में बाँधकर एक लकड़ी के सहारे बडी कठिनाई से रास्ता टटोलते-टटोलते वह उस महिला के घर पर पहुँचा, जिसने उससे प्रेम प्रकट किया था। उसने महिला को बड़ी उत्सुकता से अपनी राह देखते पाया। साधु की आँखें ज़मीन पर गड़ी हुई थीं। महिला ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि साधु ने अपनी आँखें छेदकर बाहर निकाल ली हैं। ज्योंही वह कोई अति स्वादिष्ट पदार्थ उसे खाने के लिए देने लगी, त्योंही अपने नेत्र-गोलक उसे भेंट करते हुए साधु बोला—"माता! माता! इन नयनों को ले लीजिए, क्योंकि इन्होंने तुम्हें मोहित किया था और तुम्हें बड़ा कष्ट दिया था। इन नेत्रों को अपने पास रखने का तुम्हें पूरा अधिकार है। माँ! तुम्हें इन नयनों की चाह थी। इन्हें लो, अपने पास रक्खो इनको, इन्हें प्यार करो और इनका सुख भोगो, इन नेत्र-गोलकों का तुम जो चाहो सो करो; किन्तु ईश्वर के लिए, दया करके, मेरी अग्रसर गति को, मेरी आध्यात्मिक उन्नति को न रोको। सत्य के मार्ग से ठोकर मारकर मुझे नीचे गिराने की व्यवस्था न करो।"

अरे भाइयो! यहाँ हम देख सकते हैं कि यदि तुम्हारी आँखें तुम्हारी राह में रोड़ा हैं तो उन्हें कैसे निकाल-फेंकना चाहिए। तुम्हारा सारा जीवन अँधेरे में नष्ट हो जाने से यह अच्छा है कि तुम्हारी देह बिना प्रकाश के ही रहे, यही सच्चा मार्ग है।

यदि तुम्हारे नेत्र तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में रोड़े हों, तो उन्हें छेदकर निकाल डालो। यदि तुम्हारे कान तुम्हें फुसलाते और पीछे घसीटते हैं, तो उन्हें काट डालो। यदि तुम्हारी स्त्री, श्री-सम्पति, धन-दौलत या कोई भी चीज़ तुम्हारे सन्मार्ग में विघ्न करती है, तो उसे दूर कर दो। यदि सत्य को तुम उतना ही प्यार कर सको, जितना कि अपनी घरवाली स्त्री अथवा नातेदारों को प्यार करते हो; यदि तुम परमेश्वर, आत्मा या आत्मानुभव को उतनी ही लग्न और रुचि के साथ प्यार कर सको, जितने जोश और उत्साह से अपनी स्त्री को प्यार करते हो; अपनी स्त्री पर जितना प्रेम दिखलाते हो यदि उसका आधा भी तुम परमेश्वर को प्यार कर सको तो इसी क्षण तुम्हें सत्य की प्राप्ति हो जाय। जब धर्म-पथ पर चलना आरम्भ करते हो और प्रारम्भ में मिलनेवाले प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर लेते हो, तब तुम्हें परमेश्वर का अनुभव होने लगता है। प्रारम्भिक प्रलोभनों पर विजय पाने पर तुम्हें क्या मालूम होगा। तब तुम्हें यह रास्ता पहले जैसा ऊटपटांग और सौन्दर्य-हीन न जान पड़ेगा, क्योंकि यह सारा मार्ग बीहड़ नहीं है। कहा जाता है कि सत्य का मार्ग सुई के नाके से भी अधिक तंग है। वेदों में लिखा हुआ है कि सत्य का पंथ छुरे की धार के समान पैना और संकीर्ण है। किन्तु यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। प्रारम्भ में पंथ बहुत पैना और संकीर्ण जान पड़ता है, किन्तु जब आप साधारण प्रलोभनों को जीत लेंगे, तब आगे अत्यन्त सुन्दर और सुखप्रद-मार्ग आपको मिलेगा। आप सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी सहायता करते और प्रत्येक वस्तु को अपना पक्ष लेते हुए पायेंगे। ये कठिनाइयाँ, ये प्रलोभन, ये रुकावटें, ये प्रयत्न और ये विरोध केवल आपको डराने का यत्न करते हैं। ये आपको डराते और धमकाते हैं। किन्तु वास्तव में हानि नहीं पहुँचाते। यदि तुम उनसे आँखें लड़ाकर उनकी आँखें नीची कर सको, उन्हें भयभीत कर सको, तो तुम्हें मालूम होगा कि ये कठिनाइयाँ केवल देखने मात्र की कठिनाइयाँ थीं, कठिनाइयाँ

और प्रलोभन केवल मालूम होने भर की कठिनाइयाँ और प्रलोभन थे। वरंच आप संपूर्ण प्रकृति को अपनी ओर खड़ा हुआ पायेंगे। समग्र सृष्टि को अपनी टहल करने को तैयार पायेंगे। तब आपको यह पता लग जायगा।

एक हिन्दू धर्म-पुस्तक में जो भारत की इलियड (प्रसिद्ध धम-युद्ध पुस्तक) है, और जिसमें संसार के अथवा अन्ततः भारत के सर्वश्रेष्ठ शूर-वीर राम की कथा वर्णित है, कहा हुआ है कि जब वे सत्य को खोजने गये, सत्य के पुनर्लाभ या अनुसन्धान के लिए गये, तब संपूर्ण प्रकृति ने अपनी सेवायें उनके अर्पण कर दीं। कहा जाता है कि बन्दर उनके सैनिक बने और गिलहरियों ने खाड़ी पर पुल बनाने में उनकी सहायता की। कहा गया है कि पक्षियों (जटायू) ने भी उनका पक्ष लेकर शत्रु पर विजय पाने में उनकी सहायता की। कहते है कि पत्थर अपने स्वभाव को भूल गये। पानी में फेंके जाने पर डूबने के बदले पत्थरों ने कहा—"हम इसलिए पानी पर तैरते रहेंगे, ताकि सत्य के पक्ष की विजय हो।" उसमें यह कहा गया है कि वायु और आकाश राम के पक्ष में थे, अग्नि भी इनकी सहायक रही। पवन और तूफान ने भी उनका साथ दिया। अँगरेज़ी-भाषा में एक कहावत है कि वायु और लहरें सदा वीर के अनुकूल रहती है। समग्र प्रकृति उसी समय आप का पक्ष लेने लगती है, जब आप निरन्तर प्रयत्न में लगे ही रहते है, जब आप प्रारम्भिक दिखावटी कठिनाइयों को जीत लेते है। शुरू के प्रलोभनों और झगड़ों को यदि आप जीत लें तो समग्र प्रकृति को आप की चेरी बनना पड़ेगा। सत्य पर डटे रहने का आग्रह करो तो तुम्हें विदित होगा कि तुम किसी साधारण लोक में नहीं रहते हो। दुनिया तुम्हारे लिए अद्भुत चमत्कारों की दुनिया बन जायगी, तुम्हारे चारों ओर अलौकिक घटनायें घटेंगी और धिक्कार उन देवताओं को जो तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में तुम्हारी खिदमत न करें। प्रकृति उत्सुकता के साथ विश्व के

शासक की मुसाहबी कर रही है। आप अखिल विश्व के स्वामी हैं, यदि सत्य के साथ आप डटे हुए हैं, तो आप समग्र संसार के अधिपति हैं।

राम के विचार से जो संसार का एक सर्वश्रेष्ठ महापुरुष है, उस आर्य महात्मा की जीवनी वर्णन करके राम इस व्याख्यान को समाप्त करेगा। उसका नाम है शम्सतबरेज़। एक विचित्र परिस्थिति में इस मनुष्य का जन्म हुआ था। कहानी सच है या झूठी, इससे हमें कोई मतलब नहीं। किन्तु कुछ-न-कुछ सत्य उसमें अवश्य होगा। उसके पिता के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक समय वह अपने देश में बड़ा ही निर्धन मनुष्य था। उस दीन-हीन व्यक्ति ने अपना जीवन पूरी तरह से ईश्वर-ध्यान में बिताया था। वह भूल गया था कि उसका शरीर कभी जन्मा है, वह बिलकुल भूल गया था कि उसकी देह कभी इस लोक में थी भी। उसके लिए दुनिया कभी दुनिया थी ही नहीं। वह परमेश्वर था, पूर्ण ब्रह्म था और जिस तरह कभी-कभी किसी व्यक्ति की सारी देह किसी एक ख्याल से परिपूर्ण हो जाती है, एक ध्यान में पग जाती है, उसी तरह नख से शिखा तक उसकी देह का प्रत्येक रोमकूप ब्रह्मज्ञान से पूर्ण सचेतन हो गया था। कहा गया है कि जब वह सड़कों पर चलता था, तब लोग उसके शरीर के रोमकूपों से यह गीत सुनते थे—"हक़, अनलहक", जिसका अर्थ है—"ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि।" उसकी जीभ पर सदा यह गीत रहता था—"अनलहक, अनलहक़, ब्रह्म मैं हूँ: ब्रह्म मैं हूँ।" साधारण दुनिया के लोग उसके आस-पास जमा हो गये, उन्होंने उसे मार डालना चाहा। उन्होंने उस पर धर्मद्रोह (कुफ्र) का अभियोग लगाया। वह अपने को ब्रह्म क्यों कहता है? किन्तु वह स्वयं ब्रह्म था, उसके लिए देह देह नहीं थी, न दुनिया दुनिया थी। "अनलहक़" शब्द जब उसके मुख से निकलते थे, तब उसे उनका भी ध्यान नहीं होता था। जिस तरह सोया हुआ मनुष्य खर्राटे लेता है, उसी तरह अपनी दृष्टि से

वह बिलकुल परमेश्वर में डूबा हुआ था। और यदि "अनलहक़" शब्द उसके मुख से निकलते थे, तो वे सोये हुए मनुष्य के ख़र्राटों जैसे थे। लोगों ने उसे मार डालना चाहा पर उसके लिए मरना-जीना कैसा! वह शरीर तो था नहीं, तब तुम किसे मारोगे? तुम तो शरीर का बध करोगे, किन्तु उसकी अपनी दृष्टि में तो उस शरीर का कभी अस्तित्व था ही नहीं। उसके शरीर को मार डालो, किन्तु उसको इससे कौन पीड़ा हो सकती थी? कहा गया है कि उसका शरीर सूली पर चढाया गया। आप जानते हैं कि सलीब पर देह रखना एक सहज बात है, किन्तु वहाँ सलीब से भी एक बदतर चीज़ थी। यह एक लोहे की लम्बी छड़ थी जो सिरे की तरफ़ सुई की सी नोकदार थी। इस मनुष्य का हृदय लोहे की इस छड़ के ठीक सिरे पर रख दिया गया। लोहे की छड़ के पैने नुकीले सिरे को उसकी सौर अथवा हृदय-चक्र को छेद कर पार निकलना था। उन दिनों इसी तरह पर मनुष्य मारे जाते थे। आप समझ सकते हैं कि यह सलीब से भी बुरा ढंग है। उसकी देह इसी तरह की सूली पर रक्खी गई। लोग कहते हैं कि जब उसकी देह उस सूली पर रक्खी हुई थी, तब भी उसका चेहरा तेज से दमक रहा था, उसके शरीर के रोम-रोम से वही मधुर गीत निरन्तर निकल रहा था—"अनलहक़, अहम् ब्रह्मास्मि, मै ब्रह्म हूँ, परब्रह्म मैं हू, परब्रह्म मैं हूँ।" शरीर मृत्यु को प्राप्त हो गया है, किन्तु उसके लिए इससे क्या अन्तर पड़ सकता था! इस कथा से आप समझ सकते है कि यदि सत्य के लिए आप को अपनी देह दे देना पड़े, तो दे डालिये। यह अन्तिम आसक्ति, अन्तिम बन्धन भी तोड़ डालिये। सत्य के लिए, सांसारिक आसक्तियों, अनुरागों को दे देने की तो बात ही क्या है, सत्य लिए के आपको केवल सांसारिक आसक्तियों को ही नहीं छिन्न-भिन्न करना पड़ेगा, किन्तु यदि शरीर देने की ज़रूरत पड़े, तो उसे भी दे देना होगा। इसी तरह पर आप सत्य के पथ पर चल सकते है। जब यह मनुष्य उस नुकीली छड़ पर लटक रहा था

तब खून के कुछ बूँद उसकी देह से नीचे टपक रहे थे। कहानी बताती है कि लोहू के उन कतरों को एक युवती ने बटोर लिया। यह जवान लडकी, उसी साधु का सा ही विश्वास रखती थी, इस नौ जवान लडकी के भी वैसे ही विचार थे जैसे प्रचारक के थे; उसने इस जमा किये हुए रक्त को पी लिया। लोग कहते है कि उसके गर्भ रह गया। बात सच हो या झूठ, इससे हमारा विशेष मतलब नहीं है। यदि मसीह निष्कलंक गर्भ से उत्पन्न हो सकता है, तो वेदान्त के अनुसार यह बात भी सत्य हो सकती है, क्योंकि यह एक ऐसा मनुष्य था जो ईसामसीह से कम नहीं था, यथार्थ में अनेक बातों में वह उससे बढा हुआ था। इस युवती के एक लड़का उत्पन्न हुआ जो साधु हुआ; उसी की जीवनी राम आपको सुनाना चाहता है। अपने प्रारम्भ से ही, अपने बचपन से ही वह पूर्ण परमेश्वर था, वह अपने बाप से भी कहीं बढ-चढ कर था। आप विश्वास करें, उसकी जिह्वा से निकली हुई एक अति अपूर्व पुस्तक, एक बहुत बड़ा सद्ग्रन्थ है। इस महापुरुष ने कभी कलम उठाकर उसे नहीं लिखा। कहा जाता है कि उसके मुख से सदा कविता ही निकलती थी, वह जो कुछ भी बोलता था, काव्यमय ही होता था। किन्तु किस तरह का काव्य? तुम्हारे अमेरिकन कवियों का अधम काव्य नहीं। यह यथार्थ में वास्तविक काव्य होता था। ब्रह्मज्ञान के सिवाय और कुछ भी इसमें नहीं था। दिव्य कल्पनाओं से अलंकृत यह अति उत्कृष्ट काव्य बन जाता था। इसका एक-एक शब्द सोने से तौले जाने के योग्य है, यदि उसकी तौल की जा सकती है तो—

इसी मनुष्य के सम्बन्ध में एक बड़ी ही विचित्र बात कही जाती है। एक बार तमाशा करनेवाले लोगों की एक मण्डली आई, आप सरकस या किसी दूसरी तरह का तमाशा समझ लीजिये। बादशाह को उन्होंने तमाशा दिखाया। बादशाह उनसे बहुत ही खुश हुआ और एक हज़ार रुपये इनाम दिये। बाद में बादशाह को बड़ा पश्चाताप हुआ।

निस्सार तमाशों के लिए रोज़-रोज़ हज़ारों रुपये दे डालना महाराज को उचित नहीं जँचा। अपने हज़ार रुपये फेर लेने के लिए उसने एक चाल चली। उसने तमाशेवालों से सिंह का वेष धारण करने के लिए कहा—इस शर्त पर कि यदि शेर का खेल पसन्द आ जायगा तो तुम्हें कोई बड़ी भारी चीज़ इनाम दी जायगी, नहीं तो तुम्हारी सब सम्पत्ति जुर्माने में ले ली जायगी। ये लोग शेर का तमाशा न कर सकते थे, ये शेर का रूप या वेष बनाकर बादशाह को ख़ुश न कर सकते थे। देखिये—हिन्दुस्थान में ऐसे लोग है जो सब तरह के रूप बनाते हैं और कुछ जानवरों के रूपों में भी प्रकट होते है। जिन जानवरों का वेष वे धारण करते हैं उन्हीं का प्रतिरूप वे सब तरह पर हो जाते हैं। किंतु शेर का वेष धारण करना कोई आसान बात न थी। ये लोग इस साधु पुरुष के पास पहुँचे और आँसू बहाकर रोने-धोने लगे। कथा कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टि से तदात्म होने के कारण, समग्र प्रकृति से एक और प्रत्येक से अभेद होने के कारण स्वाभाविक सहानुभूति से इस महा पुरुष का हृदय द्रवीभूत हो गया। और एकदम उसने उन लोगों से कहा कि तुम ख़ुश हो जाओ। मैं सिंह का वेष धारण करूँगा, मै स्वयं शेर का खेल दिखाऊँ गा। आगे कथा यों है कि दूसरे दिन जब बादशाह और उसके दरबारी सब के सब इस प्रतीक्षा में खड़े हुए थे कि तमाशा करने वाली मण्डली का कोई आदमी सिंह की आकृति और रूप बनाकर आता है या नहीं, तब एकाएक, मानों जादू के ज़ोर से, एक सच्चा शेर आँगन में कूद पड़ा। यह सिंह तुरन्त गरजने लगा। इसने बादशाह के बच्चे को झपट लिया और टुकड़े-टुकड़े करके चीर डाला। उसने एक दूसरे लड़के को उठा लिया और उसे भी आकाश में उछाल दिया। आप देखें कि यह उस मनुष्य का काम था जो वास्तव में परब्रह्म और परम-आत्मा था। इस व्यक्ति के लिए "मैं यह छोटा-सा नन्हा शरीर हूँ" यह कल्पना अतीत काल की बात हो चुकी थी। इन शब्दों का उसके लिए

कोई मूल्य ही न था। वह स्वयं परब्रह्म था। वह वही परमेश्वर था जो सिंह के रूप में, सारे चराचर ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट हो रहा है। उसके एक क्षण के विचार ने उसे शेर बना दिया। जैसा तुम सोचते हो, वैसे ही तुम हो जाते हो और यदि तुम अपने आत्म स्वरूप को परमात्मा समझो और अनुभव करो, तो आपके सब विचार और मनोरथ अवश्य सफल होंगे, उसी क्षण पूरे होंगे। इसलिये इस पुरुष का विचार कि मैं सिंह बन सकता हूँ, तुरन्त सफल हुआ और वह सिंह हो गया। तमाशा समाप्त हुआ। लड़के को मारकर महात्मा चला गया। वास्तव में उसे शेर का स्वाङ्ग करने वा न करने से कोई सरोकार न था और न वह इस देह या उस देह का आदर ही कर सकता था। वह व्यक्तियों को माननेवाला नहीं था। दूसरे शब्दों में उसमें देह-बुद्धि का नामोनिशान भी न था। किंतु बादशाह जामे के बाहर हो गया। बादशाह और उसके दरबारी महाकोप की मूर्ति बन गये। उन्होंने इस पुरुष से बदला लेना चाहा। वे उसके पास गये और बोले—"ओ महाराज! ओ महाराज!! कृपा करके इस लड़के को फिर जिला दीजिये। यदि आप उसे मार सकते हैं, तो जिला भी सकते हैं। उसे जीवित कीजिये, जिस तरह ईसा "कुम ब यज़्न अल्लः" कह कर मुर्दों को जीवित करता था, उसी तरह आप ईश्वर के नाम पर उसे जीवित कर दें। 'कुम ब यज़्न अल्ल.' का अर्थ है—"ईश्वर के नाम से उठ खड़े हो, ईश्वर की महिमा बखानो और जी उठो, पुनर्जीवित हो जाओ।" उन्होंने महात्मा से उस लड़के को ईश्वर के नाम पर फिर जिला देने के लिए कहा। महात्मा हँसे और बोले—"ईश्वर के नाम से फिर जी जाओ।" किन्तु लड़का चैतन्य न हुआ। महात्मा ने कहा—"लड़का ईश्वर के नाम पर सजीव नहीं होता है।" उसने फिर कहा—"ईश्वर के लिए जी जाओ।" अब भी लड़का न जिया। महात्मा ने तीसरी बार फिर कहा—"जी जाओ और प्रभु के नाम से उठो और चलो।" किन्तु वह जीवित न हुआ। महात्मा

मुस्कराया और बोला—"कुम ब-यज़्नी", "मेरी आज्ञा से जी जाओ";
मेरे आदेश से जी उठो।" अब तो लड़का जी उठा। "कुम ब यज़्नी",
यह अंतिम सत्य है। "मेरे आदेश से जी उठो।" महात्मा का यह आदेश
सुनते ही लड़का पूर्णरूप से चङ्गा हो गया, सजीव हो गया। लड़का
तो जी उठा, किन्तु लोगों को महात्मा की यह बात अच्छी न लगी।
उन्होंने कहा—"यह महात्मा नहीं, धर्म-द्रोही, काफिर है। यह सम्पूर्ण
कीर्ति ख़ुद ही लेना चाहता है, यह अपने को ईश्वर के बराबर बनाना
चाहता है। इसे मार डालना चाहिए, इसका वध हो जाना चाहिए,
जीते जी इसकी खाल उतार लेनी चाहिए।" महात्मा के लिए ये बातें
अर्थरहित थीं। लोग उसे नहीं समझे थे। वह देह को, क्षुद्र व्यक्तित्व
को परमेश्वर नहीं कह रहा था। वह तो अपनी हाड़-मांस युक्त देह को
इसके पहले ही सूली पर चढ़ा चुका था। यहाँ लोग जीते जी उसकी
खाल उतार लेना चाहते थे। कहानी आगे कहती है कि उस महात्मा
ने तुरन्त अपने नखों को अपने सिर से लगाया और जिस तरह जान-
वरों की खाल उतार कर देह से अलग कर दी जाती है, उसी तरह
अपने ही नखों से महात्मा ने अपनी खाल उतार डाली और काटकर
फेंक दी। इसी अवसर पर रची हुई उसकी एक बड़ी उत्कृष्ट कविता
है। उस गीत का मर्म यह है—"ऐ आत्मा! ऐ मेरे अपने आप!"
वह अपने को सम्बोधन कर रहा है, "जिसके लिए संसार का विष
अमृत है और ऐ आत्मा मेरे अपने आप! जिसके लिए संसार का अमृत
(इन्द्रियों का भोग) विष है, उससे ये लोग कुछ चाहते हैं। संसार
मुरदार है (यहाँ मुरदार का अर्थ इन्द्रियों का भोग है), इसके अति-
रिक्त कुछ और नहीं। दुनिया के सुख केवल निर्जीव शव जैसे है,
उनके सिवा कुछ और नहीं, उन्हीं के पीछे जो दौड़ते हैं वे कुत्तों से
किसी तरह बेहतर नहीं। यहाँ ये कुत्ते आये हुए हैं; इन्हें यह मुरदार
गोश्त खाने को दे दो।" कहानी चाहे सच्ची हो या झूठी, राम को

इससे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु कहानी का तत्व, कहानी की शिक्षा, तुम्हें अपने मन में रखना चाहिए।

सत्य की प्राप्ति के लिए धर्म के रास्ते पर चलने के लिए, सारे अनुरागों को त्याग दो। सांसारिक कामनाओं और स्वार्थपूर्ण आसक्तियों से ऊपर उठो। यदि लौकिक आसक्तियों और स्वार्थमयी इच्छाओं से आप अपने को आज़ाद कर लें, तो फिर सत्य पाने की बात ही क्या है? आप स्वयं इसी क्षण सत्य है। "मुझे अधिक प्रकाश चाहिए और अधिक प्रकाश चाहिए।" यह मूर्खों की प्रार्थना है। तुम्हें ऐसी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं। प्रकाश को बुलाने के लिए आपको ऐसी एक भी प्रार्थना की ज़रूरत नहीं है, यदि आप अपने को इसी पल अभिलाषाओं से शून्य कर ले, यदि आप अपने को सारी सांसारिक प्रीतियों एवं आसक्तियों से स्वतंत्र कर लें तो आपका बेडा पार है। आप समझ लें कि आपकी प्रत्येक इच्छा या कामना आपका एक भाग कतर लेती है, आपको अपने आपका एक छोटा अपूर्णांक बनाकर छोड़ जाती है। पूर्ण मनुष्य का दर्शन हमारे लिए कितना दुर्लभ है! पूर्ण मनुष्य तो अनुभवी पुरुष है, पूर्ण मनुष्य सत्य स्वरूप है। प्रत्येक अभिलाषा या कामना आपको अपनी ही समभिन्न (कसर वाजिन) नहीं, किंतु अपनी ही विषम भिन्न ('कसर ना वाजिन) बना डालती है। दूसरे शब्दों में कामना आपको अपने आपका एक तुच्छ भाग बना देती है और ज्यों-ज्यों कामनायें बढती जाती है, त्यों-त्यों आप तुच्छ होते जाते है। जैसे किसी अंक के नीचे हर में कुछ न रहने से वह पूर्ण होता है, उसी प्रकार आप पूर्ण है। किन्तु ज्यों-ज्यों हर में वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों वह पूर्णांक छोटा एवं तुच्छ होता जाता है। ज्योंही इन अभिलाषाओं, लगनों, स्नेहो, द्वेषों; आसक्तियों और अनुरागों को आप दूर हटा दें, प्रकाश पाने की इच्छा को भी विताडित कर दे, अपने आपको राग-द्वेष से छुडाकर अचल स्थिरता प्राप्त करें, और एक क्षण के लिए ॐ की रट

लगायें, जब आपके मन की कोई भी वृत्ति—किसी भी व्यक्ति, किसी भी देह या किसी भी पदार्थ में न रह जाय, जब आपका यह कामना-भाग, जो आप विभिन्न पदार्थों और इच्छा के पास छोड़ चुके हैं, बिलकुल लोप हो जाय ; त्योंही आप शान्त होकर बैठें, ॐ रटें और विचारें कि आपके अन्दर कौन है ? क्या वह आपका अपना आप नहीं है, जो आपके बालों को बढाता है और आपकी नाड़ियों में ख़ून बहाता है ? क्या वह आपका अपना आप, आत्मा नहीं है, जिसने इस शरीर को रचा है ? यह विचित्र दुनिया भी क्या आप ही के हाथ की कारीगरी नहीं है। निस्सन्देह यह आपकी अपनी ही सृष्टि है। यह समझ लो, यह ख़ूब हृदयङ्गम कर लो। आपके द्वारा सुननेवाला कौन है ? क्या आप ख़ुद ही नहीं हैं ? वह कौन है जो आपके द्वारा देखता है। क्या आप ख़ुद ही नहीं हैं ? आपकी नाड़ियों में ख़ून दौड़ानेवाला कौन है ? क्या आप स्वयं नहीं हैं ? यदि आपका वह अपना आप आत्मा ऐसे अपूर्व काम कर सकता है, तो क्या यह दुनिया भी आप ही की रचना नहीं है। ऐसा समझो और अपने आत्मदेव में आनन्द मनाओ और अपने भीतर से उस आनन्द को प्राप्त करो, अपने निजात्मा ही का सुख लूटो। सर्व-साधारण और असाधारण कामनाओं और अभिलाषाओं को दूर फेंक दो। ॐ ॐ रटो, यदि कुछ पल भी आप ऐसा करें तो सिर से पैर तक आपकी सारा अस्तित्व ज्योतिर्मय हो जाय, जब आप स्वयं ही प्रकाश है तो प्रकाश के लिए प्रार्थना क्यों ? आप तुरन्त प्रकाश हो सकते हैं। अपने को पूर्ण बनाइये, कामनाओं और अनुरागों से छुटकारा पाइये, इस राग-द्वेष से पीछा छुड़ाइये। आसक्ति ही आपको अपने स्वरूप से अलग करती है। जब आप घर पहुँचें तब विचार करें कि किस चीज़ में आपका चित्त लगा हुआ है। यदि आप नाम या यश की चाह में आसक्त हैं तो उसे दूर कर दीजिये। यदि लोकप्रियता की इच्छा के मोहजाल में आप उलझे हुए हैं तो उससे अपने को विरक्त कर लीजिये। यदि

संसार का हित करने की आकांक्षा और अभिलाषा में आपका अनुराग है तो उसे भी त्याग दीजिये। यह एक ग़ैरमामूली-सी बात मालूम होती है। किन्तु दुनिया इतनी दीन-हीन क्यों हो कि वह हर घड़ी आपकी सहायता माँगती रहे!

राम कहता है कि आप अपना कर्तव्य या काम कीजिये पर उसके लिए न तो कोई चिन्ता हो और न इच्छा। अपने काम को करो, अपने काम में सुख अनुभव करो, क्योंकि आपका काम स्वयं सुख या विश्राम है, क्योकि आपका काम आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है। अपने काम में लगे रहिये, क्योंकि काम आपको करना ही है। काम आपको आत्मानुभव कराता है। किसी दूसरे हेतु से काम न कीजिये। स्वतंत्र वृत्ति से अपने काम पर आइये—जैसे एक राजकुमार मनोरंजन के लिए फ़ुटबाल या दूसरा कोई खेल खेलने जाता है, वैसे ही आप अपने काम पर आइये, क्योकि सुख या आनन्द कर्म के रूप में रहता है। हम अपने को स्वतंत्र समझें, न कि किसी भी चीज़ की क़ैद में।

लोग कहते हैं—'कर्तव्य', 'कर्तव्य', 'कर्तव्य' किन्तु 'कर्तव्य' तुम्हारा स्वामी क्यो बने! किसी के प्रति भी अपने को उत्तरदायी मत समझो। आप स्वयं अपने प्रभु हैं। किसी डर को अपने पास मत फटकने दो। राम कहता है कि तुम्हें काम करना होगा, किन्तु यदि तुम कोई दूसरा काम कर रहे हो, जिसे तुमने धार्मिक मान लिया है, जिसे तुमने पवित्र और पुण्य कर्म बना लिया है, और तुम उसमें लगे हुए हो, तो बहुत अच्छा है। जब तुम्हारे हाथ किसी कार्य में नियुक्त नहीं हैं, जब तुम्हारे हाथ खाली हैं, और तुम अपने कमरे में बैठे हुए हो तब अपने प्रभुत्व का आनन्द लूटो, अपने आत्मानन्द का स्वाद चखो। वह सर्वश्रेष्ठ काम है, वहाँ अपने कमरे में, अपने हृदय के सब अनुरागों को दूर कर दो। लोग कहते हैं—"मोह या अनुराग ज़रूरी है, हमसे काम कराने के लिए हेतुओं का होना आवश्यक है।" यह एक मिथ्या कल्पना है। सब

मोहों और आसक्तियों को त्याग दीजिये, अपने को सब कामनाओं से मुक्त कर लीजिये, तुरन्त ही तुम अपने को स्वाधीन पाओगे। तुरन्त ही तुम अपने कंधों पर कोई ज़िम्मेदारी या भार लदा हुआ न देखोगे। तुम्हारे कंधों पर जो बोझ है, उन्हें तुमने स्वयं लादा है। तुम्हारे बोझ को उतरवाने के लिए किसी के भी आने की ज़रूरत नहीं है। जब तुम अपने कंधों पर कोई भार नहीं पाते हो, जब तुम अपने प्रिय पदार्थों को अपने आप ही में पाते हो, जब तुम इस वेदान्त के तत्व को वर्ताव में लाते हो, तब अपने आप आपका सारा अस्तित्व प्रकाशरूप हो जाता है। स्वयं प्रकाशों के प्रकाश होते हुए किससे तुमको प्रकाश के लिए प्रार्थना करनी होगी! किसी से नहीं, यही रहस्य है। तुम स्वाधीन हो जाओ। तुमको कौन बाँधता है? तुम्हें गुलाम बनानेवाला है कौन? तुम्हारी अपनी कामनायें, दूसरा कोई नहीं। संसार की समस्त आकर्षण-शक्ति के, संसार की सकल शक्तियों के स्रोत तुम ही हो। दुनिया के अपूर्व से अपूर्व चमत्कार तुम्हरे अधमाधम गुलामों से अधिक नहीं। इन वासनाओं से पिंड छुडा लो, इसी दम तुम स्वाधीन हो जाओगे। और जब सब कामनाओं से तुम छूट जाओगे, तब कौन-सा परमानन्द ऐसा है, जो तुम्हें न प्राप्त होगा? कोई ज़िम्मेदारी नहीं, कोई भय नहीं। अच्छा, तुम्हें डर क्यों होता है? केवल इसलिए कि तुम्हें आशंका रहती है कि कहीं अमुक चीज़ जाती न रहे, तुम इस मनुष्य से डरते हो, उस मनुष्य से डरते हो, तुम्हें हँसी का डर है, क्योंकि तुम्हें यश की अभिलाषा है, तुम कीर्ति में आसक्त हो। समस्त भय और चिन्तायें इच्छाओं का परिणाम है। सिर-दर्द इच्छाओं के नतीजे हैं। राष्ट्रपति या सम्राट् के सामने तुम साष्टांग प्रणाम करते और दबक जाते हो, क्यों? केवल इसलिए कि तुम्हें उनकी कृपा-दृष्टि की चाह है। इच्छाओं से मुक्त होने पर, एक-एक करके इन इच्छाओं को दूर कर देने पर तुम प्रभुओं के प्रभू और बादशाहों के बादशाह हो जाते हो। उस समय तुम कितने स्वाधीन और स्वतंत्र होते

हो ! इसलिए राम कहता है कि सत्य का मार्ग कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसे तुम्हें पाना या पूरा करना है । तुम्हें अपने उद्योगों और प्रयत्नों से केवल उस बन्धन और गुलामी को काटना है, जिसकी रचना तुमने अपनी ही इच्छाओं के द्वारा पहले से कर रक्खी है ।

ॐ ! ॐ !!

सांसारिक सुख तो पोस्ते के फूलों के समान हैं,
जोकि हाथ में आते ही बिखर जाते हैं ।
या नदी पर बरफ़ गिरने के तुल्य हैं,
जिसकी सफेदी क्षणभर रह सदा के लिए लुप्त हो जाती है ।
या उदीची *तेजस के समान हैं,
जिनका वेग दृष्टि की चपलता को भी पछाड़ देता है ।
या इन्द्र धनुष्य के मनोहर रूपों के तुल्य हैं,
जो तूफान के आते ही विलीन हो जाते हैं ।

---

*उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुव पर गगनमण्डल में थोड़े-थोड़े समय पर एक विस्तृत प्रकाश दिखाई दे जाता है, जो बड़े वेग से भागता रहता है । उसकी दौड़ की तेजी के कारण दृष्टि उसका पीछा नहीं कर सकती है, इसे अंग्रेज़ी में 'बोरिअलिश रेज़' कहते हैं ।

२

धर्म का लक्ष्य

[शनिवार, ६ दिसम्बर, १९०२ को हारमेटिक ब्राद्ररहुड हाल, सैन फ्रांसिस्को, अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान]

मेरे भिन्नाकार रूपो, मेरे अन्य स्वरूपो !

अब कुछ क्रमबद्ध व्याख्यान दिये जायँगे। आज का विषय उनकी प्रस्तावना समझी जाय। "धर्म का लक्ष्य क्या है और हिन्दू उसे प्राप्त करने के लि क्या प्रयत्न करते हैं?"

हिन्दुओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म है, बहु मूल्य रत्न है, समस्त धन है, परमानन्द है और सर्व सुखों का स्रोत है। प्रत्येक व्यकि स्वयं ब्रह्म और सब कुछ है। प्रश्न होता है, यदि ऐसा है, तो लोग कष्ट क्यों पाते हैं? वे इसलिए कष्ट पाते है कि उनके पास उपाय अथवा युक्ति नहीं है, इसलिए नहीं कि उनके भीतर अनन्त आनन्द का भण्डार नहीं है, न यही कारण है कि उनके अन्दर अमूल्य रत्न नहीं हैं; वरन् कारण यह कि वे उस गांठ को खोलना नहीं जानते, जिसके भीतर यह अमूल्य रत्न धरा है, उस पेटी को खोलना नहीं जानते, जिसमें यह (रत्न) भरा है। दूसरे शब्दों में लोग अपनी ही आत्माओं में प्रवेश करना और अपने ही आत्मा का साक्षात्कार करने का उपाय नहीं जानते। सभी धर्म स्वयं अपना पर्दाफ़ाश और अपने आपको प्रकाशित करने के प्रयत्नमात्र हैं।

हमारे भीतर अमूल्य रत्न है, उस पर हमने अपने ही हाथों से, अपने ही उद्योगों से पर्दा डाल रक्खा है, और अपने आपको दुखी, दीन, अभागा मान लिया है, जैसा कि इमर्सन ने कहा है—"प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है, पर मूर्खों-जैसा अभिनय कर रहा है।"

जो पर्दा हमारे नयनो पर पडा हुआ है, केवल उसको हटाने और उच्छेदन करने के विभिन्न उद्यमों का नाम ही सम्प्रदाय या मत है। कुछ मत इस पर्दे को बहुत महीन करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल हुए हैं; किन्तु सब मतों में शुद्ध-वृत्ति और सच्ची भावनावाले लोग होते है, और जहाँ कहीं शुद्ध-वृत्ति या सच्ची भावना आती है, वहाँ उतने समय के लिए पर्दा चाहे मोटा हो या महीन, परे हट जाता है, और आत्मतत्त्व की एक झलक दिखाई पड जाती है। इसका दृष्टान्त इस उदाहरण से दिया जायगा। यह एक पर्दा या घूँघट है, (इस समय स्वामीजी ने एक रूमाल तह करके अपनी आँखों के सामने रख लिया) यह आँखों के सामने है। हम पर्दे को हटाकर देख सकते हैं, किन्तु पर्दा फिर आँखों के सामने आ जाता है। दूसरी स्थिति में पर्दा पतला कर लिया जाता है, (इस समय रूमाल की कुछ तहें खोल ली गईं) और ऐसी स्थिति में भी अर्थात् जब बहुत बारीक हो, वह अलग सरकाया जा सकता है; किन्तु वह फिर आँखों के सामने आ जाता है, सदा के लिए वह आँखों से दूर नहीं हो जाता। लो, हम इसे और भी पतला कर लेंगे। इस हालत मे भी वह थोडी ही देर के लिए हटाया जा सकता है, पर वह फिर आँखों के सामने आ जाता है। हाँ, पर्दा अत्यन्त पतला कर लिए जाने पर, वह चाहे हटाया न जाय, तो भी हमारी दृष्टि को नहीं रोकता। हम उसमें से देख सकते हैं, साथ ही पहले की तरह अब भी हम उसे समय-समय पर हटा भी सकते हैं। जब पर्दा बिलकुल ही पतला कर लिया जाता है, तब व्यवहार-दृष्टि से वह पर्दा नहीं रह जाता। उसके होते हुए भी हम परमानंद का भोग

करते हैं, हम ईश्वर के समीप (रूबरू) हो जाते हैं। नहीं-नहीं, हम स्वयं ईश्वर (ब्रह्म) हो जाते है। अब इस संसार की कोई वस्तु हमारे सुख में विघ्नकारी वा विनाशक नहीं हो सकती, कोई भी वस्तु हमारी राह नहीं रोक सकती। अज्ञान (माया) के पर्दे को अत्यन्त-से-अत्यन्त पतला कर देनेवाले और व्यावहारिक जीवन में भी ज्ञानी को आनन्द-दृष्टि का सुख भोगने की योग्यता देनेवाले वेदान्त में दूसरे मतों से यही विशेषता है।

सभी धार्मिक मतों के अनुयायी समय-समय पर परमात्मा से युक्त हो सकते हैं, और उतनी देर के लिए अपने नेत्रों के सामने से पर्दा, वह चाहे महीन हो या मोटा, हटा सकते है, जितनी देर तक वे परमेश्वर से युक्त रहते हैं। एक वेदान्ती भी यही कर सकता है, वह आनन्दमय अवस्था में अपने आपको ला सकता है, किन्तु साधारण अवस्था में भी वह उस दिव्य दृष्टि का सुख भोगता है, जिस दिव्य दृष्टि का सुख मोटे पर्देवाले मतों को नहीं मिलता।

इस संसार के सभी मत, जिनमें भारत के मत-मतान्तर भी सम्मिलित है, तीन मुख्य भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। संस्कृत में इन्हें हम 'तस्यैवाहम्', तवैवाहम्', त्वमेवाहम्,' कहते हैं। पहले 'तस्यैवाहम्' का अर्थ—"मैं उसका हूँ" इस प्रकार के मतों में पर्दे की मोटाई सबसे अधिक होती है। धार्मिक मतों की दूसरी दशा है 'तवैवाहम्', जिसका अर्थ है—"मै तेरा हूँ।" मतों या सिद्धान्तों की पहली और दूसरी अवस्था का पारस्परिक भेद आपके ध्यान में आ जाना चाहिए। धर्म-मार्ग में पहली प्रकार की प्रवृत्ति का भक्त अथवा उपासक, ईश्वर को अपने से दूर, अलक्ष्य समझता है, और वह परमेश्वर की चर्चा अन्य पुरुष में करता है—"मैं उसका हूँ", मानो ईश्वर अनुपस्थित है। यह धर्म-साधना का श्रीगणेश है। यह भाव धर्म के प्रत्येक बालक के लिए माता के दूध के समान है। एक बार इस दूध को बिना पिये मनुष्य

धर्म की राह पर आगे बढ़ने में असमर्थ रहता है। "मैं उसका हूँ" मेरा सर्वस्व प्रभु का है। यदि मनुष्य इसे पूरी तरह से अनुभव कर ले, तो क्या यह भाव कम मधुर है! वह सवेरे जल्द जागता है और समझता है—"मेरा मालिक मुझे जगाता है।" अपने दफ्तर के कामों को अपने प्रिय और भक्तवत्सल ईश्वर के आदेश द्वारा प्राप्त समझता है। वह सारा संसार ईश्वर का समझता है। वह अपने घर, अपने सम्बन्धियों, अपने मित्रों को ईश्वर का समझता है अथवा ईश्वर की कृपा से अपने को मिले हुए ख़याल करता है। अरे! क्या इसी भाव से दुनिया सच्चे स्वर्ग में नहीं परिणत हो सकती! क्या संसार स्वर्ग में नहीं बदल सकता! मनुष्य को सच्चा होना चाहिए, उसे उत्सुकता से और दिलोजान से यह समझना तथा अनुभव करना चाहिए कि मेरे आस-पास की हर एक वस्तु मेरे प्रभु की, मेरे ईश्वर की है और यह देह भी उसी की है। यदि यह विचार भी पूरी तरह से अनुभव कर लिया जाय, तो मनुष्य को अपूर्व सुख, अकथनीय हर्ष और परम आनन्द मिल सकता है। यह उत्कृष्ट विचार अनुभव किये जाने पर और अमल में लाये जाने पर यह विचार भी यथेष्ट हो सकता है, मधुर हो सकता है; परन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से यह मत प्रारम्भ मात्र है।

"तवैवाहम्", अर्थात् मैं तेरा हूँ, मुझे हर घड़ी तेरी ज़रूरत है, मैं तेरा हूँ, मै तेरा हूँ।" भक्ति वा धार्मिक जीवन की इस दूसरी स्थिति की तुलना पहली स्थिति से कीजिये। पहली कल्पना मधुर थी, किन्तु यह मधुरतर है। पहली दशा बड़ी प्यारी और रुचिर थी, किन्तु यह और भी अधिक प्यारी, और भी अधिक रुचिर है। ज़रा दोनों के भेद पर ध्यान दीजिये। दृष्टान्त की दृष्टि से अब पर्दा पहले से पतला हो गया है। आप जानते है कि "मैं तेरा हूँ"—इस भाव में ईश्वर की चर्चा प्रथम वा अन्य पुरुष में नहीं की गई है। वह अब अनुपस्थित, पर्दे की ओट में नहीं माना गया है; किन्तु हमारे आमने-सामने आ गया

है। वह हमारे निकट है और हमें प्यारा है, वह हमारे बहुत समीप है। अब वह पहले से हमारे अधिक नगीच आ जाता है, हमारी उससे अधिक घनिष्टता हो जाती है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह विचार उच्चतर है; किन्तु प्रायः ऐसा होता है कि लोग इस मत में विश्वास तो जमा लेते है और ईश्वर को अपने अति सुपरिचित, अति समीपस्थ की भाँति सम्बोधन करते हैं, पर वे सच्ची उत्कट वृत्ति और सजीव विश्वास से वंचित रहते है।

धार्मिक उन्नति की पहली दशा में भी यदि जीता-जागता विश्वास जम जाये, तो पर्दा बहुत मोटा होते हुए भी कुछ समय के लिए हट जाता है। जब कोई मनुष्य अपने सच्चे हृदय से, अपने रक्त की प्रत्येक बूँद से, इस विचार को प्रत्यक्ष करने लगता है कि वह ईश्वर का है अर्थात् "उसका सर्वस्व उस परमात्मा का है," उसके शरीर के प्रत्येक रोम से मानो यही विचार बहने लगता है, तब सत्यता, उत्कंठता, उत्साह और उमङ्ग—ये सब क्षण भर के लिए उसकी आँखों के सामने से पर्दा खिसका देते हैं और वह ईश्वर में लीन हो जाता है, ईश्वर में, ब्रह्म-भाव में डूब जाता है, ईश्वर का सच्चा भक्त हो जाता है, उस समय वही परमेश्वर हो जाता है। कभी-कभी "मै तेरा हूँ"—इस ऊँचे सिद्धान्त में श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य में भी उक्त सच्चे जीते-जागते विश्वास का अभाव होता है, अतः वह ईश्वर की समक्षता के मिठास का पूरा पूरा मज़ा नहीं उठा पाता; परन्तु धार्मिक मत की इस दूसरी अवस्था में भी उसी जीते-जागते विश्वास और उत्कट इच्छा का योग किया जा सकता है।

मत का तीसरा प्रकार "त्वमेवाहम्" कहलाता है; जिसका अर्थ है "मै तू ही हूँ"। आप देखते है कि यह हमें ईश्वर के कितने निटक ले आता है। पहले रूप में "मैं उनका हूँ" ईश्वर परे वा दूर है। दूसरे रूप में "मै तेरा हूँ" ईश्वर से हमारा आमना-सामना होता है, वहम राह

अधिक नगीची होता है। किन्तु धार्मिक उन्नति की अन्तिम अवस्था में दोनों एक हो जाते हैं। प्रेमी प्रेम में लीन हो जाता है। यही वेदान्त का अनुभव है। पतिंगा प्रकाश की ओर तब तक बढ़ता जाता है, जब तक अपनी देह भस्म करके वह स्वयं प्रकाश-रूप नहीं हो जाता। उपनिषद् (वेदान्त) शब्द के शब्दार्थ हैं, प्रकाशों के प्रकाश के इतने निकट (उप) पहुँचना कि विलग और विभाग करने वाला चेतना-रूपी पतिंगा अत्यन्त निश्चय पूर्वक (नि) नष्ट (पद्) हो जाय। ईश्वर का सच्चा प्रेमी ईश्वर में मिल जाता है और अनजाने, अनायास, बिना इच्छा किये हुए ही बोल उठता है "मैं वह हूँ," "मै वह हूँ," "मै वह हूं," "मैं तू हूँ," "तू और मैं एक हूँ," "मै ईश्वर हूँ," "मैं ईश्वर हूँ," तुझ में और मुझ में कोई अन्तर नहीं है। धार्मिक उत्कर्ष की यह अन्तिम अवस्था है। यही उच्चतम भक्ति है। यही वेदान्त कहलाता है, जिसका अर्थ है ज्ञान की इतिश्री। समस्त ज्ञान की परिसमाप्ति इसी मे होती है, यहाँ हमें अन्तिम ध्येय की प्राप्ति होती है। इस श्रेणी में भी जिसमें कि पर्दा इतना महीन है कि पर्दे के रहते हुए भी सारी असलियत हम देख सकते हैं, कुछ ऐसे लोग है जिनमें उत्कट इच्छा, शुद्धि, एकाग्रता की वृत्ति की कमी होती है और वे अपरोक्ष साक्षात्कार का आनन्द लूटने के लिए पर्दे को सरका नहीं सकते। जो भीतर-बाहर सच्चे हैं वे बुद्धि से इस निश्चय पर पहुँच जाने के बाद, निदिध्यासन द्वारा इस दर्जे तक इस निश्चय का अनुभव करने लग जाते है कि पर्दा हट जाता है और वे दिव्य आनन्द, स्वर्गीय अमृत को भोगने लगते है—वे स्वयं ब्रह्म-रूप हो जाते है। वे इसी जीवन में मुक्त होकर जीवन्मुक्त कहलाते है।

मत को विशुद्ध या पर्दे को पतला करने की क्रिया मुख्यतः बुद्धि के द्वारा होती है, और पर्दा मनन वा निदिध्यासन द्वारा उठता है। मत वा सिद्धान्त के तीन रूपों का वर्णन किया जा चुका। अब हमें यह देखना चाहिए कि विभिन्न मतों के लोगों के लिए समय-समय पर कहाँ तक

पर्दे का पलटना सम्भव हुआ है। कुछ हिन्दू कहानियाँ यहाँ दृष्टान्तों का काम देंगी।

एक लड़की अत्यन्त प्रेमासक्त थी। उसकी सारी हस्ती ही प्रेम-रूप हो गई थी। एक बार वह बहुत बीमार पड़ी। वैद्य बुलाये गये। उन्होंने कहा कि इसे अच्छा करने का केवल एक यही उपाय है कि इसका कुछ खून निकाल दिया जाय। उसकी भुजाओं के मांस में उन्होंने नश्तर लगाये। किन्तु आश्चर्य! उसकी देह से ज़रा-सा भी ख़ून नहीं निकला। पर महत् आश्चर्य उसी समय उसके प्रेमी की त्वचा से खून निकलने लगा। दोनों में कैसी अद्‌भुत एकता थी! तुम इसे दन्त-कथा वा झूठी कहानी कहोगे, किन्तु यह बात सत्य हो सकती है। प्रायः वे लोग जो प्रेम का अनुभव करते है, चाहे वह नीचे दर्जे के भले ही हों, अपने जीवन से कभी-कभी उक्त घटना-जैसे घटना-वैचित्र्य को सिद्ध करते हैं। अपने जीवन में वह कुमारी अपने व्यक्तित्व को नितान्त भूल गई थी, उसने अपने प्रेमी से अपने आप को एक कर लिया था और प्रेमी ने लड़की के प्यार में अपने आप को पूर्णतः डुबो दिया था।

ईश्वर से ऐसी ही एकता प्राप्त करना धर्म है। मेरी देह उसकी देह हो जाय और उसका अपना आप मेरा अपना आप हो जाय।

हिन्दुओं की धर्म-पुस्तक—योगवासिष्ट में, हमें और एक महिला की कथा मिलती है। वह आग में डाल दी गई थी। लोगों ने देखा कि अग्नि ने उसे नहीं जलाया। उसका प्रेमी आग में झोंक दिया गया, किन्तु उसे भी अग्नि ने भस्म नहीं किया। यह क्या बात थी? वे नदी में फेंक दिये गये, किन्तु बहे नहीं। वे पहाड़ों की चोटियों से ढकेले गये, पर एक भी हड्डी टूटी नहीं। यह क्यों कर? उस समय वे इसका कुछ भी कारण न बता सके। वे अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठे हुए थे, वे ऐसी हालत में थे कि उन तक दुनिया का कोई प्रश्न नहीं पहुँच सकता था। बहुत काल के बाद जब उनसे कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि हम

दोनों को उस समय एक दूसरे के सिवा कुछ और नहीं दिखाई देता था। ! हमारा सारा ध्यान एक दूसरे में लगा हुआ था। न हमें अग्नि दिखाई देती थी, और न पवन। हमारे लिए जो कुछ था, वह था हमारा प्रियतम। एक ओर अग्नि उस स्त्री को अपना प्रेमी प्रतीत हुई, और दूसरी ओर उस पुरुष को वही अग्नि अपनी प्रेयसी दिखाई दी। जल उन दोनों के लिए जल न था, वह सब प्रियतम-स्वरूप हो रहा था। उनके लिए पत्थर पत्थर न थे, उनके लिए देह देह न थी, सभी कुछ केवल प्रियतम था और प्रियतम उन्हें हानि कैसे पहुँचा सकता था।

हिन्दू पुराणों में हमें एक बालक की कहानी पढने को मिलती है। उसका पिता सम्राट् था। वह उसे धार्मिक जीवन से हटाना चाहता था। वह चाहता था कि लडका मेरी ही तरह दुनियादार रहे, किन्तु पिता की घुड़कियों और फटकारों का लड़के पर कोई असर नहीं हुआ, वे उस पर व्यर्थ हुई। बच्चे को उसके सद्संकल्प से रोकने के लिए पिता ने उसे प्रथम आग में डाल दिया, किन्तु आग ने उसे नहीं जलाया। तब बादशाह ने उसे बहते पानी में फेंक दिया, किन्तु पानी भी बच्चे को ऊपर-ऊपर उठाये रहा। उसे आग, पानी और कोई भी पंचभूत हानि नहीं पहुँचा सके— उसने उनकी सच्ची दशा का अनुभव किया था। लड़का माया को छिन्न-भिन्न करके देहाध्यास से रहित होकर अपने आप को असली दशा में ले आया था। उसके लिए प्रत्येक वस्तु ईश्वर, पूर्ण प्रेम थी। उसे अपने चारों ओर अपने सच्चिदानन्द इष्टदेव के सिवा कुछ न दिखाई देता था। पिता की धमकियाँ, घुड़कियाँ, उसका क्रोध, उसका द्वेष, नहीं-नहीं, सारे पंचभूत बच्चे को अपने इष्टदेव के मधुर मुस्कान मात्र ही प्रतीत होते थे। धमकियाँ, घुड़कियाँ, और आँखें दिखाना, तलवार और ज्वाला मधुर स्वर्ग से किसी तरह कम न थीं। भला, अपने इष्टदेव से उसे हानि कैसे पहुँच सकती थी !

कुछ दिनों की बात है। एक हिन्दू साधु हिमालय के घोर जंगल

में गंगा के तट पर बैठा हुआ था। वह आप ही आप शिवोहम्-शिवोहम्-शिवोहम्, (मैं ईश्वर हूँ) रट रहा था और दूसरे तट पर बैठे हुए कुछ और साधु उसे देख रहे थे। सहसा घटना-स्थल पर एक चीता आ गया। चीते ने आकर उसे अपने पंजों में दबोच लिया। यद्यपि वह चीते के नखों में दबा हुआ था, तथापि वही उच्चारण—शिवोहम्, शिवोहम्, शिवोहम्, उसी निर्भीक भाव से उसके मुख से निकल रहा था। चीते ने उसके हाथ-पाँव नोच डाले, फिर भी, वही ध्वनि थी, वेग में किञ्चित् भी कमी न हुई। आप इस घटना से क्या अभिप्राय निकालते हैं? "मैं परमेश्वर हूँ, मैं परमेश्वर हूँ," इस कथन से आप क्या समझते हैं? क्या आप इसे अनीश्वरवादिता, नास्तिकता कहेंगे! इस कथन और नास्तिकता में बड़ा अन्तर है, वह उससे कोसों दूर है। यह अन्तिम अनुभव है। प्रेम की चोटी पर पहुँचने पर क्या प्रेमी अपने प्रियतम से अपनी अभेदता नहीं अनुभव करने लगते! क्या माता अपने बच्चे को अपने मांस का मांस, अपने ख़ून का ख़ून, अपनी हड्डियों की हड्डियाँ नहीं समझती? और क्या माता अपने बच्चे को अपना दूसरा अहं (अपना आप), अपनी दूसरी आत्मा नहीं मानती? क्या बच्चे के स्वार्थों और माता के स्वार्थों में अनन्यता नहीं होती है? होती है, अवश्य होती है।

उस परमात्मा को अंक में भर करके, उसे अंगीकार करके, उसे ब्याह करके उससे इस दर्जे तक और इतने अधिक अभेद हो जाओ कि विलगता का कोई भी चिह्न न बाक़ी रहे। "ऐ प्रभु! तेरी मर्ज़ी पूरी हो" यह प्रार्थना करने के बदले तुम्हारे हृदय में यह हर्ष भरा रहे कि मेरी मर्ज़ी पूरी हो रही है।

अमेरिका में आजकल जो रीति-रिवाज और रहन-सहन का ढंग प्रचलित है, उससे प्राचीन-कालिक भारतवर्ष के रीति-रिवाजों और रहन-सहन में बड़ा अन्तर है। आजकल अमेरिका में बिजली की बत्तियाँ रात में आपके घरों को रौशन करती हैं। राम जिस काल की बात

कहता है, उन दिनों हिन्दू लोग मिट्टी के दीपक काम में लाते थे, और जब एक घर के दिये जल जाते थे, तब उससे मिले हुए घरों के लोग अपने पडोसी के घर से अपने दिये जला लाते थे। एक दिन शाम को एक कुमारी, जो बेतरह कृष्ण के प्रेम में आसक्त थी, अपना दिया जलाने के बहाने उनके बाप के घर गई हुई थी। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि जैसे दीपक के प्रकाश को देख कर पतिंगा बरबस उसकी ओर खिंच जाता है, उसी प्रकार वह भी कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त होकर उनके मुख-मण्डल की दर्शन-लालसा से ही वहाँ गई थी। इसीलिये वह अन्य दूसरे ऐसे घरों में न जाकर जिनमें दीपक जल रहे थे, कृष्ण के ही घर गई थी। वास्तव में वह उन्हें देखने गई थी, दिया जलाने का तो उसने अपनी माता से बहाना किया था। उसे अपने दीपक की बत्ती जलते हुए दीपक की बत्ती में लगानी थी ; किन्तु उसके नेत्र दीपकों की ओर न थे, वे प्यारे नन्हें कृष्ण के चेहरे पर थे। वह कृष्ण के जादू-भरे मनोहर चेहरे को देख रही थी, इतने चाव से वह उन्हें देख रही थी कि उसे यह भी न जान पड़ा कि जलते हुए दीपक में मेरे दीपक की बत्ती जल रही है या उसमें मेरी उँगलियाँ जल रही हैं। दीपक की लौ उसकी उँगलियों को जलाती रही, किन्तु उसे कुछ ख़बर न हुई। समय बीतता गया और वह घर न लौटी। उसकी माता अधीर हो गई, वह राह देखते-देखते थक गई। वह अपने पड़ोसी के घर गई। वहाँ उसने अपनी बेटी का हाथ जलते देखा, और यह भी देखा कि लडकी को इसकी कोई ख़बर नहीं है। उँगलियाँ झुलस गई थीं, उनका भरता बन गया था और हड्डियाँ जलकर कोयला हो गई थीं। माता ने ठंडी आह भरी, उसकी साँस रुक गई, वह कलपने और रोने लगी—"अरे मेरी बेटी, मेरी दुलारी ! तू क्या कर रही है ? कृपा कर बता तो सही कि तू यह क्या कर रही है ?" माता की बात सुनकर लडकी को होश आया। किन्तु आप ध्यान रक्खें कि यथार्थ दृष्टिकोण इससे सर्वथा विपरीत है।

दुनिया से बेखबर होकर वह समाधि की शुद्ध चैतन्यता में जाग रही थी। माता के हो-हल्ला ने उसे वहाँ से हटाकर परिच्छिन्न भाव की क़ैद में जगा दिया।

ऐसे दिव्य प्रेम की दशा में, पूर्ण प्रेम की इस अवस्था में प्रेमी और प्रियतम अनन्य हो जाते है। "मैं वह हूँ," "मैं तू हूँ।"

यह तीसरी अवस्था है। और इसके बाद वह दशा आती है जिसमें इन प्रवचनों का, इन शब्दों का भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।

ऊपर की कहानियाँ तीसरे प्रकार के प्रेम का दृष्टान्त हैं। आगे की कथा धार्मिक उन्नति की दूसरी अवस्था "मैं तेरा हूॅ," "मैं तेरा हूॅ," इस भाव का उदाहरण है। दो लड़के एक गुरु के पास आये, और उन्होंने धर्म की शिक्षा पाने की प्रार्थना की। गुरु ने कहा कि बिना तुम्हारी परीक्षा लिए मैं शिक्षा न दूँगा। अस्तु, गुरु ने उन दोनों को एक-एक कबूतर देकर कहा कि इन्हें ऐसे एकान्त स्थान में ले जाकर मार डालो, जहाॅ कोई तुम्हें देखने न पावे। उनमें से एक लड़का तो सीधा आम सड़क पर आया। सड़क पर बहुत से लोग आ-जा रहे थे। उनकी आँखों से बचने के लिए उसने उनकी तरफ़ पीठ फेर ली और अपने सिर पर एक कपड़ा डालकर कबूतर का गला घोंट दिया। फिर सीधा शिक्षक के पास आकर बोला—"गुरुदेव! स्वामीजी, स्वामीजी! आपकी आज्ञा का पालन हो गया।" गुरु ने पूछा—"ठीक बताओ, कबूतर को मारते समय किसी ने तुम्हें देखा तो नहीं था?" उसने कहा—"नहीं, किसी ने नहीं देखा।" आइये, देखिये, उसके दूसरे साथी ने क्या किया।

दूसरा लडका बस्ती से दूर एक घने जङ्गल में गया, और कबूतर को गला उमेठने वाला ही था; पर देखता है कि कबूतर की सौम्य, कोमल और चमकती हुई ऑखें ठीक उसके चेहरे पर टकटकी लगाये हुए है। उन आँखों से उसकी आँखें चार होते ही कबूतर की गर्दन मरोड़ने के निमित्त अपने प्रयत्न से उसने सहम कर हाथ सिकोड़ लिया। उसके

ख़याल में यह बात आई कि गुरु ने जो शर्त लगाई, वह बड़ी बेढब है, बड़ी कठिन है। यहाँ इस कबूतर में ही गवाह मौजूद है। "ओह! मैं अकेला नहीं हूँ, ऐसे स्थान में नहीं हूँ, जहाँ मुझे कोई देखने वाला न हो, मैं तो देखा जा रहा हूँ। अब क्या करूं? कहाँ जाऊँ?" वह आगे बढ़ता-बढ़ता एक दूसरे वन में पहुँचा। वहाँ भी जब वह कबूतर की गर्दन उमेठने वाला था, तब कबूतर की आँखों से उसकी आँखें मिल गईं, और कबूतर ने उसे देख लिया। 'द्रष्टा' स्वयं कबूतर में ही था।

बारम्बार उसने कबूतर को मार डालने की चेष्टा की, बारम्बार उसने कोशिश की, किन्तु गुरु की लगाई हुई शर्त को पूरा करने में वह अस-फल रहा। उदास होकर, टूटा दिल लेकर वह गुरु के पास लौट आया, और जीवित कबूतर गुरु के चरणों में रख दिया। उसने रोकर कहा—"गुरुजी! मैं यह शर्त पूरी नहीं कर सकता। फिर भी कृपा करके मुझे ब्रह्म-ज्ञान की शिक्षा दीजिये। यह परीक्षा मेरे लिये बड़ी कठिन है। मैं इस परीक्षा में नहीं ठहर सकता। कृपया मेरे ऊपर करुणामय हो जाइये, मुझ पर दया कीजिये, और मुझे ब्रह्म-ज्ञान दीजिये, मुझे उसकी ज़रूरत है, मैं उसके बिना घोर दुःख में हूँ।" गुरु ने बच्चे को गोद में उठा लिया, उसे अपनी बाहों में उठा लिया, प्यार से चूमा और पीठ ठोंकी। गुरु ने प्यार से कहा—"ऐ प्यारे! ऐ प्यारे बच्चे! जिस पक्षी का तुम वध करने वाले थे, उसकी आँखों में जिस तरह तुमने देखनेवाले को देखा है, उसी तरह जहाँ कहीं तुम्हें जाने का संयोग हो और जहाँ कहीं किसी प्रलोभन से प्रेरित होकर तुम कोई पाप करने को उतारू हो, वहीं ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करो। जिस नारी की तुम्हें उत्कट लालसा हो, उसके हाड़-मांस और नयनों में द्रष्टा को, साक्षी को, प्रत्यक्ष देखो। यह अनुभव करो कि उसके नेत्रों से मेरा प्रभु मुझे देख रहा है। मेरा प्रभु मुझे देखता है। ऐसा आचरण करो, मानो तुम सदा परम प्रभु के सामने

हो, सदा परमेश्वर से तुम्हारा आमना-सामना है, तुम सदैव प्यारे की नज़र के नीचे हो।"

सुना जाता है कि नेपिल्स के एक बड़े अजायबघर की छत पर एक सुन्दर फ़रिश्ते का सा चेहरा है। इस जादूघर के चाहे जिस भाग में आप हों, चाहे जिस हिस्से को आप देखते हों, चाहे छत पर जायँ, चाहे फ़र्श पर आप हों, फ़रिश्ते की निर्मल चमकीली तेजस्वी आँखें सीधी आपकी आँखों से मिली रहती है। जो लोग आध्यात्मिक उन्नति की दूसरी दशा में होते हैं, वे यदि सच्चे है, तो निरन्तर प्रभु के नेत्रों के नीचे रहते हैं। वे यही समझते और अनुभव करते हैं कि हम चाहे जहाँ जायँ, चाहे घर की सबसे भीतरी कोठरी में हों, चाहे वन की अत्यन्त एकान्त गुफाओं में हों, हम सदैव परमेश्वर के नयनों के सामने रहते है, वह निरन्तर हमें देखता रहता है। हम "उसके प्रकाश" से प्रकाशित होते रहते हैं, हम "उसकी कृपा" से परिपुष्ट होते रहते है।

अब हम आत्मविकास की प्रारम्भिक दशा पर आते हैं। "मै उसका हूँ! मै ईश्वर का हूँ!" यह भाव प्रारम्भिक दशा का सूचक है। किन्तु, ओह! धर्मोन्नति की प्रारम्भिक दशा का भी अनुभव करना लोगों के लिए कितना कठिन है। वास्तव में यदि कोई मनुष्य सच्चा है, असल में एकाग्र चित्त है, सच्चा भक्त है, यदि वह अपने विश्वास के अनुसार अमल करता है, कि मै उसका हूँ; यदि इस विचार को अपने रक्त के साथ अपनी नाड़ियों में उतार लेता है, अपने रक्त की प्रत्येक बूंद में इसका अनुभव करता है, यदि वह इस प्रारम्भिक भाव को ही पूर्णतः अपने में भर लेता है, तो वह इस लोक में देवदूत (फ़रिश्ता) हो सकता है।

भारत का एक अति पूज्य महापुरुष अपनी नई जवानी में एक ऐसे स्थान में काम करता था, जहाँ सदा भिक्षा देना, लोगों को भोजन और रुपया-पैसा बाँटना ही उसका काम था। एक दिन कुछ ग़रीब लोग उसके पास आये। जिन्हें उसके मालिक ने तेरह मन आटा देने की आज्ञा

दी थी ; उन्हें वह एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः करके आटा देने लगा। आटा देते समय वह ज़ोर-ज़ोर से गिनती गिनता जाता था। भारतीय भाषा में संख्या तेरह, थरटीन को कहते है। भारतीय भाषा में यह बड़े ही मार्के का शब्द है। इसके दो अर्थ है एक तो तेरह—दस और तीन का योग, और दूसरे अर्थ हैं, "मै तेरा हूॅ। मैं तेरा हूॅ। मै ईश्वर का हूँ। मै उसी अंश का हूॅ, मै उसी का हूँ।"

लो, जब बारह मन दे देने के बाद तेरह मन देने की बारी आई और जब वह उन्हें तेरहवाँ मन दे रहा था, और तेरा-तेरा का शब्द ज़ोर से कह रहा था, तब उसमें ऐसे पवित्र संस्कार उदय हुए कि उसने वास्तव में अपनी देह और अपना सर्वस्व ईश्वरार्पण कर दिया। वह दुनिया की सारी बातें भूल गया, वह आपे से परे हो गया। नहीं-नहीं, वह अपने आपे में पहुँच गया। परमानन्द की इस दशा में वह तेरा, तेरा, तेरा, तेरा रटने लगा, और सारी दुनिया से बेखबर हो, तेरा, तेरा कहता हुआ, एक मन के बाद दूसरा मन तब तक देता रहा, जब तक वह परमानन्द की दशा में आकर, आत्म-साक्षात्कार की दशा में, तुरीयावस्था में, लीन हो कर मूर्च्छित नहीं हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो लोग प्रारम्भिक दशाओं में हैं, वे भी कभी-कभी अत्यन्त ऊँचे चढ सकते है, यदि वे उतने ही साधु और सच्चे हैं, जितने उनके वचन होते हैं; यदि वे सच्चे और उत्सुक हैं, यदि वे ईश्वर की आँखों में धूल नहीं झोंकना चाहते, यदि वे ईश्वर से किये हुए वादों को, प्रतिज्ञाओं को तोड़ना नहीं चाहते। एक बार भी जब मन्दिर या गिर्जा में वे कहते हैं कि "मै तेरा हूँ," तब उन्हें इसका अनुभव करना चाहिए, इसे जीवन में चरितार्थ करना चाहिए। इसे प्रत्यक्ष करते ही वे दिव्य आनन्द का उपभोग करने लगेंगे। यही सच्चा धर्म है।

दुनिया भर के भिन्न-भिन्न मत इन्हीं तीन शीर्षकों में बाँटे जा सकते हैं—"मै उसका हूँ"!, "मै तेरा हूॅ!", "मै वही हूँ"। जहाँ तक

रूपों का सम्बन्ध है, दूसरा रूप, "मैं तेरा हूँ," पहले रूप, "मैं उसका हूँ" से ऊँचा है। और तीसरा रूप, "मै वही हूँ" सर्वोच्च है। इन तीनों रूपों में से किसी में भी हम सच्चा धार्मिक भाव भर सकते हैं।

हिन्दुओं के अनुसार, सिद्धान्त की पहली अवस्था को सच्ची धार्मिक वृत्ति से पालन करनेवाले इसी जीवन में या दूसरे जन्म में सिद्धान्त की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होंगे। पहले वे सिद्धान्त की दूसरी अवस्था को प्राप्त होंगे, और फिर सच्ची धार्मिक वृत्ति की धारणा करते हुए इसी जन्म या दूसरे आनेवाले जन्मों में धीरे-धीरे उत्तरोत्तर उच्चतम धार्मिक सिद्धांत—"मैं वही हूँ," "मैं तू ही हूँ"—पर चढ़ेंगे। जब यह दशा प्राप्त हो जाती है, तब फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। मनुष्य स्वतंत्र है, स्वतंत्र है, स्वतंत्र है! मनुष्य ईश्वर है, ब्रह्म है! वह अन्तिम सिरे पर पहुँचकर कहता है—"अहं ब्रह्माऽस्मि।"

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

Oh! brimful is my cup of joy,
Fulfilled completely all desires;
Sweet, moaning zephyrs I employ,
'Tis I in bloom their kiss admires.
The rainbow colours are my attires;
My errands run light, lightning fires.
All lovers I am, all sweethearts I,
I am desires, emotions I.
The smiles of rose, the pearls of dew,
The golden threads so fresh, so new.
Of sun's bright rays embalmed in sweetness,
The silvery moon, delicious neatness,

The playful ripples, waving trees,
Entwining creepers, humming bees,
Are my expression, my balmy breath,
My respiration in life and death,
All ill and good, and bitter and sweet,
In that my throbbing pulse doth beat.
What shall I do, or where remove ?
I fill all space, no room to move.
Shall I suspect or I desire ?
All time is time, all force my fire,
Can I be doubt or sorrow—stricken ?
No, I am verily all Causation.
All time is now, all distance here,
All problem solved, solution clear.
No selfish aim, no tie, no bond,
To me do each and all respond.
Impersonal Lord of foe and friend,
To me doth every object bend.
अरे ! मेरे आनन्द का प्याला लबालब भरा है।
पूरी तरह सब इच्छायें पूरी हो गईं ;
सवेरे की मधुर, मन्द वायु मेरी चेरी है,
(फूलों के) खिलाव में मैं ही उसकी चुम्बी सराहता हूँ।
इन्द्रधनुष के रंग मेरे वस्त्र है ;
प्रकाश, दहकती हुई अग्नियाँ मेरे संदेश ले जाती हैं,
सभी प्रेमी मै हूँ, सभी प्रिय मैं,
अभिलाषायें मैं हूँ मै ही मनोवृत्तियाँ।

गुल व की मुस्कुराहटें, ओस के मोती,
सुनहले तागे ऐसे ताज़े, ऐसे नये,
सूर्य की चमकीली किरणें मधुरता में पगी हुई,
रुपहला चन्द्रमा, रोचक स्वच्छता,
खिलाड़ी तरंगें, लहराते हुए वृक्ष,
लिपटी लताएँ, भनभनाती मधुमक्खियाँ,
मेरा वाक्य है, मेरी सुगन्धित श्वास।
मेरा साँस लेना जीवन और मरण है।
सब बुरा और भला, तथा कड़ुआ और मीठा
मेरी उन धड़धड़ाती नाड़ियों में उछलता है।
क्या मैं करूँ, या कहाँ हटूँ ?
मैं सब स्थान घेरे हूँ, सरकने की कहीं जगह नहीं,
क्या मैं आशंका करूँ या कामना करूँ
सब काल मैं हूँ, सब शक्ति मेरी आग।
क्या मैं सन्देह या शोक-पीड़ित हो सकता हूँ ?
नहीं, मैं सचमुच सम्पूर्ण हेतु हूँ।
सब काल 'अब' है, सब देश 'यहाँ',
कोई स्वार्थ-पूर्ण उद्देश्य नहीं, न आसक्ति, न बंधन,
हर एक और सब मेरी अनुकूलता करते हैं।
(मैं हूँ) शत्रु और मित्र का अकर्तृक (निष्काम या निर्विकार अथवा निराकार) प्रभु,
हर एक पदार्थ मेरे आगे झुकता और प्रणाम करता है।

३

परमार्थ-निष्ठा और मानसिक शक्तियाँ

[१५ दिसम्बर, १६०२ को हरमेटिक ब्रादरहुड हाल, सन फ्रांसिस्को मे दिया हुआ व्याख्यान]

नं० ५०६ वान, नैस, ऐवेन्यू, सन फ्रांसिस्को, कैलीफोरनिया में प्रश्नोत्तर के रूप में दी हुई स्वामी राम की व्याख्यान-माला का पहला व्याख्यान

प्रश्न—क्या गुह्य मानसिक शक्तियों को बढ़ाना और मृतात्माओं से बातचीत और व्यवहार करना ठीक हो सकता है ? और यदि ठीक हो, तो इसके लिए क्या कोई निश्चित उपाय है, जिनका हमें अनुसरण करना चाहिए ?

उत्तर—पूरी तरह इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें ऐसे विषयों पर वेदान्त के दृष्टिकोण के अनुसार ब्योरेवार विचार करना होगा।

वेदान्त के अनुसार दो मार्ग हैं, प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग अथवा कर्म-मार्ग और ज्ञान या संन्यास-मार्ग। ईसाई-मत जिसे "कर्मों से मुक्ति" कहता है, वह वेदान्त के कर्म-मार्ग के अनुरूप है और ज्ञान-मार्ग उसके अनुरूप है जिसे ईसाई मत "विश्वास से मुक्ति" कहता है। दोनों में क्या अन्तर है ?

हिन्दुओं की व्याख्या के अनुसार कर्म-मार्ग का लक्ष्य है स्वार्थपूर्ण

व्यक्तिगत शक्ति का संचय, संसार में साम्राज्य की वृद्धि। अपने अधिकारों और सम्पत्ति को बढाना, फैलाना और विस्तीर्ण करना, यही कर्म-मार्ग का उद्देश्य है। उन्नति की एक विशेष अवस्था में यह हर एक के लिए स्वाभाविक होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत राज्य को फैलाना और बढाना चाहता है, किन्तु यह मार्ग सच्ची अमरता या जीवन सार्थक कराने वाला नहीं है। हमें इस पथ के प्रयोग और अनुभव प्राप्त करने पड़ते हैं किन्तु ऐसा समय अवश्य आता है, जब हमें इस रास्ते से लौटना पड़ता है। स्वतः हम इस ग्रहणशील, कामनाशील, आशाशील अज्ञान को छोड़कर वैराग्य का मार्ग अंगीकार करते हैं। हमारे परम सुख के लिए निवृत्ति-मार्ग अनिवार्य है।

कर्म-मार्ग तीन प्रकार का है। वास्तव में यह कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है, यदि इसके छोटे-छोटे उपविभागों पर ध्यान न दिया जाय, तो मुख्यतः इसका क्षेत्र तीन तरह के संसारों तक फैला दिखाई देता है—

प्रथम—प्रत्यक्ष संसार, स्थूल भौतिक संसार।

द्वितीय—मानसिक संसार, सूक्ष्म संसार।

तृतीय—अविज्ञात संसार, अज्ञात संसार।

ये तीन मुख्य संसार हैं, और एक हद तक ये एक दूसरे से स्वतन्त्र भी हैं।

जिस समय हम स्वप्न-भूमि में, सूक्ष्म अथवा मानसिक संसार में होते हैं, तब यह स्थूल भौतिक संसार मानों हमसे अलग रहता है, और तीसरे संसार, अविज्ञात संसार का भी यही हाल होता है। गहरी निद्रा-अवस्था के उदाहरण से इस तीसरे संसार की कुछ कल्पना की जा सकती है। उस दशा में तुम एक ऐसी दुनिया, एक ऐसे अज्ञात संसार में पहुँच जाते हो जो मेरे-तेरे के विचार से और अन्य सभी प्रकार के संकल्पों से सर्वथा शून्य है।

ईसाइयों का पेराडाइस, मुसलमानों का बहिश्त, हिन्दुओं का स्वर्ग-

सभी दूसरी दुनिया, मानसिक संसार के विस्तार, पारलौकिक जगत् की चीज़ें हैं। दूसरे संसार के अनेक उपविभाग हैं, दूसरे संसार के किन्हीं उपविभागों में हम प्रेतात्माओं को स्थान देते हैं। इस समय हमें इन ब्यौरों में प्रवेश करने की ज़रूरत नहीं है। कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है। वास्तव में निजी, व्यक्तिगत शक्ति के विस्तार करनेवाले सभी विचार दुनियादारी हैं।

एक बड़ा वैज्ञानिक भाफ या बिजली के विषय में अनोखे आविष्कार करता है। इस कृति से वह अपनी व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाता है, तथा प्रकृति के तत्वों पर हमारी प्रभुता बढ़ाने में सहायक होता है। हम उसके कृतज्ञ हैं, हम उसका मान करते हैं, हम उसका आदर और सम्मान करते हैं, किन्तु मुक्ति की प्राप्ति के लिए उसके पास नहीं जा सकते। हम उसके पास जाते हैं और उसके आविष्कारों की यथायोग्य क़द्र भी करते हैं, किन्तु पूर्ण आनन्द, ब्रह्म-ज्ञान के लिए हम उसके पास नहीं जाते। क्यों? क्योंकि उस विषय का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है।

इसी तरह यदि कोई बड़ा प्रत्यक्षमूलक मनोविज्ञानी, दार्शनिक है, जिसने मानसिक क्रियाओं के विषय में हमारा ज्ञान बढ़ाया है; हम उसके पास जाते हैं, हमें मन, बुद्धि, मनोगतभाव और भावनाओं के व्यापार बताने के कारण हम उसके आभारी होते हैं; किन्तु मन की असली शान्ति के लिए 'मिल' या 'स्पेंसर' सरीखे तत्व-वेत्ताओं की भी कोई शरण नहीं लेता। हर एक अपने-अपने मार्ग में बहुत अच्छा है, किन्तु जिस एक वस्तु की हमें ज़रूरत है, वह हर एक हमें नहीं दे सकता।

भारत में ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्हें प्रेत-विद्या अर्थात् प्रेतात्माओं से मेल-मिलाप करानेवाली विद्या का अच्छा अनुभव होता है। ये लोग भूत-प्रेतों से सम्बन्ध रखते हैं, जो दूसरा संसार कहलाता जाता है, उसके विषय में इन्हें बहुत कुछ जानकारी होती है। किन्तु जैसे इस जगत् के भौतिक पदार्थों की जानकारी है, वैसे ही दूसरे जगत् का ज्ञान है।

दुनियादारी तो दुनियादारी ही है, वह चाहे इस संसार की हो या दूसरे संसार की, चाहे इस प्रथम स्थूल संसार की हो या दूसरे मानसिक संसार की। असलियत या परमार्थतत्व इन सब जगतों का आधार है और इन सब से ऊपर है। तत्व की इस असलियत का ज्ञान ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है। हम इन मानसिक-जगत् विशारदों का वैसा ही स्वागत करते है जैसा हम एक वैज्ञानिक या शास्त्रज्ञ का स्वागत करेंगे, किन्तु असली शान्ति और सच्चे सुख के लिए हम इनके सामने घुटने नहीं टेकते, इनके द्वारा हमें वह शान्ति नहीं मिल सकती।

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी दार्शनिक आत्मज्ञान पा लेता है, प्रेत-विद्या-विशारद भी यथार्थ आत्मज्ञान से सम्पन्न हो जाता है, किन्तु उसकी मानसिक वा प्रेत-विद्या जाननेवाली शक्ति का अथवा मृतात्माओं से वार्तालाप करने की सामर्थ्य का उसके ब्रह्म-ज्ञान से इतना ही सम्बन्ध है जितना राम के गणित-विद्या-ज्ञान का सम्बन्ध राम के वेदांत से है। राम गणित-विद्या का उपाध्याय था, किन्तु इस वेदांत से उस गणित-विद्या का कोई वास्ता नहीं है जिसका कि वह प्रचार कर रहा है। हमें इन दोनों को एक में न मिलाना चाहिए।

भारतवर्ष में राम का एक मित्र, एक भला आदमी, इस प्रेत-विद्या में बड़ा निपुण था। कुछ लोग भूल से इस प्रेत-विद्या को आत्मवाद भी कह देते हैं। एक दिन एक स्थान पर उसने तमाशा दिखाया, उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई, और गणित-विद्या की एक पोथी उसके सामने रख दी गई। यह पुस्तक उसने कभी नहीं देखी थी। किन्तु आँखों पर पट्टी होने पर भी वह उसको पढ़ने लगा। गणित-विद्या के कुछ विशेष चिह्न होते हैं, और इस पुस्तक में ऐसे नाम थे जिन्हें वह नहीं जानता था। उसने एक कोरा ताव माँगा और गणित की पोथी के पन्नों में जो कुछ लिखा था, उसे काग़ज़ पर लिखने लगा। वह चिह्नों के विशेष नाम तो नहीं बतला सका, पर सबकी नक़ल कर डाली। उसमें यह शक्ति

थी। वह दूसरे के विचारों को भी जान सकता था। आप अपने हाथ से एकान्त में कुछ लिख लीजिये, वह तुरन्त उसकी नक़ल कर देगा। अच्छा, आप एक प्रकार से भले ही उसे आत्मवादी कह लें, किन्तु वह पवित्र चरित्रवान् पुरुष नहीं था, नाम-मात्र को भी नहीं। वह दुनियादार, केवल दुनियादार था। न वह पवित्र था और न सुखी!

इस प्रेत-विद्या (आत्मवाद) को प्रायः विज्ञान की पदवी दी जाती है, और विज्ञान की हैसियत से हम उसका आदर कर सकते हैं, किन्तु इसको उस ज्ञान से कदापि न मिलाना चाहिए जो हमें सच्चिदानन्द का दाता है, जो हमें सब प्रलोभनों की पहुँच से परे उठा देता है।

हम भारत के एक ऐसे मनुष्य को जानते हैं, जो देखने में ६ महीने तक मुर्दा बना रहा। जीवन के आधार-रूप प्राणों को रोक देने की इस क्रिया को 'खेचरी मुद्रा' कहते हैं और हठयोग के ग्रन्थों में इसकी क्रिया पूरे विवरण-सहित दी हुई है। उसे खेचरी मुद्रा का अच्छा अभ्यास था। उसमें जीवन का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता था, उसकी नाड़ियों में रक्त नहीं बहता था, किन्तु ६ महीने बाद वह फिर जी उठा। वह आदमी सचमुच बड़ा चमत्कारिक था। उसे दूसरा ईसा कह सकते है। वह केवल तीन दिन नहीं, पूरे छः मास तक मुर्दा रहने के बाद जी उठा था। किन्तु वह न सुखी था और न स्वतन्त्र। उसने जो पाप किये थे, राम को उनका वर्णन करने की कोई ज़रूरत नहीं। जिस राजा के दरबार में वह ऐसे काम करता था, उसने उसे अपने राज्य से निकाल दिया था।

एक और दूसरा आदमी था, जो पानी पर चलता था। एक सच्चे साधु ने हँसकर उससे पूछा कि यह शक्ति पाने में तुम्हें कितना समय लगा? उसने उत्तर दिया, सत्रह वर्ष। साधु ने उत्तर दिया—"सत्रह वर्ष में तुमने एक ऐसी शक्ति पाई है जिसका मूल्य दो पैसा है। हम एक मल्लाह को दो पैसे देते है और वह हमें नदी के पार उतार देता है।"

यथार्थ में सभी व्यक्तिगत शक्तियाँ परिच्छिन्न हैं। वे तुम्हें उतना ही बाँध लेती हैं जितना कि कोई अन्य सम्पत्ति बन्धन में डाल सकती है। ज़ंजीरें ज़ंजीरें ही हैं, चाहे लोहे की हों या सोने की, वे समान रूप से तुम्हें ग़ुलाम बनाती हैं।

यदि ये शक्तियाँ मनुष्य को अति पवित्र बनाती होतीं, हमें तो कुत्ते को अति पवित्र समझना होगा। कुत्ते सूँघकर जान लेते हैं कि बारहसिंगा कहाँ है। कुत्तों में ऐसी घ्राण-शक्ति होती है, जैसी मनुष्य में नहीं होती, इसलिए वे अवश्य पवित्र होंगे।

एक फ़क़ीर था, जो किसी भी मनुष्य को बादशाह बना सकता था। यह शक्ति उसे कैसे मिली थी? पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मैंने पहले उपवास किये और तदुपरान्त गौओं की जूठन खाई, फिर एक विशेष विधि से बहुत दिनों तक रहा और फलस्वरूप यह विशेष शक्ति पाई। एक भाई ने उससे कहा—"राज्य भोगने का अधिकार तुम हर एक व्यक्ति को दे सकते हो, किन्तु तुम्हें तो केवल गौओं की जूठन ही मिलती है।" भारतवासी इन शक्तियों के चाहनेवाले मनुष्यों का ऐसा ही आदर और मान करते हैं। सभी भारतीय जानते है कि केवल आत्मज्ञान ही ऐसा ज्ञान है, जो हमें सब ज़रूरतों से परे कर सकता है।

एक हठयोगी एक भारतीय भूपति के सामने आया और उसने लम्बी समाधि ले ली। जीवन का कोई चिह्न उसमें बाक़ी न रहा। वर्षा और तूफान से उसकी रक्षा करने के ख़्याल से लोगों ने उसके ऊपर एक झोंपड़ा बना दिया। एक रात को बड़ा बेढब तूफ़ान आया और झोंपड़े की ईंटें योगी के शिर पर गिर पड़ीं। वह फिर जीवित हुआ और पहली बात जो उसके मुख से निकली, यह थी "मेरा इनाम, राजा मेरा इनाम एक घोड़ा, मुझे एक घोड़ा चाहिए महाराज!" इस प्रकार भारतवासी जानते हैं कि जब तक समाधि की अवस्था रहती है, तभी तक वे अच्छी हालत में रहते हैं, वे सुखी रहते हैं; किन्तु जब भौतिक धरातल पर

(परिच्छिन्न भाव में) आते हैं, तब उतने ही दुखी रहते हैं जितना कि कोई भी दूसरा प्राणी ।

मुख से कटार निकालना, तलवार या बड़ा चाक़ू निगल लेना, त्वचा में सूजा छेद लेना, और ऐसी दूसरी बहुतेरी बातें भारत में बहुत साधारण हैं । दूसरी बात, तीन या चार घंटे तक मन को समाधि-अवस्था में रखना वैसी समाधि-अवस्था नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मज्ञान अनिवार्य हो । भारत में हज़ारों मनुष्य इसका अभ्यास करते हैं, किन्तु अधिकांश मामलों में यह अभ्यास केवल स्वर्ग से प्रोमीथियस (Prometheus) की अग्नि की चोरी के तुल्य है । यह हमारी आँखों के सामने थोड़े समय के लिए पर्दा डाल लेने के समान है, किन्तु ऐसे अभ्यासों से सदा के लिए शान्ति नहीं मिल सकती ।

एक सरोवर या झील का उदाहरण लीजिये । उसके ऊपर काई की हरी चादर बिछी है । इस चादर को हटाते ही नीचे का सुन्दर, मनोरम जल चमकने लगता है, किन्तु तुम्हारे हाथ के अलग हटते ही बिल्लोर-से निर्मल जल को फिर हरी चादर ढक लेती है । चित्त की झील को साफ़ कर डालना युक्तिसंगत, साध्य और व्यावहारिक है । हरी चादर को हटाकर कुछ मिनटों के लिए उसे साफ़ कर लेने से हम ध्यानावस्था को प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु इस तरह रोग सदा के लिए चंगा नहीं होता । इसके लिए बारम्बार थोड़ी-थोड़ी हरी चादर या काई निकालो और दूर फेंक दो । इस तरह बाक़ी चादर पतली होती जायगी और अन्त में सारी झील साफ़ हो जायगी । चित्त की झील को सदा के लिए साफ़ करने का यही उद्देश्य वेदान्त ने अपने सामने रक्खा है ।

पुनः एक सर्प का उदाहरण लो । यह साँप जब सर्दी से ठिठुर जाता है, तब कुंडली मारकर गेंद बन जाता है । उस समय आप उसे हथिया सकते हैं । उसे घर ले जाओ और आग के सामने रख दो । गर्मी पाकर वह अपने को फैला लेगा और फिर काटने लगेगा । उसकी

द्वेष-बुद्धि नष्ट न होने के कारण फिर से लौट आती है, और विष तो उसमें है ही। इसलिए सर्प के विष को समूल नष्ट करने की आवश्यकता है। कुछ लोगों के ध्यान करने की क्रियाओं और अभ्यासों का यह दूसरा उदाहरण है। अधिकांश लोगों के मामले में समाधि की अवस्था केवल मन-रूपी साँप के कुंडली मार लेने के सदृश होती है। कामनायें इस साँप के ज़हरीले दाँत हैं, जो कुछ काल के लिए वाह्यतः बेकार हो जाते हैं। यह क्षुद्र चित्त सोने लगता है, दूसरे शब्दों में समाधि की अवस्था में प्राप्त हो जाता है। साँप प्रत्यक्षतः मुर्दा है, सर्दी खा गया है, किन्तु असल में मरा नहीं है। साँप को हथियाने की एक दूसरी विधि है। बीन बाजा लेकर हम तब तक मंत्र फूँकते रहते हैं, जब तक वह मोहित न हो जाय। फिर अपनी प्रवीणता से हम साँप को पकड़कर उसके दाँत और विष-थैलियाँ उखाड़ लेते हैं। अब तो साँप विष और दन्त-हीन है, वह हमें हानि नहीं पहुँचा सकता, मन को क़ाबू में लाने का यह वेदान्ती ढंग है।

प्रेत-विद्या-विशारद आम तौर पर अपने मन को उस अवस्था में ले आते हैं जिसकी तुलना सर्दी खाये हुए साँप से की जा सकती है। उस समय वे आनन्द की अवस्था में भी होते हैं, किन्तु फिर कर्ममय जीवन में उनके नातेदार, भाई-बहन, शत्रु-मित्र, सब आ-आकर कामनाओं तथा मनोविकारों के सर्प को गर्मा देते हैं, वे इस साँप को जगा देते हैं। मनोविकारों तथा कामनाओं रूपी सर्प के जाग जाने पर अन्तर्गत चित्त फिर दुष्टता करने लगता है। साँप के विष-दन्त उखाड़े नहीं गये थे, वे उतने ही ज़हरीले होते हैं जितने पहले। इस प्रकार चरित्र का निर्माण नहीं होता, सच्ची रूहानियत, परमार्थ-निष्ठा प्राप्त नहीं होती।

इन लोगों में से अधिकांश तो अपनी रुपया कमाने की शक्तियों में वृद्धि करना चाहते हैं। मन की एकाग्रता बहुत ठीक है, किन्तु साँप को विष-हीन बनाओ। सर्प के विषदन्त उखाड़ डालो; सब प्रलोभनों से

ऊपर उठो, अपना चरित्र बनाओ। इन बातों पर ध्यान दीजिये तुम्हें यही याद रहनी चाहिए। सारी कमज़ोरियों के दूर हो जाने पर, तुम फिर विषदन्त-हीन सर्प हो जाते हो, वेदाँतों के सर्प होते हो। ऐसी हालत में भी तुम ठिठुर सकते हो। किन्तु उस हालत में रहने की अब कोई ज़रूरत नहीं। तुम्हारे डंकों में अब ज़हर नहीं है। अब तुम चरित्रवान् हो और कर्ममय जीवन में भी अब तुम्हें क्षति नहीं पहुँच सकती, तुम उससे परे हो।

एक मनुष्य शराब पीते-पीते उन्मत्त हो जाता है, और उस दशा में अपना घर साढ़े सात हज़ार रुपये को बेच डालता है। इसी मतवाली दशा में साढ़े सात हज़ार रुपये में अपना घर बेचने के लिए विक्रय-पत्र भी लिख देता है। उसकी स्त्री उसे शीघ्र ही सिरका या और कोई खट्टी चीज़ पिलाती है और वह होश में आ जाता है। तब उसे अपनी करतूत पर पश्चात्ताप होता है। वह अपना बड़ा भारी घर कौड़ियों के मोल बेच डालने की बेवकूफ़ी पर रंज करता है। अब वह घर मोल लेनेवाले पर, मुक़दमा चलाने का निश्चय करता है और अपनी मदहोशी के आधार पर जिसके कारण वह अपने कामों का ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, मुकदमा जीत जाने की आशा करता है, क्योंकि उस समय वह सचेत नहीं था। यही हालत कुछ लोगों की है। वे एक तरह के नशे की हालत में हैं, और ऐसी हालत में वे ईश्वर के हाथ अपने को बेच डालते हैं; अपना सब कुछ दे देते हैं; अपनी सारी सम्पत्ति त्याग देते हैं; पिता, माता, बहन, भाई, मित्र—सब कुछ दे डालते हैं, सर्वस्व ईश्वरार्पण कर देते हैं। ईश्वर के लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया है। बहुत खूब! वे उस समय योग (एकाग्रता) की अवस्था में होते हैं। किन्तु थोड़ी ही देर के बाद सांसारिक ज़रूरतें उन्हें सताने लगती हैं और छोटी-छोटी चिन्तायें डसने लगती हैं, वे उन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराती हैं। उन्हें मानों सिरका दिया जाता है, जिससे सारा नशा

हिरन हो जाता है, और तब वे हर एक चीज़ परमेश्वर से लौटा लेते हैं, तब वे फिर कहने लगते है कि यह देह ईश्वर की नहीं, मेरी है; यह घर ईश्वर का नहीं, मेरा है। इतना ही नहीं, वे उल्टा माँगने लगते है। यहाँ तक कि वे उसे भी ले लेना चाहते है, जो उनके पडोसी का है। वे ईश्वर से हर एक वस्तु लौटा लेना चाहते हैं। थोड़ी देर के लिए भी ब्रह्म-भाव में रहना बुरा नहीं, अच्छा है। किन्तु सच्ची शान्ति और सुख तुम्हें केवल तभी हो सकता है, जब तुम पूर्णता की उस अवस्था में पहुँच जाते हो, जब तुम हर एक वस्तु सदा के लिए ब्रह्मार्पण कर देते हो, जब तुम अपने चरित्र का निर्माण कर डालते हो। फिर कोई क्लेश तुम्हें छू नहीं सकता। तब दुनिया की कोई चिन्ता, कोई डर, कोई आशा नहीं रह जाती। तुम इन सब झगड़ों से उपर उठ जाते हो।

वेदान्त के अनुसार, यदि एक क्षण के लिए भी तुम परब्रह्म से युक्त हो जाओ, तो तुम्हें कुछ शक्तियाँ मिल सकती हैं। किन्तु क्या तुम सारी दुनिया अपनी नहीं करना चाहते? त्याग की इन ऊँचाइयों पर यदि विधिपूर्वक पहुँचने में तुम सफल हो जाओ, तो सब कुछ तुम्हारा हो जाता है।

यदि राजा के किसी पदाधिकारी की हम तलाश करें, तो अकेले उसी को तो हम अपना मित्र बना सकते हैं, उसके द्वारा हम बादशाह और दूसरे अधिकारियों को अपना मित्र बनाने में समर्थ हो सकेंगे या नहीं, यह संदेहात्मक है। इसलिए पहले बादशाह की तलाश करो और तब दूसरे मातहत स्वतः अपनी ही इच्छा से तुमको तलाश करेंगे और तुम्हारे मित्र हो जायँगे।

भारत में भी कुछ लोग विशेष शक्तियाँ पाना चाहते हैं और उनको पाने में सफल भी होते है। किन्तु सच्चे लोग इनसे घृणा करते हैं। वे त्याग के मार्ग पर चलना चाहते है, वे एक ही आवश्यक वस्तु

को जानना चाहते हैं। त्याग के सिवा इस संसार में कोई दूसरी शक्ति नहीं। किन्तु विशेष शक्तियों के पाने में त्याग अधूरा होता है। त्याग को पूर्ण होने दो, तो राज्य भी पूर्ण मिलेगा। सारी दुनिया तुम्हारी हो जायगी। वे लोग जो त्याग के मार्ग पर चलते हैं, ख़ुद बादशाह को ढूँढ लेते हैं। अपने ही अन्दर बादशाह का साक्षात्कार हो जाने पर सभी कर्मचारी अपने आप तुम्हारे सेवक हो जाते हैं। यह स्वाभाविक मार्ग है। तब विशेष शक्तियाँ स्वतः तुम्हें ढूँढने को विवश होंगी। तुम शक्तियों को न ढूँढो, शक्तियाँ तुम्हें ढूँढेंगी।

क्या प्रेत-विद्या की शक्ति को बढ़ाना उचित है? इस शक्ति ही के लिए इसका बढ़ाना दुनियादारी है। वेदान्त कहता है, तुम मृतात्माओं से वार्तालाप कर सकते हो, निस्सन्देह यह संभव है। किन्तु जीतों से व्यवहार करना क्या उतना ही अच्छा नहीं? एक प्रकार से उससे भी अधिक अच्छा है। यहाँ एक दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि मरे हुए हमारे पास आते हैं, या हमारा अपना आप ही उन रूपों को ग्रहण कर लेता है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि यदि स्थूल भौतिक जगत् की दृष्टि से तुम सूक्ष्म जगत् (प्रेत-जगत्) पर दृष्टि डालते हो, तो तुम कह सकते हो कि प्रेत तुम्हारे पास आते हैं, किन्तु तत्त्व-दृष्टि से तुम्हारा यह भौतिक जगत् ही नाम-मात्र है, तब स्थूल भौतिक जगत् के लोगों का यह कहना भी ग़लत होता है कि "अमुक व्यक्ति मुझसे मिलने आया था।" तत्त्व की दृष्टि से यह ग़लत है, क्योंकि वह केवल तुम्हारा अपना आप ही है, जो तुम्हारे सामने, तुम्हारे ऊपर, तुम्हारे नीचे खड़ा हुआ है, अन्य कोई नहीं। इन सब बाह्य विविध नाम-रूपों में स्वयं तुम्हीं आविर्भूत हुए हो। वेदान्त के अनुसार बन्धु, मित्र तुम ही हो। वस्तुतः यह कहना सत्य नहीं है कि प्रेत आते हैं; दूसरे रूपों और दूसरी छायाओं में प्रकट होकर तुम ही प्रेत बन जाते हो।

क्या मानसिक (प्रेत-विद्या) शक्ति प्राप्त करने के लिए कोई नियत

उपाय अनुसरण करने योग्य हैं ? हाँ, हैं। यदि कोई इंजीनियर बनना चाहता है, तो उसे तत्सम्बन्धी विशेष शिक्षा प्राप्त करनी होती है ; यदि कोई वैद्य होने की इच्छा करता है, तो उसे वैद्यक महाविद्यालय में जाना होता है। इसी तरह इन प्रेत-विद्या-विषयक चमत्कारों को देखने के लिए हमें विशेष शिक्षा पानी होगी, किन्तु इस समय उसके बताने की ज़रूरत नहीं है। राम छाया-मूर्तियों या भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ने या परेशान होने की सिफ़ारिश न करेगा। जहाँ कोई पवित्र पुरुष रहता है, वहाँ जाने की उनकी हिम्मत ही नहीं पड़ती।

राम एक बार हिमालय की एक गुफा में रहता था, जो प्रेतों का निवास-स्थान होने के लिए विख्यात थी। आस-पास के ग्रामों में बसने-वाले लोगों का कहना था कि अनेक साधु एक ही रात उस गुफा में रह-कर मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। साथ ही कुछ दर्शकों के डरने और मूर्छित हो जाने की बात भी कही जाती थी। जब राम ने उस गुफा में रहने की इच्छा प्रकट की, तो हर एक व्यक्ति आश्चर्य में पड़ गया। राम कई महीने उस गुफा में रहा और एक भी प्रेत या भूत नहीं आया। मालूम पड़ता है कि वे सब भाग गये थे। गुफा के भीतर साँप और बिच्छू थे, और उसके बाहर बाघ और चीते। वे बराबर वहीं बने रहे, किन्तु राम के शरीर को कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई।

वेदान्त सिद्ध करता है कि स्वतंत्र या जीवन्मुक्त लोग मृत्यु के बाद कदापि प्रेतयोनि नहीं पाते। भूतों या प्रेतों का जामा उन्हें धारण करना पड़ता है, जो अपनी ही कल्पनाओं के गुलाम होते हैं। उन छायात्मक आकारों में केवल आसक्त प्राणियों को ही बँधना पड़ता है।

वार्तालाप करनेवालों में डॉक्टर जॉनसन शिरोमणि माना जाता था। उससे तर्क में पार पाना बड़ा कठिन काम था। एक तो उसके वाक्‌बाणों का निशान कभी चूकता ही न था और यदि चूक भी जाय तो भी वह येन-केन-प्रकारेण वाक्-युद्ध में प्रतिपक्षी को चित्त कर देता था। संक्षेप में,

वह वाद-विवाद में प्रतिद्वन्द्वी को चुप किये बिना कभी न हटता था। ऐसे डॉक्टर जॉनसन ने एक दिन स्वप्न में 'बर्क' से अपने को परास्त होते देखा। जॉनसन-जैसे चरित्र वाले मनुष्य के लिए यह स्वप्न बड़ा ही भयङ्कर था। वह उठ बैठा, उसे बड़ी बेचैनी हुई, वह फिर सो न सका। किन्तु मन अपनी प्रकृति—अपनी दैवी प्रकृति—के अनुसार अधिक काल तक खिन्न नहीं रहता। डॉक्टर जॉनसन को भी अपने मन को क़ाबू में लाना पड़ा, किसी-न-किसी तरह उसे शांत करना पड़ा। वह अपने को धीरज देने लगा। उसने विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि बर्क की युक्तियाँ भी मेरे ही मन की उपज है। असली बर्क उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता है, वास्तव में मैंने ख़ुद ही अपने सामने बर्क के रूप में उपस्थित होकर अपने को नीचा दिखाया है। बस, संसार के द्वैत के विषय में वेदान्त का ऐसा ही सिद्धान्त है। इसी प्रकार तुम स्वयं ही अपने सामने भूतों, प्रेतों, शत्रुओं, मित्रों, पड़ोसियों, झीलों, नदियों, और पहाड़ों के रूप में प्रकट होते हो। स्वप्नों में तुम नदियाँ और पहाड़ देखते हो। यदि वे तुमसे सचमुच बाहर हों, तो बिछौने को नदी के जल से भरपूर हो जाना चाहिए और तुम्हें दिखाई पड़नेवाले पहाड़ों के बोझ से तुम्हारे कमरे को तुम्हारे पलँग के साथ दबकर चकनाचूर हो जाना चाहिए। वास्तव में वे विशाल पर्वत और बहते हुए नद-नाले सब तुम्हारे भीतर हैं। तुम अपने आपको दो टूक कर लेते हो, एक ओर तुम बाहरी व्यापारों के रूप में प्रकट होते हो और दूसरी ओर तुम्हीं उन पर क्षुद्र विचार करनेवाले कर्ता बन जाते हो। वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं हो। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाम-रूपात्मक अनात्मा भी। तुम ही सुन्दर गुलाब हो और प्रेमी बुलबुल भी तुम हो। तुम फूल हो और भ मी तुम हो! हर एक चीज़ तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देव-दूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। इसे जानो, समझो, अनुभव

करो और तुम मुक्त हो। यह है संन्यास (त्याग) का मार्ग। अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, अन्यथा ठोकरें खाते रहोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में रक्खो, सदैव अपने केन्द्र में स्थित रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज़ न हिला सकेगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

४

चरित्र-सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम

[१७ दिसम्बर, १६०२ को हारमेटिक ब्रदरहुड हाल, सन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

जिस मनुष्य ने अपने आपको एक बार जान लिया है, उसके लिए फिर संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु रह जाती है जिसकी वह इच्छा करे ? राजा-महाराजाओं के ख़ज़ानों की तो बात ही क्या, सारे विश्व-ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु उसका ध्यान नहीं खींच सकती। दुनिया की कोई भी सुन्दरता और कोई भी मनोहरता उसका ध्यान नहीं आकर्षित कर सकती, विज्ञान के समस्त भाण्डारों में भी कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो उसे लुभा सके। अरे ! ऐसा सुख, ऐसा परम प्रमोद ऐसा पूर्ण आनन्द, और कितना अवर्णनीय ! वह भाषातीत और अनिर्वचनीय है। वह अनन्त हर्ष, वह परम आह्लाद, वह असीम सुख तुम ही तो हो, वह तुम्हारा असली स्वरूप है, वही तुम्हारी आत्मा है।

बस, यह जानते ही तुम समस्त ज़रूरतों तथा आवश्यकताओं से ऊपर जा खड़े होते हो। इसे पाते ही अखिल विश्व तुम्हारा हो जाता है।

दुनिया के प्रपंचों, मृगतृष्णाओं और माया-मोह के पीछे इस अनन्त सुख, इस परम आनन्द को छोड़कर, ओह ! संसार के लोग

कैसी भयंकर भूल करते हैं, कितनी बड़ी ग़लती करते हैं। सम्पूर्ण सुख तुम्हारा है, तुम वही हो। उसकी तलाश क्यों नहीं करते ? अपने जन्म -स्वत्व पर अधिकार क्यों नहीं करते ? ईसो (Esaw) की तरह लोग अपने जन्मजात स्वत्व, परमानन्द को पेट के लिए बेंच देते हैं।

जूदास इस्कैरियट (Judas Iscariot) ने चाँदी के तीस टुकड़ों के लिए ईसा मसीह को बेंच दिया था। अपने असली आत्मस्वरूप ईसा को, प्रभुओं के प्रभु को, इस दुनिया के मायावी सुखों के लिए न बेंचो, ज़रा बुद्धि से काम लो। सच्चे बुद्धिमान् बनो।

सच्चा सुख तुम्हारे भीतर है, स्वर्गीय अमृत का महोदधि तुम्हारे भीतर है। उसे अपने भीतर ढूँढो, उसे मालूम करो, उसे ज्ञात करो। वह यहीं है, तुम्हारा असली 'स्वरूप'। वह शरीर, मन, बुद्धि नहीं है। वह न अभिलाषा है, न अभिलाषी, और न अभिलाषा का विषय। तुम शाश्वत इन सब से ऊपर हो। विषयी, विषय और विषयेच्छा—सब आविर्भाव मात्र हैं। तुम हँसते हुए फूल के रूप में, चमकते हुए तारागणों के वेष में, प्रकट होते हो। दुनिया में है ही क्या, जो तुम्हें किसी भी वस्तु का अभिलाषी बना सके ?

ज़रा ॐ का उच्चारण करो, ॐ का जाप करो, और जब जपो, तब अपना सारा चित्त उसमें लगा दो, अपनी सारी शक्तियाँ उसमें भर दो, अपना पूरा अन्तःकरण उसमें रख दो, उसका अनुभव करने में अपने पूरे बल का प्रयोग करो। इस 'ॐ' मंत्र का अर्थ है—"मैं वह हूँ," "मै और वह एक है," ॐ "वही मै हूँ" ॐ, ॐ। यदि सम्भव हो, तो ॐ जपते समय अपने चित्त के सामने अपनी सब कमज़ोरियों और अपने सब प्रलोभनों को तलब करते रहो। उन्हें अपने पैरों से कुचल दो, उन्हें चूर-चूर करके बाहर निकालो, उनसे ऊपर उठो और विजयी होकर आओ।

भारतीय पुराणों में एक सुन्दर कथा है। उसमें कृष्ण के यमुना में

कूदने का ज़िक्र है। यह देखकर पास खड़े हुए उनके पिता, माता, मित्र और कुटुम्बी सन्न रह गये। उनकी उपस्थिति ही में वे धारा में कूद पड़े। वे किंकर्तव्यविमूढ़-से थे। उन्होंने समझा कि कृष्ण गया, अब कभी बाहर न निकलेगा। कथा कहती है कि कृष्ण नदी की उस तह पर पहुँचे, जहाँ एक हज़ार फणोंवाला नाग रहता था। कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाने लगे, वे ॐ मंत्र गाने लगे, वे नाग के फणों को ठुकराने लगे, वे एक-एक करके नाग के शिरों को रौंदने लगे; किन्तु ज्योंही उन्होंने एक एक करके नाग के अनेक फण चूर्ण किये, त्योंही दूसरे फण निकल आये और इस तरह उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाई पड़ी। किन्तु कृष्ण बराबर नाग के फणदार शिरों पर कूदते और नाचते रहे, वे अपनी बाँसुरी से मंत्र गाते रहे। वे निरन्तर अपना मंत्र जपते तथा नाग के शिरों को रौंदते रहे। आध घण्टे में नाग मर गया। मुरली के मनोहर स्वर और कृष्ण के चरणों-द्वारा नाग के मर्दन से हमें कोई प्रयोजन नहीं; नाग मर गया। नदी का जल रक्तमय हो गया और नाग का रुधिर नदी के जल में मिल गया। नाग की सब नागिनियाँ कृष्ण की पूजा करने आईं। वे कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का अमृत पान करना चाहती थीं। कृष्ण नदी से बाहर निकले, आश्चर्य-चकित होकर उनके सम्बन्धियों और मित्रों ने उन्हें देखा, जैसे उनके प्राण लौट आये हों। अपने प्यारे कृष्ण को पाकर, अपने प्रेमपात्र को फिर अपने बीच में देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुए कि उनके उल्लास की कोई सीमा न रही। इस कहानी के दोहरे अर्थ हैं। यह मानो उनके लिए एक शिक्षा-प्रद पाठ है, जो अपनी आत्मा में सत्यता का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

कथा में यमुना नदी चित्त की प्रतीक है। मन को झील की उपमा दी गई है। अब जो कोई कृष्ण बनना चाहता है (कृष्ण-शब्द देवता, ईश्वर का अर्थवाचक है), जो कोई खोये हुए स्वर्ग को फिर पाना चाहता है, उसे अपने आप ही में गम्भीर गोता लगाना होगा।

अपने चित्त की झील में गहरा उतरना पड़ेगा, उसे अपने ही स्वरूप में गहरी डुबकी लगानी होगी। तली में पहुँचकर उसे विषधर नाग का, राग-द्वेष और इच्छा के ज़हरीले साँप का, दुनियादारी में फँसे हुए मन-रूपी विषधर भुजंग का सामना करना होगा। उसे उसका मर्दन करना होगा। उसके फणों का विनाश करना होगा। उसके अनेक शिरों को ठुकराना होगा। उसे उसको मुग्ध करके नष्ट करना होगा। तात्पर्य यह कि साधक को सबसे पहले अपने मन की झील को साफ करना चाहिए। अपने मन को सब प्रकार के विकारों से निर्मल कर लेना चाहिए। अच्छा, मन निर्मल ,करने की विधि क्या है? विधि वही है, जिसका कृष्ण ने अनुसरण किया था। उसे अपनी बाँसुरी के द्वारा ॐ मंत्र बजाना होगा। उसे उस बाँसुरी के द्वारा उस दिव्य, उस कल्याण-कारी गीत को गाना होगा।

अब, आइये, देखिये—यह बाँसुरी क्या चीज़ है? साधारणतः यह केवल एक तुच्छ वस्तु मानी जाती है। बाँसुरी की ओर ध्यान से देखो। भारतीय कवि उसे बड़ा महत्व देते हैं। ऐसा कौन-सा महान् काम मुरली ने किया है, जो उसे इतना ऊँचा पद मिला? किस महान् कर्म के बल से बाँसुरी ने इतना ऊँचा आसन पाया? कृष्ण पूजनीय थे, महाशक्तिशाली सम्राटों के प्रेम-भाजन थे, सुविशाल भारत में सहस्रों सुन्दरियाँ उनकी उपासना करती थीं। कृष्ण परमप्रिय थे, शक्तिशाली थे, प्रेम की मूर्ति थे। बड़े-बड़े महाराज और सम्राट् कृष्ण की दयादृष्टि के भिखारी रहते थे। वही कृष्ण इस बाँसुरी को क्यों चूमते थे? ऐसे गौरव-मय स्थान पर उस बाँसुरी को किसने पहुँचाया? बाँसुरी का उत्तर था—"मुझमें एक गुण है, अच्छी बात है, बड़ी अच्छी बात है। मैंने अपने आपको अन्य पदार्थों से ख़ाली कर लिया है।"

बाँसुरी शिर से पैर तक ख़ाली, पोली होती है। उसने कहा—"मैंने अपने को अनात्म से ख़ाली कर लिया है।" इस प्रकार कथा के

अनुसार मुरली को अधरों से लगाने का अ ै है मन को शुद्ध करना, मन को परमात्मा में लगाना, हर एक वस्तु को परमात्मा के, यार के चरणों में भेंट करना। अपने सच्चे दिल से त्याग करो। देह पर कोई दावा न रक्खो; सारी स्वार्थपरता, सारे स्वार्थ-पूर्ण सम्बन्ध, मेरे और तेरे के सभी विचार त्याग दो। इनसे ऊपर उठो। ईश्वर का आराधन करना, उसका इस तरह पर आराधन करना जिस तरह पर कोई दुनियादार आशिक़ अपने माशूक़ से प्रेम करता है। सच्ची आत्मा के अनुभव के लिए उसी तरह भूखे और प्यासे होना जिस तरह पर दुनियादार आदमी उस वस्तु के लिए विकल और लालायित होते हैं, जो उन्हें बहुत दिनों से नसीब नहीं हुई हो। केवल परमेश्वर के लिए भूखे और प्यासे होना, सत्य के लिए उत्कट इच्छा करना, अपने परम स्वरूप का आनन्द लेने के लिए उत्सुक होना, चित्त को ऐसी अवस्था में लाना ही बाँसुरी को ओठों में लगाना है। मन की इस दशा में, चित्त की इस शान्ति में, ऐसे शुद्ध अन्तःकरण से ॐ मंत्र का उच्चारण करो, पवित्र ॐ अक्षर का गान आरम्भ करो। बस, यही है बाँसुरी में संगीत की साँस डालना। अपने सम्पूर्ण जीवन को बाँसुरी बना डालो। अपने समग्र शरीर को बाँसुरी बना दो, उसे स्वार्थपरता से ख़ाली कर दो और उसे ईश्वर के श्वास से भर दो।

ॐ का उच्चारण करो, जप करो और जपते समय अपने मन की झील के भीतर वह अन्वेषण शुरू करो। अनेक जीभों-वाले विषैले साँप को ढूँढ़ निकालो। संसार की अनेक ज़रूरतें, सांसारिक प्रवृत्तियाँ और स्वार्थपूर्ण कामनाएँ ही मानों इस ज़हरीले साँप के शिर, जिह्वा और विषदन्त हैं। ॐ अक्षर जपते हुए उन्हें एक-एक करके धूल में मिला दो। अपने पैरों से उन्हें कुचल डालो, एक-एक करके छाँट डालो, उन्हें जीत लो और नाश कर डालो।

शुद्ध आचरण का निर्माण करो, अपने चरित्र को शुद्ध करो। निश्चयों

को दृढ करो, प्रबल प्रतिज्ञाएँ और गंभीर संकल्प करो, इसलिए कि तुम झील से बाहर आओ, जब तुम झील से बाहर आओ, तब विषाक्त जल तुम्हें विषलिप्त न करने पाये। इसलिए कि जो कोई उस पानी को पिये, उसे ज़हर न चढ़े। उस जल को पूरी तरह साफ़ करके चित्त-रूपी झील से बाहर आओ। चाहे लोगों का तुमसे मतभेद हो, वे चाहे तुम्हें सब तरह की मुसीबतों में डालें, वे भले ही तुम्हें बदनाम करें, किन्तु उनकी रीझ और खीझ, उनकी धमकियों और मधुर वचनों के होते हुए भी तुम्हारे चित्त की झील से दिव्य, निर्मल, ताज़े जल के सिवाय और कुछ नहीं निकलना चाहिए। तुम्हारे भीतर से सदैव अमृत का स्रोत बहना चाहिए जिससे तुम्हारे लिए स्वार्थबुद्धि वैसे ही असम्भव हो जाय जैसा ताज़े चश्मे के लिए उन्हें विषलिप्त करना जो उसका पानी पीते हैं। हृदय को विमल करो, ॐ अक्षर का गान करो, दुर्बलता के सब स्थानों को चुन-चुनकर जड़ से उखाड़ दो। सुन्दर चरित्र का निर्माण कर विजयी होकर निकलो। मनोरागों का सर्प नष्ट हो जाने पर इच्छित पदार्थों को तुम उसी तरह अपनी उपासना करते पाओगे, जिस तरह पर नाग की नागिनियों ने नदी-तल में श्रीकृष्ण की पूजा की थी। नाग के नाश होने पर नागिनी तुम्हारी सेवा करेगीं।

अपने अभ्यास के लिए एक मानचित्र बनाओ। और उस मानचित्र में साधारण पापों तथा त्रुटियों की तालिका बनाओ। इस नक़शे के खिंच जाने पर आप सप्ताह के किसी दिन से कार्य प्रारंभ करें। यदि किसी दिन आपको लोभ या शोक से पीड़ा पहुँची हो, तो आप सीधे लोभ या शोक शीर्षक ख़ाने में उस तारीख़ के सामने (×) चिह्न बना दें, और इसी तरह पर अपनी अन्य त्रुटियों को चिह्नित करते रहें। इसी निजी रोज़नामचा के द्वारा आप अपनी त्रुटियों को अपने सामने ला सकते हैं, और अपनी दुर्बलताओं को सदा अभिमुख रखकर उन्हें परास्त कर सकते हैं।

राम यह सिफ़ारिश नहीं करता कि ये चिह्न केवल मानचित्र में ही बने रहें। आज यदि तुमसे कोई दोष बन पड़ता है, तो तुम अपने प्रति सच्चे होकर आज ही नक्षत्राकार चिह्न बना दो। दूसरे दिन सवेरे या जिस समय तुम्हें सुभीता हो, दरवाज़ा बन्द कर लो, और बिलकुल अकेले बैठकर अपने सामने नक़्शा खोलकर बैठो। उसमें तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुम लोभ या शोक से अथवा किसी अन्य दुर्गुण से दब गये थे। बस, अब अपने आपको उपदेश देना शुरू करो।

इस देश में तुमने दूसरों के अनेक उपदेश सुने हैं। अपने समय के चाहे सब से महान् वक्ता आ जायँ; नहीं, चाहे स्वयं ईसा और परमेश्वर भी आकर व्याख्यान दें, किन्तु दूसरे के उपदेशों से तब तक कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक तुम अपने आपको उपदेश करने को उद्यत नहीं होते। वही अपने को उन्नत कर सकता है, जो स्वयं अपने को उपदेश देता है। तुम जानते हो कि तुम शोक के वशीभूत हुए थे। अब इस भावना की परीक्षा करो और इसके लक्षणों तथा पूर्व-लक्षणों को स्थिर करो। शोक के वश में तुम क्यों और कैसे आ गये थे? कारण निश्चय करो और तब ठीक-ठीक दवा करो। उसी समय किसी उपदेशात्मक पुस्तक का पाठ करो, जैसे भगवद्गीता, इंजील या इमर्सन की रचनाएँ अथवा कोई भी ऐसी पुस्तक पढ़ो, जो शोक के गर्त से तुम्हें ऊपर उठानेवाली हो। इनकी सहायता से तथा अपने उपदेशों और विचारों के मनन से उस भावना को सदा के लिए अपने से निकाल बाहर करने का यत्न करो। यदि उस समय तुम्हें इसका पूर्ण निश्चय हो जाय कि तुमने विजय पा ली है और तुम फिर कभी न हारोगे, चाहे तुम पर विपत्ति का पहाड़ ही क्यों न आ टूटे, जब तुम्हें ऐसा विश्वास हो जाय कि तुमने उसे अपने पैरों से कुचल दिया है, जब तुम्हें अपनी जीत का पूर्ण निश्चय हो जाय, तब उस नक्षत्राकार चिह्न को मिटा दो। बस, तुम मुक्त हो। फिर भूत-काल के लिए अपने

आपको धिक्कारना क्यों ? निर्जीव भूत-काल तो स्वयं अपना मुर्दा आप दफ़न करता रहेगा।

इसी प्रकार एक-एक करके इन दोषों को ठीक करो, हर एक के लक्षण और पूर्व-लक्षण स्थिर करो, फिर अपने आपको उपदेश दो। यहाँ इस प्रकार के लक्षण और पूर्व-लक्षण ठीक करने से पहले तुम में से हर एक को अपने आपको उपदेश देना होगा। हर एक को अपना काम आप ही करना होगा। शांति से बैठे जाओ और जिस बात से तुम्हें पीड़ा पहुँच रही हो, उसका ध्यान करो और ध्यान करते समय ॐ का उच्चारण करो, गायन करो। जब ओंठ उच्चारण करते हों, जब वाणी पवित्र मंत्र जपती हो, जब तुम अपनी प्रतिज्ञाओं के पालन के लिए दृढ़ संकल्प करते हो, तब अनन्त कल्याणकारक स्वर्गीय आशीर्वाद तुम्हें स्वतः प्राप्त होता है। तुम भीतर से शक्ति का अनुभव करोगे। तुम्हारे इन्हीं मनोरोगों को कथा में हज़ार फनोंवाले नाग से उपमा दी गई है। उन्हें एक-एक करके कुचल डालो। वास्तव में सभी त्रुटियों का एक सामान्य कारण है, हमारे सब दोषों का एक सामान्य आधार है। और वह है अज्ञान—सब प्रकार का अज्ञान, विशेषतः शुद्ध आत्मा का अज्ञान, सच्ची आत्मा का अज्ञान।

लोग अपने को शरीर से अभिन्न मानते हैं, उसके आस-पास सब प्रकार के सामान जमा करते हैं, और बाहर के सुखों को प्राप्त करना चाहते है। वे शरीर से अनन्य हो गये हैं, इसीलिये शोकाकुल या दुःखित होते हैं, और होने योग्य भी हैं।

शरीर से ऊपर उठो। यह जानो और अनुभव करो कि तुम अनन्त परमेश्वर, परमात्मा हो। फिर संसार के राग या लोभ से तुम कैसे प्रभावित हो सकते हो ?

प्रकृति के साधारण नियमों का अज्ञान सत्य आत्मा के सामान्य अज्ञान का एक विभाग मात्र है, यही अज्ञान लोगों को रोग

और दुर्बल बनाये हुए है। उसी के अनुसार प्रकृति का एक अटल और परम पवित्र नियम है, जो किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता। वह नियम, क़ानून इस प्रकार है—

कोई भी पाप करो, कोई भी शरारत करो, अपने चित्त में किसी भी प्रकार के अन्याय को आश्रय दो। ये बुरे कर्म, ये घोर पाप चाहे तुम ऐसे स्थान में क्यों न करो, जहाँ तुम्हें निश्चय हो कि कोई भी तुम्हें पकड़े या देखेगा नहीं, जहाँ कोई भी तुम से जवाब तलब न करेगा, बुराई के ये बीज चाहे गुप्त-से-गुप्त स्थान में बोओ, वह स्थान चाहे क़िले की तरह सुरक्षित ही क्यों न हो; पर प्रकृति के अत्यन्त कठोर, निर्दय, अमोघ और अपरिहार्य क़ानून के अनुसार तुम्हें ब्याज सहित अपने कर्मों का मूल्य चुकाना होगा और बुरे कर्मों का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। बुरे कर्मों के लिए तुम्हें पीड़ा और क्लेश अवश्य भोगना पड़ेगा। पाप का पुरस्कार मृत्यु है।

लोग इस तथ्य को एक सामाजिक सदाचार-सम्बन्धी क़ानून मानते हैं और कहते हैं कि इसमें गणित-शास्त्र के नियमों-जैसी शक्ति नहीं होती। वे कहते है कि इसमें गणित-शास्त्र की निश्चयात्मकता नहीं है। ऐसा समझनेवाले सचमुच भ्रान्त हैं। अत्यन्त निर्जन गुफाओं में भी कोई पाप करो और तत्क्षण तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि तुम्हारे पैरों तले की घास तक निर्भय होकर तुम्हारे विरुद्ध गवाही दे रही है। समय समय पर तुम देखोगे कि दीवारों और वृक्षों तक में ज़ुबानें लग जाती हैं और वे बोलने लगते है। तुम ईश्वर को, प्रकृति को धोखा नहीं दे सकते। यह एक सत्य है, यह एक अटल नियम है। हम केवल हृदय के अन्दर पाप की बात विचारते हैं, और बाहरी दुनिया में हम अपने आप को अनर्थ-का एवं पीडादायक परिस्थितियों से घिरा हुआ पाते हैं, तरह-तरह की कठिनाइयाँ और दिक़्क़तें हमारे सामने आती हैं। ऐसी हालत में जिन्हें अपनी विपत्तियों के असली कारण का ज्ञान नहीं होता, वे परिस्थिति को

दोष देते हैं, वे अपने आस-पास की वस्तुस्थिति से लड़ाई ठान बैठते हैं, वे अपने नातेदारों, मित्रों और साथियों पर क़ानूनी मुकद्दमे चलाते हैं। किन्तु यह एक दैवी क़ानून है, जिसकी बाज़ारों में और जंगलों में, संसार के कोने-कोने में घोषणा की जानी चाहिए कि "ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने का यत्न करने से मनुष्यों को स्वयं अंधा होना पड़ेगा, आँखों से हाथ धोना पड़ेगा।"

प्राकृतिक नियम या दैवी विधान का आदेश है कि तुम सदैव पवित्र रहो। अपवित्रता को आश्रय देने से तुम्हें उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ेगा। इन आध्यात्मिक क़ानूनों पर हमें एक-एक करके विचार करना होगा और हम गणित-शास्त्रीय निश्चयात्मकता के साथ उन्हें सिद्ध करेंगे। एक बार जब कोई मनुष्य इन आध्यात्मिक नियमों को समझ जाता है, तब फिर उसके लिए स्वार्थपूर्ण कामनाओं की ओर झुकना असम्भव हो जाता है। अपनी अभिलाषाओं को वश में कर लेने के बाद मन को जितनी देर तक चाहो उतनी देर तक एकाग्र कर सकते हो।

अपने मन को जीतने के लिए क्या उपवास करना आवश्यक है?

उपवास के सम्बन्ध में राम का कहना है कि न तो भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों अतियों (extremes) से बचना होगा "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। कभी-कभी उपवास स्वाभाविक होता है, हमें अपने अन्दर भोजन न करने की स्वाभाविक इच्छा जान पड़ती है, उस समय भोजन करना पाप । हृदय की ऐसी ही स्वाभाविक वृत्तियों को मानना चाहिए। किन्तु कभी-कभी आन्तरिक आत्मा तुमसे आहार ग्रहण करने के लिए कहती है, तब भोजन न करना पाप है। तात्पर्य, अपनी सहज वृत्तियों का अनुसरण करो।

हमें सहायता के रूप में उपवास करना चाहिए, किन्तु हमें उसका दास न बन जाना चाहिए। लोग प्रायः व्रत करते हैं, क्योंकि वे उसके लिए बाध्य किये जाते हैं। वे स्वेच्छा से उपवास नहीं करते, ग़ुलामों की

भाँति आज्ञा पालन करते हैं। राम गुलामी का अनुमोदन नहीं करता! उपवास के सम्बन्ध में (भारत का रिवाज पूछो, तो) भारत में भी कुछ लोग उपवास करते हैं, और वहाँ ऐसी विशेष तिथियाँ हैं जिनमें ख़ास तौर पर विशेष प्रकार का भोजन एक बँधी हुई मात्रा में ग्रहण किया जाता है। पूर्णमासी और प्रतिपदा इनमें मुख्य हैं।

पूर्णमासी के दिन भारत में लोग ऐसा भोजन करते हैं, जिससे पेट भारी न हो, और उस दिन वे ख़ास तौर पर मन की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, क्योंकि वह दिन विशेषतया ध्यान के अनुकूल समझा जाता है। यदि तुम इसे अपने अनुभव से प्रमाणित करने की कोशिश करो, तो तुम्हें सत्यासत्य का पता चलेगा। उस दिन ऐसा भोजन ग्रहण किया जाता है, जिससे मन की स्थिरता में विघ्न न पड़े। इसी प्रकार प्रतिपदा के दिवस और रात्रि में नैसर्गतः एक ऐसा गुण विद्यमान है जो मन की एकाग्रता सम्पन्न कराने में विशेषतया हितकर सिद्ध होता है।

किन्तु सच्चे उपवास का अर्थ है कि हम अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ-पूर्ण इच्छाओं और क्रिया-कलापों से मुक्त हो जायँ। हमारा जीवन उनका पोषण करनेवाला न हो, वरन् उनका शोषण होकर हम सर्वथा उनसे स्वतंत्र हो जायँ।

ॐ! ॐ!! ॐ!!

५

स्वर्ग का साम्राज्य अथवा शांति-राज्य

[१६ दिसम्बर, १६०२ को हारमेटिक ब्रादरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्तर में है। तुम उसे कैसे प्राप्त कर सकते हो?

इस विषय में एक बड़ी सुन्दर कहानी है। उससे प्रकट होता है कि हम अपने अन्तर का स्वर्गीय साम्राज्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं। वह कथा यों है कि एक समय एक दैत्य वेदों को लेकर समुद्र की तह में घुस गया।

'वेद' शब्द के दो अर्थ हैं। मूल अर्थ है ज्ञान, स्वर्ग का साम्राज्य। दूसरा अर्थ है हिन्दुओं का अत्यन्त पवित्र धर्मग्रन्थ।

वेदों को समुद्र की तह में ले जानेवाले इस राक्षस का नाम शंखासुर था, जिसका अर्थ, शब्द-व्युत्पत्ति के अनुसार, शंख का दैत्य अथवा शंख में रहनेवाला कीड़ा होता है।

तब वेदों को उद्धार के लिए, ज्ञान के भाण्डार को लौटा लाने के लिए, ईश्वर ने मछली का अवतार लिया, और वेदों को पुनः संसार में प्रकट किया।

बच्चे जब इस कथा को पढ़ते हैं, तो अक्षरशः ज्यों-का त्यों अर्थ लगाते हैं। साधारण लोग भी इसे अक्षरशः ग्रहण करते हैं। किन्तु कथा का एक गम्भीर और गुह्य अर्थ भी है। कथा एक व्यापक सत्य को समझाने के लिए कही गई है।

शंख में रहनेवाले कीड़े से वेदों को लौटा लाने के लिए ईश्वर ने मत्स्यावतार लिया। ईश्वर ने मछली का अवतार लेकर समुद्र की तह में दैत्य या कीड़े से युद्ध किया, और उसका वध किया। इसका क्या मतलब था? मछली एक समुद्रीय जन्तु है, और शंख में भी समुद्र के एक प्राणी का वास होता है। ईश्वर ने, ब्रह्म-स्वरूप ने, मछली के रूप में समुद्र के कीड़े से संग्राम किया। कीड़ा शंख से निकाल बाहर किया गया, तब समुद्र की लहरों ने शंख को बहाकर किनारे लगा दिया। लोगों ने उसे उठा लिया। शंख बजाया गया और उससे ॐ ॐ ॐ की ध्वनि निकली। यही वेद है। इसी अर्थ में वेद ॐ समुद्र की तह से ऊपर लाया गया।

आख्यायिका कहनेवाले का अभीष्ट इस पवित्र मंत्र ॐ के महत्त्व पर विशेष ज़ोर देना था। उसे यह प्रकट करना अभिप्रेत था कि यह पवित्र अक्षर ॐ सम्पूर्ण जगत् के ज्ञान की इतिश्री है। यही सम्पूर्ण वेद है। अल्प से अल्पतम परिधि में, घन-से-घन रूप में, यही शंख में समाया हुआ स्वर्ग का साम्राज्य ओम् रूप है। यह कहानी का वास्तविक प्रयोजन था।

हिन्दू अपने सभी शुभ कार्यों एवं महत्त्वपूर्ण अवसरों पर शंख बजाते हैं। इस प्रकार वे मृत्यु, जन्म, समर वा पूजा के समयों पर ॐ का उच्चारण करते हैं। वास्तव में सुखी है वह जो ॐ में रहता-सहता, चलता-फिरता और अपनी हस्ती रखता है।

अपने भीतर की परम निधि को पाने के लिए, स्वर्ग के साम्राज्य का ताला खोलने के लिए, इसी ॐ की ताली को काम में लाना होगा।

युरोप-अमेरिका के लोग तब तक किसी बात को नहीं स्वीकार करना चाहते, जब तक वह उनकी बुद्धि को जँचती नहीं। किन्तु संसार के तर्कों से चाहे इस मंत्र का गुण हम सिद्ध न कर सकें; फिर भी, ठीक तरह पर इसका उच्चारण करने से यह मंत्र जो प्रबल प्रभाव मनुष्य के चरित्र पर डालता है, वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों

में दुनिया की निधियों को हमारे अधीन कर देने में, हमारे भीतर के भेदों के खोलने का जो गुण इसमें है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस कथा के द्वारा यह प्रकट करना भी कथा कहनेवाले का एक प्रयोजन हो सकता है कि हिन्दुओं के पवित्र धर्म-ग्रंथों का सम्पूर्ण ज्ञान उस समय प्रादुर्भूत हुआ था जब उनके लेखक इस अक्षर ॐ को जपते-जपते परमानन्द में डूब गये थे। यह मंत्र सम्पूर्ण ज्ञान का बीज है। अब विभिन्न पहलुओं से इस मंत्र की महत्ता आपके सामने रक्खी जायगी। इस मंत्र का महत्त्व इसलिए दिखलाना ज़रूरी है कि लोग इसे पूरे हृदय से अपनावें।

सबसे पहले, ॐ मंत्र किसी विशेष भाषा का नहीं है। ऐसा समझ-कर कि यह संस्कृत-शब्द है और अन्य किसी भाषा में नहीं है, इसे अस्वीकार न करो। यह परमेश्वर का नाम है। यह अक्षर तुम्हें अन्तर से प्राप्त होता है, कोई तुम्हें इसकी शिक्षा नहीं देता। यह जन्म के साथ तुम्हें मिलता है। बच्चे की चीख़ में ऊँ-ओं-आँ की ध्वनि से, जो ओम् का ही विकृत रूप है, इसकी अनोखी समानता है। ओम् शब्द हर एक बच्चे के पास उसके अन्तर से आता है। ओम् लिखने का ठीक ढंग अ-उ-म् है। संस्कृत-व्याकरण के नियमों के अनुसार अ, और उ की संधि होकर 'ओ' बन जाता है गूँगा भी अ, उ और म् की आवाज़ निकाल सकता है। इस तरह ओम् पूर्णरूप में या खंड-रूप में हर एक के द्वारा स्वतः दुनिया में लाया जाता है। यह एक अत्यन्त स्वाभाविक ध्वनि है, जो हर किसी को अपने आप सूझ पड़ती है। जब लड़के गलियों में ख़ुशी मनाते हैं, तब स्वभावतः उनका हृदय में न समानेवाला हर्ष ओ की लम्बी, भरीपूरी ध्वनि में प्रकट होता है, जिसे अधूरा ओम् ही कहना चाहिए।

यह ध्वनि सब भाषाओं में होती है। संस्कृत, फ़ारसी, अँग्रेज़ी, जापानी—सभी भाषाओं में यह न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है। जब लोग अपने आपे में नहीं होते, उन सभी अवसरों पर इस ओ ध्वनि का व्यक्-

हार किया जाता है। जब कोई बड़ा उल्लास होता है, जब लोग आनन्द-मग्न होते हैं, तब यह ध्वनि स्वभावतः उनके मुखसे निकलती है। जब लोग बीमार पड़ते हैं या और कोई मुसीबत होती है, जब उन्हें मर्मभेदी पीड़ा होती है तब उनके ओठों से कौन-सी ध्वनि निकलती है? ओह, ओह, उम्, जो ओम् का अपभ्रंश-मात्र है। हिब्रू, अरबी, अँग्रेज़ी—प्रार्थनाओं का अन्त 'आमीन' से होता है, जिसका ओम् से अत्यन्त अनोखा सादृश्य है। यूनानी वर्णमाला में अंतिम अक्षर ओमेगा है, इससे भी ओम् ध्वनि को प्रधानता मिलती है।

यह ध्वनि हर एक व्यक्ति को क्यों सूझती है? बीमारी में क्यों हर एक के ओठों से यही ध्वनि निकलती है, वह चाहे यूरोपीय, अमेरिकन, हिन्दू, ईरानी, जापानी या किसी भी फ़िरके का क्यों न हो? हिन्दू उत्तर देता है—यह ध्वनि उस सुन्दर वृक्ष के तुल्य है, जो प्रचण्ड सूर्य के ताप से झुलसे हुए रोगी मनुष्य को शीतल छाया प्रदान करता है। जैसे स्वभावतः रोगी मनुष्य किसी फैले हुए वृक्ष की शीतल छाया ढूँढ़ता है, वैसे ही हर एक व्यक्ति व्यथा या बीमारी की हालत में स्वभावतः इस ओम् अक्षर का आश्रय लेता है। क्यों? क्योंकि इस ध्वनि से उसे कुछ चैन-सा मिलता है। हम देख सकते हैं कि सब दशाओं में यह ध्वनि स्वभावतः आराम पहुँचाती है। रोगियों को इस ध्वनि के उच्चारण से आराम मिलता है। यदि दुखी और थके-माँदे को यह ध्वनि आराम पहुँचा सकती है, तो क्या यह शान्ति और एकता देनेवाली न होगी, यदि आप ठीक तरह से इसका उच्चारण करें? हम इसे 'प्रणव' कहते हैं और इसे उस वस्तु का वाचक समझते हैं, जो हमारे समस्त जीवन में व्याप्त है अथवा जो हममें प्राण या श्वांस का संचार करती है। प्रत्येक प्राणी इस ध्वनि को निकालता है, यह उसके श्वांस के साथ मिलकर निकलती है। यदि तुम इतनी ज़ोर से नासिका के द्वारा श्वांस लो कि उसकी आवाज़ सुनाई पड़े, तो तुम देखोगे कि उस आवाज़ का यदि कोई

परिस्फुट शब्द हो सकता है, तो वह सोहम्, सोहन् जैसा होगा। यह ध्वनि सब की साँस में है। सोहम् भी इसी प्रकार प्राकृतिक ध्वनि है।

संस्कृत-व्याकरण दुनिया की अन्य दूसरी व्याकरणों से अधिक उन्नत है। उसने सब ध्वनियों और शब्दों का पूर्ण विश्लेषण किया है। म् अक्षर व्यञ्जन है। किन्तु यह व्यञ्जन अनुनासिक है। व्याकरण में सिद्ध किया गया है कि म् एक ऐसा व्यञ्जन है जिसकी सीमा स्वर से सटी हुई है। ओ और अ सब व्याकरणों के अनुसार स्वर हैं। स् और ह् व्यञ्जन हैं। व्यञ्जनों को निकाल दो, तो हमें ओ, अ, म् अर्थात् ओम् मिलता है।

यह आप जानते ही हैं कि स्वर स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं और व्यंजन परतंत्र ध्वनियाँ, जो अकेले अपने सहारे पर नहीं टिक सकतीं। उदाहरण के लिए क् एक व्यञ्जन है। तुम उसे 'के' कहते हो, संस्कृत में वह 'क्' कहलाता है। मूल ध्वनि में तुम्हें इ या ए सरीखा एक स्वर मिलाना पड़ता है, तभी वह उच्चरण के योग्य बनता है।

व्यञ्जन इस दुनिया में नाम और रूप के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। इस दुनिया के सब नाम और रूप व्यंजनों की तरह पराश्रित है। उन के पीछे यदि परम सत्यता न हो, तो क्या उनमें से एक भी अपने आप ठहर सकता है ? सब दृश्य नाम और रूप-मय हैं, जिनका उच्चारण आधारभूत स्वर-रूप सत् या सत्यता के बिना नहीं हो सकता। आप उस सत्य को चाहे परमेश्वर कहें, चाहे न जानने के योग्य तत्व कहें, या जो कुछ कहना पसन्द करें वह कहें किन्तु आधारभूत पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द स्वतः सिद्ध है, जिसकी सूचना हमें यथाक्रम अ, उ और म् से मिलती है। सोहम् में जो स और ह व्यंजन हैं, वे दृश्य व्यापारों के नाम, रूप और आकृति को स्पष्ट करने का काम देते हैं। और अन्तर्वर्ती ॐ मूलस्थ आधारभूत सत्यता को दर्शाने अथवा स्पष्ट करने का काम देता है।

यदि हमारे पास अनेक आकृतियों के खाँड के खिलौने हों, कुछ कुत्ते की शक्ल के, कुछ बैल की शक्ल के, कुछ बाघ की शक्ल के, कुछ मनुष्य की शक्ल के, तो वे एक-दूसरे से भिन्न अवश्य हैं किन्तु सारा भेद केवल आकृतियों, रूपों तथा नामों में है। यथार्थतः एक ही पदार्थ के बने होने के कारण वे सब-के-सब वही खाँड-ही-खाँड है।

समुद्र में जाओ। वहाँ तुम्हें जहाँ-तहाँ तरंगें, जहाँ-तहाँ हिल्कोरें दिखाई देंगी, उनके डील-डौल और शक्ल में भेद होगा, किन्तु उनके अधिष्ठान की असलियत को देखो, तो वह एक ही समुद्र है। वे सब एक ही हैं, वे सब पानी ही पानी हैं। भेद तो केवल आकार और रूप में है।

एक हीरा लो। वह इतना चमकीला, इतना जगमग, इतना तेज-पूर्ण और इतना कड़ा है कि लोहे को भी सरलता से काट सकता है। इसके बाद कोयला लो, जो इतना मुलायम होता है कि सहज ही काग़ज़ पर निशान बना देता है। वह महा कुरूप, महा मैला, बिलकुल निकम्मा होता है, किन्तु रसायन-शास्त्री हमें बतलाते हैं, दोनों की असलियत में कोई भेद नहीं है। दोनों ख़ालिस कार्बन हैं, दोनों में कुछ भी भेद नहीं है। फिर बाह्य भेद का कारण क्या है? भेद आकार और प्रकार में है। कार्बन के परमाणुओं की स्थिति और शक्ल एक से दूसरे में भिन्न है। भेद केवल रूप में है।

इसी तरह हिन्दू-शास्त्र के अनुसार संसार इस संसार के सब पृथक्-पृथक् विभेद केवल नाम और रूप के कारण से हैं। यदि तुम गहरी तह में जाओ, वस्तुस्थिति के भीतर देखो, यदि तुम सब नामों और रूपों के अधिष्ठान-स्वरूप तत्त्व की छानबीन करो, तो तुम देखोगे कि सब का आधार एक ही निर्विकार, अव्यय तत्त्व है, और वह तत्त्व अपना आधार आप ही है। उस तत्त्व की तुलना स्वर-ध्वनियों से की जा सकती है, और नाम तथा रूप की तुलना व्यंजन-ध्वनियों से करना ठीक है। इस प्रकार सोहम् के स् और ह् के छोड़ देने पर, जो नाम और रूप के द्योतक

है, जो पराश्रित हैं, केवल एक असलियत शेष रह जाती है जो एका-क्षर अ-उ-म्—ओम् के द्वारा व्यक्त होती है। इस प्रकार ओम् वह असलियत है, जो तुम्हारी साँस में संचार करती है, जो विश्व की सम्पूर्ण सांस में मौजूद है, जो शक्ति-रूप से सम्पूर्ण भेदों, सब विभागों सम्पूर्ण पार्थक्य के पीछे है। ओम् उसी का अत्यन्त नैसर्गिक नाम है, उस सार-तत्त्व का अत्यन्त स्वाभाविक नाम है।

अध्यापक मैक्समूलर ने और उनके साथ दूसरे तत्त्वज्ञानियों ने भी सिद्ध किया है कि विचार और भाषा का वैसा ही नाता है जैसा कि एक ही सिक्के के मुख-भाग का उसके पृष्ठ-भाग के साथ होता है। एक के विना दूसरा टिक नहीं सकता। क्या तुम इस पदार्थ को, इस मेज़ को, बिना इसका विचार किये देख सकते हो? क्या तुम किसी वस्तु को उसका विचार किये बिना अनुभव या धारण कर सकते हो? 'धारण' शब्द ही मानसिक विचार का सूचक है।

फिर, विचार और भाषा तो एक ही है। बिना भाषा के तुम सोच ही नहीं सकते। शिशु कोई भाषा नहीं जानता और उसका कोई विचार भी नहीं होता। बच्चे को सोचना शुरू करने दो। जब तक उसके पास भाषा न होगी, तब तक वह विचार नहीं कर सकता। माता बच्चे के कानों में नाम फूँकती है, मानों नामों के अर्थ लड़के के हृदय में फूँके जा रहे हैं। माता के शब्दों के साथ अर्थ का वही सम्बन्ध है, जो सवार का घोड़े से होता है। अर्थरूपी सवार शब्दों के घोड़े पर चढ़कर बच्चे के अन्तःकरण में पहुँचता है।

भाषा के बिना हम विचार नहीं कर सकते। विचार और भाषा एक है, और यह हम पहले ही देख चुके हैं कि संसार और विचार भी एक ही हैं। इस प्रकार एक ओर भाषा और विचार एक है और दूसरी ओर विचार तथा संसार एक हैं। अतएव शब्द और संसार एक दूसरे के कुटुम्बी सिद्ध होते हैं। विचार के बिना इस संसार का कोई भी

पदार्थ नहीं देखा जाता। किसी पदार्थ को देखने का यत्न करो और आपके चित्त में उसकी धारणा का प्रवेश न हो, यह असम्भव है। वास्तव में, काले तख़्ते को देखने वा मालूम करने का अर्थ ही है, काले तख़्ते का विचार करना।

इस लोक के सभी पदार्थ तदनुरूप कल्पना के प्रतिरूप हैं। ख़्याल के बिना इस दुनिया में कुछ भी नहीं देखा जाता, और भाषा बिना कोई ख़्याल नहीं हो सकता। अतः दुनिया का भाषा से वही रिश्ता है जो एक सिक्के के मुख-भाग से पृष्ठ-भाग का होता है। इससे तुम्हें बाइबिल के इस वचन का वास्तविक तत्त्व या असली महत्त्व मालूम होता है कि "प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ईश्वर था।"

अब, हम एक ही ऐसा शब्द या ध्वनि चाहते हैं जो समग्र संसार की प्रतिनिधि हो। हम कोई ऐसा शब्द चाहते हैं, जो विश्व को धारण करनेवाली शक्ति, सत्त्व, बल, नियामक तत्त्व या वास्तविक आधार का प्रतिनिधि बन सके।

सभी भाषाओं में हमें विभिन्न ध्वनियाँ मिलती हैं। एक वे जो कण्ठ से निकलती हैं, दूसरी वे जो ओठों से निकलती हैं, कुछ और हैं जो तालु के पास मुख से निकलती हैं। किसी भी भाषा में ऐसी एक भी ध्वनि नहीं है जो वाचक इन्द्रियों के किसी ऐसे भाग से निकलती हो जो कण्ठ के नीचे हो। कण्ठ वाचक इन्द्रियों की एक सीमा है। और ओंठ दूसरी सीमा है। ओंठों के बाहर से कोई ध्वनि नहीं निकलती।

यहाँ हमारे पास अ, उ, म् हैं। अ कंठ्य स्थानीय ध्वनि है। यह वाचक इन्द्रियों की एक सीमा से आती है।

उ ध्वनियों की परिधि के ठीक बीच से, वाचक स्थानों के मध्य स्थान तालु के निकट से निकलता है।

म् ध्वनि वाचक इन्द्रियों को अन्तिम सीमा ओष्ट और नासिका से निकलती है।

इस तरह 'अ' ध्वनि की परिधि के प्रारम्भ का प्रदर्शक है, 'उ' मध्य का प्रदर्शक है, और म् अन्त का प्रदर्शक है। दूसरे शब्दों में ओम् सारे वाचक क्षेत्र को छाये हुए है। ओम्, ओम् अत्यन्त स्वाभाविक नाम है। यह सम्पूर्ण भाषा और फलतः सम्पूर्ण संसार का प्रतिनिधि है। यहाँ पर एक प्रश्न पैदा होता है—और भी बहुत सी ध्वनियाँ है, जो अ की तरह कंठ से निकलती हैं, इसी तरह उ और म् की भी सवर्गीय वा सजातीय अनेक ध्वनियाँ है। तो फिर कोई दूसरा कंठ्य-वर्ण उ के वर्ग की किसी दूसरी ध्वनि से और किसी दूसरी सजातीय ओष्ठ्य-ध्वनि से मिलकर क्या ऐसा कोई दूसरा शब्द नहीं बनाया जा सकता जो सकल भाषाओं का प्रतिनिधित्व करे ?

परन्तु उन सब ध्वनियों में, जिनका स्थान वही है जो उ का है, केवल उ ही ऐसी ध्वनि है जो सबकी स्वामी, अग्रवती, सम्राज्ञी कही जा सकती है। वह एक स्वर है, एक ऐसी ध्वनि है, जिसे हर एक बच्चा निकालता है ; यहाँ तक कि गूँगे के पास भी वह होती है। वह दूसरों की शिक्षा से नहीं आती है, वरन् स्वतः प्राप्त होती है। फलतः अपनी श्रेणी की सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। इसी तरह म् सब ओष्ठ्य वर्णों का सर्वोत्तम प्रदर्शक है। इसमें एक और विशेषता है। यह अनुनासिक है और श्वास-वाहक नासिका का सारा क्षेत्र भी ढक लेता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि कोई पूर्ण नाम हो सकता है, तो वह ओम् है। यह सब भाषाओं का प्रतिनिधि वा प्रदर्शक है। यह संपूर्ण विचार का प्रतिनिधि है। यह अखिल विश्व का प्रतिनिधि है।

सम्पूर्ण वेदान्त, वरन् हिन्दुओं का सम्पूर्ण दर्शन-शास्त्र केवल इस ॐ अक्षर की व्याख्या है। ओम् समग्र विश्व को ढके हुए है। सारे संसार में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जो ओम् के बाहर हो। एक-एक करके तुम देख सकते हो कि भूतों के रहने के सभी लोक, सारा जगत्, अस्तित्व की सभी अवस्थायें इस एक अक्षर अ उ-म्, ओम् से ढकी हुई हैं

ध्वनियाँ दो तरह की हैं:—स्पष्ट (लिखने के योग्य) और अस्पष्ट (लिखने के अयोग्य)। हम उन्हें ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक कहते हैं। संस्कृत के ये नाम अर्थों से भरे हुए हैं। वर्णात्मक के शाब्दिक अर्थ हैं "वे ध्वनियाँ जो लिखी जा सकती हैं।" ध्वन्यात्मक के अर्थ हैं वे "ध्वनियाँ जो लिखी नहीं जा सकती है।" सर्वसाधारण की भाषा वर्णात्मक होती है। वेदना (भावना) की भाषा ध्वन्यात्मक है। वह शब्दों में लिखी या अक्षरों से प्रकट नहीं की जा सकती।

एक मनुष्य हँसता है। क्या किसी लिखित भाषा में आप उसे प्रकट कर सकते हैं? क्या आप उसे काग़ज़ पर अंकित कर सकते हैं? एक मनुष्य रोता है। क्या आप उसे काग़ज़ पर अंकित कर सकते है? ये ध्वन्यात्मक हैं। हम देखते हैं कि ध्वन्यात्मक ध्वनियाँ या स्वाभाविक ध्वन्यात्मक भाषा एक विशेष उद्देश्य रखती है, जो वर्णात्मक से सिद्ध नहीं होता। मान लो कि आप में से कुछ लोग विदेश जाते हैं, या कोई विदेशी आपके देश में आता है, वह आपकी भाषा बोल या समझ नहीं सकता। उसे किसी वस्तु की ज़रूरत पड़ती है। कदाचित् वह कोई वस्तु मोल लेना चाहता है, आप उसकी बात नहीं समझते। शायद वह मनुष्य भूखा है, वह कुछ खाना चाहता है, उसकी भाषा न समझने के कारण तुम उसकी ज़रूरतों पर ध्यान नहीं देते। वह मनुष्य चीख़ना और रोना शुरू करता है। अब तुम उसे समझते हो, अब तुम उसे देखते हो। वेदना की यह भाषा समझी जाती है, किन्तु वर्णात्मक या कृत्रिम भाषा केवल वही समझ सकते है, जो उसे सीखते हैं। स्वभाविक भाषा सब कहीं समझी जाती है।

तुम हँसना शुरू करते हो। सब समझ लेते हैं कि कोई हास्य-जनक या मनोरंजक बात तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है अथवा तुम्हारे मन में प्रकट हुई है। यहाँ एक मनुष्य है जो कोई बाजा बजाता है, जैसे सारंगी; तुम

उसके सुर, ताल जान जाते हो। संगीत की भाषा ध्वन्यात्मक है, और सभी कोई उसे समझता है।

शेक्सपियर ने "मर्चेंट ऑफ़ वेनिस (नाटक) में लिखा है—

"There fore tho poet
Did feign that Orpheus drew trees. stones and floods.
Since naught so stockish, hard and full of rage
But music for the time doth change his nature."

इसलिये कवि ने—

भूमिका बाँधी कि ओरफियूस ने वृक्षों, पत्थरों और नदों को अपनी ओर खींच लिया था क्योंकि ऐसा जड़, कठोर और कोप-पूर्ण तो कोई हो ही नहीं सकता जिसकी प्रकृति संगीत द्वारा उस समय के लिए न बदल जाती हो।

संगीत की भाषा उस प्रकार की नहीं है जैसी हमारे विचारों की भाषा है। उसका एक ख़ास उपयोग है, उसमें मोहिनी-शक्ति है। विज्ञान चाहे सिद्ध कर सके या नहीं कि संगीत आप पर इतना मनोहर प्रभाव क्यों डालता है, किन्तु वह तथ्य तो वर्तमान ही है। यदि विज्ञान इसे नहीं सिद्ध कर सकता, तो यह उसका दोष है। इसी तरह ओम्-ओम् में ऐसी मनमोहिनी शक्ति, ऐसी पूर्णता, एक ऐसा गुण है जो तुरन्त उच्चारण करनेवाले के मन को वश में कर लेता है, जो चटपट समस्त भावनाओं और समस्त विचारों को एकता की दशा में ले जाता है, जो आत्मा को शान्ति और विश्राम प्रदान करता है और जो मन को ऐसी दशा में पहुँचा देता है जिसमें उसकी परमेश्वर से अनन्यता हो जाती है। विज्ञान चाहे इसे समझा न सके, किन्तु यह एक तथ्य है जो निजी प्रयोग (अनुभव) से सिद्ध किया जा सकता है। विज्ञान को धिक्कार है! यदि वह इस पवित्र अक्षर ओ३म् की अमोघ शक्ति के इस स्पष्ट सत्य का विरोध करता है।

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

६

प्रणव अथवा पवित्र अक्षर ॐ

[२२ दिसम्बर, १६०२ को हारमेटिक ब्रादरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान]

उस दिन पवित्र ओम् मंत्र पर कुछ शब्द कहे गये थे और यह भी बतलाया गया था कि सात-आठ पाठों में भी यह विषय समाप्त नहीं किया जा सकता। इस पवित्र मंत्र पर ग्रन्थ-के-ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जा चुके हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। वास्तव में चारों वेद, सम्पूर्ण वेदान्त, हिन्दुओं के समस्त पवित्रतम ग्रन्थ इसी ओम् पद के अन्तर्गत आ जाते हैं।

भारत में अनेक सम्प्रदाय हैं, किन्तु सभी सम्प्रदाय ओम् की हृदय से पूजा करते हैं। यहूदी, मुसलमान और ईसाई—सब अपनी प्रार्थनाओं का अन्त 'आमीन' से करते हैं। मुसलमान भी ऐसा करते हैं, यद्यपि वे शब्द का उच्चारण 'आमीन' न करके 'अहमीन' करते हैं।

अच्छा, तुम्हारी साधारण प्रार्थनाओं में 'आमीन' क्या काम करता है? जिस स्थान पर सम्पूर्ण वक्तृता का अन्त होता है, जहाँ सारी बातचीत समाप्त हो जाती है, जहाँ जीवात्मा द्रवीभूत होकर परमात्मा बनता है, वहीं पर इसका प्रादुर्भाव होता है। जब तक उस स्थान तक पहुँच नहीं होती, जहाँ पर सारी हस्ती पिघलकर परमात्मा में लीन होने वाली होती है, तब तक आप हृदय की भाषा उंडेलते

रहते हैं। किन्तु जहाँ पर अविनाशी, अनिर्वचनीय, अकथनीय की प्राप्ति होती है, वहीं पर आमीन (तथास्तु) आता है। तो फिर यह आमीन क्या है ? यह ओम् है, इसके सिवा कुछ नहीं। तुम्हारी सकल पवित्र प्रार्थनाओं में एमिन या आमीन का वही स्थान है, जो 'वेदान्त' शब्द के भाव द्वारा ठीक-ठीक व्यक्त होता है। इस प्रकार यह आमीन बहुत कुछ वेदान्त-सार अर्थात् ओम् के तत्त्व को ही प्रकट करता है।

वेदान्त का शब्दार्थ है 'ज्ञान का अन्त' 'वाणी का अन्त' अर्थात् वह स्थल, जहाँ पर सम्पूर्ण वाणी, सम्पूर्ण विचार रुक जाता है। इसी लिए हिन्दुओं में ओम् से समग्र वेदान्त प्रतिपादित हो जाता है। वेदों में जिस अर्थ में इस पद का व्यवहार है, वह भी अब तुम्हें बतलाया जायगा।

तांत्रिक लोग ओम् की अपनी निराली व्याख्या करते है। शैवों की अपनी स्वतंत्र व्याख्या है, वैष्णवों की अपनी निजी टीका है, और शेष हिन्दू सम्प्रदायों के भी अपने-अपने विशेष अर्थ हैं। किन्तु जो अर्थ यहाँ बताया जानेवाला है, वह सार्वभौम है, उसे वेदान्त का आदि-स्रोत ही समझना चाहिए।

ओम् अ, उ, म् से बनता है। वेदान्त की शिक्षाओं के अनुसार 'अ' ध्वनि मानो भौतिक विश्व को, ठोस प्रतीत होनेवाली दुनिया को, प्रत्यक्ष जगत् को प्रतिपादन करती है। जो कुछ तुम जाग्रतावस्था में देखते हो, वह सब अ ध्वनि द्वारा व्यक्त होता है।

'उ' स्वप्न लोक के सारे अनुभवों को प्रतिपादित करता है। स्वप्न-जगत् के द्रष्टा और दृश्य, स्वप्नावस्था के कर्ता और कर्म—दोनों 'उ' ध्वनि से व्यक्त होते है। उ सूक्ष्म या मानसिक लोक का, प्रेतलोक का, स्वर्ग और नरक का सूचक है।

'म्' सुषुप्ति वा स्वप्न-हीन घन निद्रावस्था का द्योतक है। यथार्थतः यह हमारे सम्पूर्ण अज्ञात जगत् का प्रतिपादन करता है। जाग्रतावस्था

में जो हमें अविदित रहता है अथवा जहाँ बुद्धि की पहुँच हो ही नहीं सकती, वह सब 'म्' द्वारा ही व्यक्त होता है।

इस तरह ओम् या अ, उ, म् मनुष्य के सम्पूर्ण त्रिविध अनुभवों को, सम्पूर्ण दृश्य जगत् को ढके हुए है। अ, उ, म् में दृश्यता के पीछे दृष्टापन का सूचक एक सामान्य तत्त्व है, जिसे अमात्रा कहते हैं। इस अमात्रा से हमें अविनाशी, निर्विकार, वास्तविक तत्त्व या त्रिविध व्यापारों में व्यापक और स्वतःसंचारी परम पदार्थ की सूचना मिलती है। इस अमात्रा की किसी दूसरे व्याख्यान में पूर्ण व्याख्या की जायगी। अभी इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ओम् सर्व का सूचक और प्रतिपादक है।

यूरोप और अमेरिका का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान केवल जाग्रत्-अवस्था के अनुभव पर ही अवलम्बित है और वह स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति वा गाढ़ निद्रावस्था के अनुभव पर कोई ध्यान ही नहीं देता। हिन्दू कहता है—"तुम अपूर्ण सामग्री लेकर विषय को प्रारम्भ करते हो। फिर तुम्हारा विश्व की समस्या का हल क्योंकर सही हो सकता है?"

पाश्चात्य दार्शनिक जाग्रत्-अवस्था तक ही अपने को परिमित करते हैं। मिल, हेमिल्टन, बर्कले, स्पेंसर आदि सबके सब केवल जाग्रत्-अवस्था में प्राप्त किये हुए अनुभवों को अपने आविष्कारों और अनुसंधानों का आधार बनाते हैं। अखिल शक्ति के तेज को या उसे आप चाहे जिस नाम से पुकारें, उसके मूल-स्रोत को वे केवल जाग्रत्-अवस्था में ही खोजना चाहते हैं। किन्तु खूब सोचिये, यदि आपको कोई गणित-शास्त्र का प्रश्न हल करने को दिया जाय और उसका परिणाम निकालने को कहा जाय, तो आपको पूरी कल्पना, सम्पूर्ण उपक्रम पर विचार करना होगा। निर्दिष्ट सामग्री के केवल एक भाग को लेकर आप किसी प्रश्न को कैसे सही हल कर सकते हैं? वेदान्त पूरी निर्दिष्ट सामग्री लेकर चलता है। यह निर्दिष्ट सामग्री त्रिविधि है, तुम्हारे सांसारिक अनुभव त्रिविधि हैं,

अतएव इन सब पर विचार होना चाहिए। जाग्रत-अवस्था का जगत् दूसरी दोनों अवस्थाओं में बिलकुल ग़ायब हो जाता है। किन्तु फिर भी तुम, तुम्हारी आत्मा स्वप्नावस्था में जीवित रहती है। शायद तुम कहो कि घोर स्वप्नहीन निद्रावस्था में हम नहीं रहते, क्योंकि उसकी हमें कोई ख़बर नहीं होती। किन्तु क्या सचमुच तुम उस समय नहीं रहते? क्या तुम उस समय मृतक-जैसे हो जाते हो? कदापि नहीं। यद्यपि बुद्धि और व्यक्तिगत चेतना गाढ निद्रावस्था में बिलकुल लोप हो जाती है, तथापि असली अपना आप, असली 'तुम' सदैव वही बने रहते हो। निर्विकार और निर्विकल्प तत्त्व, तुम्हारी वास्तविक आत्मा, तीनों लोकों—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—में, निरंतर संचार करती रहती है। यही ओम् है। अपने आपको केवल चित्त, बुद्धि या मस्तिष्क समझने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुम कैसे जानते हो कि दुनिया है? तुम कैसे जानते हो कि विश्व का अस्तित्व है? क्या केवल इस बात पर कि तुम पदार्थों को छूते, उन्हें चखते और सूँघते हो? क्या केवल यही प्रमाण है? यदि तुम कहो, यह देखो विक्टर ह्यूगो, राबर्ट इंगरसोल, इमर्सन, आदि सब बड़े-बड़े विचारक दुनिया के सम्बन्ध में इतना अधिक लिख रहे हैं, तो हम प्रश्न करते हैं कि ऐसी धार्मिक पुस्तकें भी हैं, यही तुम कैसे जानते हो? इन्द्रियों के ही द्वारा तुम उनका अस्तित्व जानते हो न? अस्तु, तुम्हारी इन्द्रियाँ ही इस जगत् के अस्तित्व का एक-मात्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण है।

सम्पूर्ण उपलब्धि (प्रत्यक्षीकरण) और अनुभव आदि का मुख्य कारण इन्द्रिय-बोध है। किन्तु इन्द्रिय-बोध तुम्हारी जाग्रत्-अवस्था तक ही परिमित नहीं है। तुम्हारी जाग्रत्-अवस्था में तुम्हारी इन्द्रियाँ स्थूल-रूप होती हैं। किन्तु क्या तुम्हारे स्वप्नों में तुम्हें इन्द्रिय-ज्ञान और उपलब्धि नहीं होती? क्या उस समय के लिए विशिष्ट ज्ञान-इन्द्रियाँ तुम्हारे पास नहीं होतीं? निस्संदेह वाह्य नेत्र और बाह्य श्रोत्र वहाँ काम नहीं करते

हैं। वास्तव में स्वप्न-लोक में तुम एक ही साथ इन्द्रियों के विषयों को और तदनुरूप ज्ञान-इन्द्रियों और कर्मों को रच लेते हो। इसका निष्कर्ष यह होता है कि स्वप्नलोक में इन्द्रियाँ और इन्द्रियों द्वारा अनुभूत पदार्थ अर्थात् इन्द्रिय-गोचर विषय एक ही शक्ति के धन और ऋण पहलुओं के समान हैं। जैसे किसी सिक्के का अग्र-भाग और पृष्ठ-भाग उसी सिक्के पर निर्भर है, वैसे ही स्वप्न में कर्ता और कर्म एक साथ ही एक ही शक्ति से उद्भूत होते हैं। स्वप्न के कर्ता और कर्म दोनों ॐ में उ ध्वनि के अन्तर्गत हैं और आधारभूत तत्त्व, जिसमें कर्ता और कर्म दोनों तरंगों की तरह प्रकट होते हैं, वास्तविक आत्मा या ओम् है। वेदान्त के अनुसार, ठीक स्वप्न की तरह तुम्हारी जाग्रत-अवस्था में भी तुम्हारी इन्द्रियाँ और इन्द्रिय-गोचर पदार्थ एक ही शक्ति के धन और ऋण पहलुओं की भाँति परस्पर सम्बन्धित हैं। स्वप्न में यद्यपि पदार्थों की उत्पत्ति तुरन्त की हुई सिद्ध होती है, तो भी वे स्वप्न-काल में अपना दीर्घ अतीत काल रखते हुए मालूम पड़ते हैं। इसी प्रकार जाग्रत्-अवस्था में भी जगत् के पदार्थ यद्यपि अपने एक दीर्घकालीन इतिहास के साथ प्रकट हुए मालूम होते हैं, किन्तु वास्तव में वे उन विषयों को ग्रहण करनेवाले कर्ता के साथ ही प्रकट होते हैं। अच्छा, जब तुम कहते हो कि यह जगत् सत्य है, स्थूल है, कठोर है, तब यदि तुम्हारा कथन उन ग्राहक इन्द्रियों अथवा कर्ता के साक्ष्य पर पूर्णतया निर्भर नहीं है, तो किस पर निर्भर है? और यह गवाही तो ठीक उसी प्रकार की है जैसे स्वप्नदर्शी अहं स्वप्न के पदार्थों को सत्य कहता है—अथवा जैसे किसी चित्रपट में चित्रित मनुष्य उसी चित्रपट पर अंकित अपने कुत्ते को सत्य कहे, किन्तु यथार्थः दोनों मिथ्या हैं, इसमें शक करने की गुंजायश नहीं।

अच्छा, इन्द्रियाँ अस्तित्व में कैसे आती हैं? महत्तत्त्वों से। इन महातत्त्वों को तुम कैसे जानते हो? इन्द्रियों के द्वारा। क्या यह तर्क युक्तिसंगत है? यह चक्र में तर्क करना (reasoning in circle—घूम-

फिरकर उसी स्थान पर पहुँच जाना) कैसे ठीक हो सकता है ? इससे तो जाग्रत्-अवस्था के जगत् की मिथ्या-शीलता स्वतः सिद्ध हो जाती है। स्वप्नलोक में जब तक तुम स्वप्न देखते रहते हो, पदार्थ सत्य मालूम होते हैं ; पर जाग्रत-अवस्था में वही पदार्थ लुप्त हो जाते है। जाग्रत्-अवस्था में सब वस्तुएँ स्थूल मालूम होती हैं ; किन्तु गाढ निद्रावस्था में वही स्थूल जगत् कहाँ जाता है ? उसका कहीं पता ही नहीं चलता। यहाँ हम देखते है कि सत्य की परिभाषा जाग्रत् या स्वप्नावस्था के व्यापारों पर लागू नहीं होती।

हिन्दू लोग सत्य उसे कहते हैं जो सब अवस्थाओं में स्थिर रहे। एक समय जिसका अस्तित्व जान पड़ता है और थोड़ी ही देर में जो छाया की तरह लुप्त हो जाता है, वह अवश्य अलीक (मायिक) व्यापार है। हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी सत्य का यही लक्षण किया है।

स्वप्नलोक को तुम झूठा क्यों कहते हो ? इसीलिये न कि वह तुम्हारी जाग्रत्-अवस्था में लुप्त हो जाता है। तब तो मिथ्यात्व का यही लक्षण जाग्रत्-अवस्था पर भी लागू होता है। स्वप्नलोक या गाढ़ निद्रावस्था में जाग्रत्-संसार कहाँ रहता है ?

"ॐ" में 'अ' की ध्वनि जाग्रत्-अवस्था के बाह्य कर्ता और कर्म को वास्तविक आधार-रूप तत्त्व का आविर्भाव-मात्र सूचित करती है।

ओह ! मनुष्य के हृदय को कैसे पक्षपात ने घेर लिया है। लोग कहते हैं, हमारे पास असल नगदी है। यह स्थूल, साकार प्रतीत होने-वाली दुनिया सत्य है। ऐ मूर्ख, एकमात्र असली सत्य तुम स्वयं हो, तुम्हारा अपना आप निर्विकार और नित्य है। वही एकमात्र असली वस्तु है, बाकी सब इन्द्रियों का छल है। कुछ लोग इस सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार करना नहीं पसन्द करते, क्योंकि उन्हें इस सत्य की प्राप्ति के लिए स्वप्न और गाढ निद्रा की अवस्थाओं को जाग्रत्-अवस्था की प्रति-

योगिनी बनाना पड़ता है। उनके विचार के लिए कुछ और शब्द कहे जायँगे। पृथिवी-रूपी अति भारी बिन्दु के आधे से अधिक धरातल पर सदा रात रहने से पृथिवी की प्रायः आधी जन-संख्या सदा स्वप्न या गाढ़ निद्रा की दशा में रहती है। हर एक व्यक्ति, चाहे जिस देश का हो, ठीक उतने ही निद्राशील अनुभव में होकर गुजरता है, जितना जागते हुए अनुभव में से। सम्पूर्ण बाल्यकाल क्या एक दीर्घ निद्रा नहीं है? पुनः मृत्यु भी निद्रा है। अच्छा, प्रारम्भ के तीन या चार वर्ष तो तुम सदा सोते रहते हो। अब जाग्रत्-अवस्था में बीतनेवाले समय की घंटों में गिनती करो। तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि तुम्हारा आधा जीवन सोने में और आधा जागने में बीतता है। जाग्रत्-अवस्था में जो हो, उस पर विचार करने और निद्रावस्था में जो कुछ हो, उस पर विचार न करने का तुम्हें क्या अधिकार है? नींद की दशा में क्या तुम मर जाते हो? नहीं। तुम्हारी स्वप्नावस्था के अनुभव भी तो अनुभव हैं। फिर उन पर ध्यान न देने का क्या कारण है? यदि जाग्रत्-अवस्था अधिक शक्तिशाली हो, तो क्या निद्रा कम शक्तिशालिनी है जो बिना अपवाद सभी बलवानों और बुद्धिमानों के हाथ-पैर बाँधकर हर रात को उन्हें पलँग या कौच पर लम्बा लिटा देती है? निद्रा की यह निठुर शक्ति हमारी जागते रहने की उत्कट इच्छा की भी परवाह नहीं करती। वास्तव में निद्रावस्था की उसी तरह अपनी निराली दुनिया है जैसे जाग्रत्-दशा की। ऐसी दशा में यदि जाग्रत् लोक पर ध्यान दिये बिना तुम नहीं रह सकते, तो स्वप्नलोक पर भी तुम्हें समुचित विचार करना चाहिए।

अमेरिकावाले और यूरोपीय लोग हर एक बात का निर्णय बहुमत की दृष्टि से करते हैं। अच्छा, तब तो स्वप्नावस्था और गाढ़ निद्रावस्था को भी वोट मिल जायँगे। यदि जाग्रत-अनुभव के प्रमाण पर स्वप्नावस्था का अनुभव मिथ्या कहा जाय, तो स्वप्नलोक और गाढ़ निद्रा-

वस्था के प्रमाण पर जाग्रत-अनुभव भी असत्य ठहरता है। पुनः समस्त पौधे तो मानो निरन्तर अविच्छिन्न गाढ निन्द्रावस्था में रहते हैं, पशुवर्ग निरन्तर स्वप्नशील दशा में रहता है। संसार तुम्हें जैसा प्रतीत होता है, उससे बिलकुल ही भिन्न वह उन्हें जान पड़ता है। फिर उनके अनुभव को क्यों नहीं मानते ? चींटी के नेत्रों, मेंढक के नेत्रों, उल्लू के नेत्रों, हाथी के नेत्रों के लिए वस्तुएँ उससे बिलकुल ही भिन्न रूप में होती हैं, जैसी वे तुम्हारे लिए हैं। अरे, फिर भी तुम कहते हो कि केवल मनुष्य के अनुभवों पर विचार किया जाना चाहिए और जाग्रत्-अवस्था या जाग्रत्-लोक के केवल तुम्हारे अनुभवों को सत्य माना जाना चाहिए। किन्तु यदि समस्त महापुरुषों के अनुभवों को भी तुम ठीक-ठीक ग्रहण करो, तो उससे भी तुम्हें विश्वास हो जायगा कि यह स्थूल और प्रत्यक्ष प्रतीत होनेवाला जगत् मिथ्या है। तुम पूछोगे कि यह क्योंकर ? निस्सन्देह हमारे पदार्थ-विज्ञानी और दार्शनिक पंडित हक्स लेगणऔर स्पेंसरगण—सबके सब जाग्रत्-दुनिया की सत्यता पर बहुत ज़ोर देते है, फिर उनका अनुभव दुनिया की असत्यता कैसे प्रकट कर सकता है ? ज़रा सोचिए। अच्छा, तुम उनके उत्कृष्ट विचारों को मानोगे या निकृष्ट विचारों को ? सोने या ख़र्राटे भरने के समय की उनकी उक्तियों पर क्या तुम ध्यान न दोगे ? अच्छा सोचो, किस दशा में ये महान् लेखक अपनी पूर्ण प्रभा से प्रकाशित हुए हैं ? जिस समय ज्ञान उनसे स्वतः फूटकर बह निकलता है, तभी वे अपनी सर्वोत्कृष्ट दशा में होते है। परिणाम-स्वरूप वे हमारे पूर्ण सम्मान तथा विश्वास के योग्य होते हैं, उनकी इस उच्चत्तम दशा में उनके पास जाओ और देखो कि उनके प्रत्येक रोमकूप, उनकी त्वचा के प्रत्येक रोम जगत् की असत्यता की दुहाई देकर अद्वैत की घोषणा कर रहा है या नहीं ? उस अवस्था में मेरा- तेरापन नहीं है, द्वैत नहीं है, अनेकता नहीं है ; व्यक्तित्व नहीं है, दुनिया नहीं है। हमारे सारे व्यापार पिघलकर शून्य में लय

हो जाते हैं। ऐसे समय विचारवान् एकाग्र-चित्त हो जाता है। यह अवस्था समाधि की है और पूर्णावस्था है। यह वह अवस्था है जिसमें स्वभावतः सम्पूर्ण ज्ञान की विशुद्ध धारा उससे अपने आप वह निकलती है। ज्ञान उससे उसी प्रकार फूट-फूटकर निकलने लगता है, जैसे सूर्य से प्रकाश। ऐसी अवस्था में वह वार्तालाप भी नहीं कर सकता। जब वह समाधि-लोक से बाहर निकलता है, तभी बातचीत का श्रीगणेश होता है, और वे महान् आविष्कारक और विचारक हो जाते हैं। लो, अब महान् विचारकों की उत्कृष्ट अवस्था का अनुभव भी दुनिया की असत्यता को प्रमाणित करता है। इसे और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। हम गम्भीर चिन्ता करते समय क्या करते हैं? चिन्ता करते समय तुम एक विषय को चुन लेते हो, और सब विषयों को हटाकर तुम एक ही प्रकरण पर ध्यान जमाते हो। तुम अपने पूर्ण चित्त से उसी पर एकाग्र हो जाते हो, तुम्हारी सब शक्तियाँ और पौरुष उसी एक विशेष प्रकरण में लग जाता है। चित्त मानो उस कल्पना से परिपूर्ण हो जाता है। फल यह होता है कि वह कल्पना लुप्त हो जाती है, उसका हमें ध्यान ही नहीं रहता और शुद्ध अलौकिक चेतना, परम चेतना, जो सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है, हमारे हाथ लगती है।

मनोविज्ञान के एक सुप्रतिष्ठित नियम के अनुसार, किसी वस्तु का हमें बोध होने के लिए उस वस्तु के पास किसी भिन्न वस्तु का होना ज़रूरी है। किंतु जब चित्त में कोई दुविधा नहीं होती, तब समस्त पदार्थ-ज्ञान विश्राम लेता है और तब दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जब टेनीसन (Tennyson) के चित्त से लॉर्डपन का ध्यान बिलकुल दूर हो जाता है, केवल तभी वह कवि टेनीसन हो सकता है। जब बर्कले (Berkeley) धन-सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा जमाने वाला और सर्वाधिकारों की रक्षा चाहनेवाला लाट पादरी नहीं रहता, केवल तभी वह दार्शनिक बर्कले हो जाता है। जब ह्यूम (Hume) उन देहा-

भिमानों से परे हो जाता है, जिन्हें उसके जीवन-चरित-लेखकों ने लिखा है, केवल तभी वह दार्शनिक ह्यूम बनता है। जब हक्सले (Huxley) इतिहास-लेखकों का हक्सले नहीं रहता और मानों सबका हो जाता है, तभी वह पदार्थ-विद्या का ज्ञाता हक्सले है।

यदि हमारे द्वारा कोई महान् और विचित्र कार्य सम्पादित होता है, तो उसका श्रेय लेना मूर्खता है; क्योंकि जब वह काम हो रहा था, तब यशाकांक्षी अहंकार बिलकुल ग़ैरहाज़िर था, अन्यथा कार्य का सौंदर्य सम्भव न होता। "मैं कर रहा हूँ" यह चेतना बिलकुल ग़ैरहाज़िर थी। वस्तुतः कार्य का सौन्दर्य 'मैं' की अनुपस्थिति में ईश्वर से अपने आप प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते है कि ये महान् कवि और ये महान् लेखक, सभी अपने आचरणों से, नहीं-नहीं अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप से मानों यह उपदेश देते और प्रचार करते हैं कि "जगत् मिथ्या है"। उनका यह निर्णय, उनकी यह सम्मति, हमें उनकी सर्वोत्कृष्ट दशा देखकर ही मालूम होती है। शब्दों की अपेक्षा कार्य अधिक ज़ोर से बोलते हैं। समर-भूमि में महान् शूरवीरों और नायकों को देखो; जब वे अपनी श्रेष्ठतम दशा में लड़ते हैं, गोलियाँ दनादन और सनासन उनके आस-पास मँड़राती रहती हैं। यहाँ गोली लगी, वहाँ घाव हुआ, ख़ून उनकी देह से वेग से वह निकला, उनका शरीर टुकड़े-टुकड़े हुआ जाता है, फिर भी वे आगे बढ़ते जाते हैं। ऐसी दशा में पीडा पीड़ा नहीं मालूम होती। क्यों? क्योंकि व्यवहारतः अब उनके लिए शरीर शरीर नहीं है। बाहरी दुनिया दुनिया नहीं है। कार्य की भाषा में वे जगत् और शरीर को मिथ्या कर रहे हैं। इस प्रकार तुम्हारे नेपोलियन (Napolean), तुम्हारे वाशिंगटन (Washington), तुम्हारे वेलिंगटन (Wellington) और दूसरे लोग अपने कामों के द्वारा तुमसे कहते हैं कि मैं-तैं के तुच्छ घेरे में बाँधनेवाली वृत्ति सचमुच उपेक्षा के योग्य है। वे अपने कार्यों के द्वारा तुम्हें

समझाते हैं कि अखिल तेज-स्वरूप वास्तविक आत्मा जब अपना सिक्का जमाता है, तब दुनिया कुछ नहीं रह जाती। पूर्ण ज्ञान और परम शक्ति-स्वरूप सच्चा अपना आप ही एक-मात्र कठोर सत्य है, उसके सामने जगत् की वाह्य सत्यता धुल जाती है।

योद्धा की भुजाओं को प्रबल कौन बनाता है? जब वह अपनी शुद्ध आत्मा, वास्तविक कठोर, दृढ, अचल आत्मा से तादात्म होता है, तभी उसकी भुजाएँ महा प्रबल हो उठती हैं।

चित्त को इतने आविष्कार और नूतन कल्पनाएँ कैसे सूझ पड़ती हैं? जब थोड़े समय के लिए भी क्षुद्र-बुद्धि और चित्त का अहं-भाव उस परमात्मा की वास्तविक कठोर, सुदृढ़ सत्ता में, सच्ची आत्मा में लीन हो जाता है, तब मानो चित्त ईश्वरोपदिष्ट हो जाता है। वही सत्य तुम हो, वही सत्यता तुम हो, तुम विश्व के प्रकाश हो, प्रभुओं के प्रभु हो, पवित्रों के पवित्र हो, ऊँचों में परमोच्च हो।

ॐ (अ-उ-म्) मंत्र में, पहला अक्षर 'अ' उस ज़बर्दस्त सचाई के लिए आता है जो तुम्हारी आत्मा अपना आप है, और जो इस जाग्रत के भौतिक जगत् का आधार और प्रकाशक है; 'उ' सूक्ष्म जगत् का प्रतिपादक है, और अन्तिम अक्षर 'म्' उस परम आत्मा का सूचक है जो अन्धकारमय प्रलय-अवस्था का सहारा और अपने आपको समस्त अज्ञात रूप से प्रकट करनेवाला है।

ॐ उच्चारण करते समय, बुद्धिमानों को अपना ध्यान एकाग्र करना पड़ता है। सूर्योदय के समय प्रातःकाल रंगों को प्रकट करने वाले तथा दोपहर के पहले फिर उन्हें अपने में लीन करने वाले सूर्य की भाँति, तीनों लोकों को प्रकट एवं विनष्ट करनेवाली ज़बर्दस्त वास्तविक आत्मा को अनुभव करने में अपनी भावनाओं को लगाना पड़ता है।

ये लोक दृश्य-मात्र हैं। स्वप्नावस्था में तुम एक भेड़िया देखते हो और डरते हो कि भेड़िया तुम्हें खा जायगा। तुम डर जाते हो,

किन्तु जिसे तुम देखते हो, वह भेड़िया नहीं है, वह तुम ख़ुद ही हो। अतः वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि जाग्रत-अवस्था में भी "मित्र या शत्रु तुम ही हो", तुम्हीं सूर्य हो और तुम्हीं वह सरोवर हो जिसमें सूर्य प्रतिबिंबित होता है। तुम्हीं दीपक और पतंगे हो। तुम्हारा जो घोर-से-घोर शत्रु है, वह भी तुम हो, दूसरा कोई नहीं। ॐ उच्चारण करते समय इस दर्जे तक तुम्हें अपने चित्त को इस तथ्य के अनुभव में लगाना होगा कि सम्पूर्ण ईर्ष्या द्वेष चित्त से समूल उखड़ जायँ, निकाल दिये जायँ। पृथकता, भिन्नता के इस विचार को अपने हृदय से दूर कर दो। मित्र या शत्रु का रूप तुम्हारा कोरा स्वप्न है। तुम्हीं मित्र हो और तुम्हीं शत्रु हो। कल तुमने जो बातें की थीं। वे क्या आज तुम्हारे साथ हैं? क्या स्वप्न नहीं हैं? वे चली गईं कल की वस्तुएँ कहाँ हैं? क्या वे चली नहीं गईं? इसी अर्थ में जाग्रत् अवस्था का अनुभव भी स्वप्न है। जो असली, खरी नगदी, ज़बर्दस्त सच्चाई वास्तविक आत्मा सबके पीछे, सबका आधार है, उसका अनुभव करो।

सब स्थूल पदार्थों को सूक्ष्म अथवा कल्पना-मात्र अनुभव करने के बदले कुछ लोग सूक्ष्म विचारों को स्थूल और ठोस करना, साकार बनाना चाहते हैं। वे स्थूल-जगत् को सूक्ष्म-लोक या मानसिक जगत् की अपेक्षा अधिक सत्य मानते हैं। वेदान्त के अनुसार, स्थूल और सूक्ष्म-लोक दोनों ही मिथ्या हैं, तुम्हें दोनों से ऊपर उठना चाहिए, क्योंकि विश्राम, सच्ची शांति, सुख की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब नाम-रूपों के पीछे की सत्यता, खरी नगदी का अनुभव किया जाय।

अ-उ-म् में अ को कभी-कभी मात्रा या रूप की संज्ञा दी जाती है, उ प्रायः मात्रा या रूप कहलाता है, म् भी मात्रा या रूप कहा जाता है। किन्तु ॐ मात्रा या रूप पर नहीं टिकता, वह सत्यता, वास्तविकता का प्रतिनिधि है, जो खरी नगदी है और इन सब मात्राओं,

रूपों की आधार है। लोग कहते हैं "हम चाहते हैं जीवन और जीवन ; कोरी कल्पनाएँ हमें न चाहिए।" अरे! जीवन क्या वस्तु है? तुम कौन-सा जीवन चाहते हो—स्वप्नावस्था का? या गाढ निद्रावस्था का? अथवा जाग्रत-अवस्था का? ये सब तो केवल दिखाऊ हैं। वास्तविकता, सच्चा जीवन तुम्हारा अपना आप वा आत्मा है। सत्य के ऐसे कठोर नियम हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा तुम्हें सदा विषयानन्द न भोगने देंगे। अपने आपको इन्द्रियों का दास बनाकर, इन्द्रिय-जगत् के हाथ बेंचकर क्या तुम्हारे लिए सुखी होना सम्भव है? नहीं, यह असम्भव है। अत्यन्त निर्दय, परम स्वतन्त्र क़ानून हैं, जो इन्द्रियों के भोग में तुम्हें सुखी न होने देंगे।

आत्मा असली जीवन और नगदी है। यह अनुभव करो और भौतिक सुख तुम्हें अपने आप खोजना शुरु करेंगे। जैसे पतंगा जलती हुई ज्वाला के पास आता है, जैसे नदी समुद्र में मिलती है, जैसे छोटा कर्मचारी किसी महान् सम्राट् का आदर-सम्मान करता है, ठीक उसी तरह सुख तुम्हारे पास तब आयेंगे, जब तुम अपने सच्चे स्वरूप को, अपने परमेश्वरीय प्रताप को, सच्ची तेजस्वी आत्मा को, पूरी तरह से जान और अनुभव कर चुकोगे। ॐ इसी आत्मा का प्रतिपादन करता है।

यह दिखला दिया गया है कि अ-उ-म् से, इन तीन मात्राओं से, हिन्दू, विशेषतः वेद, किस तरह तुम्हें आत्म-स्वरूप आधारभूत सत्यता का पता बतलाते हैं। ॐ का अर्थ है पर्दों के पीछे की आधारभूत सत्यता, नित्य सत्य, अविनाशी आत्मा, जो तुम स्वयं हो। बस, इस पवित्र मन्त्र ॐ को गाते समय तुम्हें अपनी बुद्धि और देह को अपने सच्चे स्वरूप आत्मा में झोंक देना होगा, इन्हें सच्ची आत्मा में गला देना होगा। यह अनुभव करो और भावना की भाषा में इसे गाओ। अपने कृत्यों से इसे गाओ, अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप के द्वारा इसे

गाओ। अपनी नाड़ियों में इसे प्रवाहित होने दो, अपने सीने में इसे धड़कने दो। अपनी देह के हर एक रोम, अपने रुधिर के प्रत्येक बूँद में इस सत्य से झनझनाने दो कि तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, सूर्यों के सूर्य हो, अखिल विश्व के स्वामी हो, प्रभुओं के प्रभु हो, सच्ची आत्मा हो। सूर्य और तारागण तुम्हारे हस्तकौशल हैं, स्वर्ग तथा पृथ्वी तुम्हारी कारीगरी है। हर एक वस्तु तुम्हारी महिमा प्रकट करती है, और सम्पूर्ण प्रकृति तुम्हारी आज्ञा का पालन करती है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

---

(७)

ईश्वर अन्तरात्मा

[२४ दिसम्बर, १६०२ को हारमेटिक ब्रादरहुड हाल, सन-फ्रांसिस्को, अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान]

मूसा की पुस्तकों में हम पढते हैं कि परमेश्वर ने दुनिया की सृष्टि की। उसने अपनी कारीगरी देखी और वाह ! कैसी सुन्दर, कैसी उत्कृष्ट थी। इंजील के सृष्टि- खंड में हम इसके सम्बन्ध में पढ़ते हैं, और वहाँ भी ऐसी ही बात है। "ऐ प्रभु ! तेरी इच्छा पूर्ण हो", इस वचन से चित्त की जो वृत्ति प्रकट होती है उसे वेदान्त, आप जानते हैं, कहीं अधिक ज़ोर से प्रकट करता है। हिन्दू इसे यों कहता है—"मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है। मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है।" स्त्री जब अपनी इच्छा अपने पति की इच्छा से अनन्य कर देती है, तब वह सहर्ष कह सकती है कि "मेरी इच्छा पूरी हो रही है।" फिर "तेरी इच्छा पूर्ण हो", यह प्रार्थना करने की उसे ज़रूरत नहीं, क्योंकि वे दो नहीं हैं, एक हैं। अपनी इच्छा को अपने स्वामी की इच्छा के सामने अधीन कर देने में उसे बड़ा प्रयत्न करना पडा था, किन्तु बारंबार के प्रयत्नों से पतिव्रता स्त्री जब भेद-भाव को जीत लेती है, तब वह अपने पति के कामों को अपने ही काम समझती है, उसे उनसे वही आनन्द आता है, जो अपने कामों से मिलता है। इसी तरह वेदान्ती दुनिया में हर एक

वस्तु को अपनी ही रचना के समान भोगता है। जीते-जागते लोगों के लिए—

Stone walls do not a prison make,
Nor iron-bars a cage.
Minds innocent and quiet, take
That for a hermitage.

पत्थर की दीवारें क़ैदख़ाना नहीं बनातीं, न लोहे की शलाका पिंजड़ा ही। शान्त और निष्पाप चित्त उन्हें साधु-आश्रमवत् अंगीकार करते हैं।

इसके विरुद्ध जो मूर्ख अपने असली आत्मा को नहीं जानते, जो अहंकारी और स्वार्थी हैं, वे अपने महलों और राजभवनों को भी कारागारों, क़ब्रों और नरकों से बदतर बना लेते हैं। वे अपनी तुच्छ चिन्ताओं, नीच अधम इच्छाओं और काल्पनिक भय तथा शंकाओं से अपनी जंजीरें आप गढ लेते हैं।

वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि तुम्हारा सुख तुम्हारा अपना ही कार्य है, सांसारिक कामनायें उसमें हस्तक्षेप करनेवाली कौन हैं? सत्य को अनुभव करो और तुम मुक्त हो। युरोप और अमेरिकावासियों के लिए वेदान्त का अनुभव दुर्लभ है, क्योंकि वे अधिकांशतः ऐसा सोचते हैं कि उन्हें अपने आप को ईश्वर में परिवर्तित करना पड़ेगा, उन्हें अपने में ईश्वरत्व पैदा करना होगा। किंतु वेदांत के अनुसार स्वतःसिद्ध सत्य यह है कि तुम तो पहले ही से ब्रह्म हो, ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं हो। तुम्हें ईश्वरत्व पैदा करना नहीं है, उसे केवल जानना, अनुभव या महसूस करना है। तुम्हें उसे अमल में लाना है, तुम्हें उसका उपयोग करना है। यहाँ एक मनुष्य है जिसके घर में बहुत बड़ा ख़ज़ाना गड़ा हुआ है; किन्तु वह उसे भूल गया है। यहाँ एक दूसरा मनुष्य है जिसके घर में कोई ख़ज़ाना नहीं है। वे दोनों ख़ज़ाने के

लिए खोदना शुरू करते हैं। जिस मनुष्य के घर में ख़ज़ाना है, पर जो उसे भूल गया था, वह तो खोदने से पा जायगा ; किन्तु जिस मनुष्य के घर में कोई गडी हुई दौलत है ही नहीं, वह उसे नहीं पायगा। ख़ज़ाना वहाँ मौजूद है, अब कृपण या कंजूस न रहो, उसे काम में लाओ। तुम्हें ख़ज़ाना वहाँ गाडना नहीं है, तुम्हें केवल उसका उपयोग करना है। तुम्हारी आत्मा स्वभाव से अपवित्र और पापी नहीं है, वह एक व्यक्ति (आदम) के पाप से पतित नहीं हो गई है, और न वह उद्धार के लिए किसी दूसरे व्यक्ति (ईसा मसीह) के पुण्य पर निर्भर करती है।

यह एक काला तख़्ता है, जो कड़ी और ठोस वस्तु है। तुम इस काले तख्ते को चाहे जितना पोंछो, चाहे जितना मलो और बार-बार रगड़ो, किन्तु क्या तुम इसे पारदर्शी बना सकते हो ? नहीं, हरगिज़ नहीं। अच्छा, एक शीशा लो। उसमें चाहे मिट्टी भर गई हो, वह चाहे मैला और गंदा हो गया हो, किन्तु तुम्हारे साफ़ कर देते ही वह पारदर्शी हो जाता है। तुमने अपने प्रयत्नों से उसे पारदर्शी नहीं बनाया है ; तुमने केवल उस पारदर्शिता को प्रकट कर दिया है, जो वहाँ पहले से मौजूद थी। काला तख़्ता स्वभाव से पारदर्शी नही है और न किसी उद्योग से पारदर्शी बनाया जा सकता है।

यह स्वाभाविक विश्वास जो प्रत्येक मनुष्य में मुक्ति की प्राप्ति के लिए दृढ़तापूर्वक गहरा धँसा हुआ है, आत्मा की आन्तरिक विशुद्धता और पाप-शून्यता को सिद्ध करता है, चाहे वह आत्मा कुछ काल से भले ही मलिन हो गई हो। यह विश्वव्यापी स्वाभाविक विश्वास उस अस्वाभाविक सिद्धान्त को झूठा करता है कि आत्मा स्वभाव से पापी है, और जो हमें उस नतीजे पर पहुँचा देता है कि काले तख़्ते के समान वह कभी पारदर्शी या स्वच्छ नहीं बनाई जा सकती। अतएव हमें मानना होगा कि मनुष्य की सच्ची प्रकृति ईश्वरत्व है। यदि परमेश्वरत्व मनुष्य

की अपनी आत्मा, अपना स्वरूप न होता, तो किसी सिद्ध या महात्मा का अवतार ही इस संसार में कभी संभव न होता।

राम कहता है—"डरो मत, बाहर आओ, अपना सारा बल और तेज जमा करो, और बहादुरी से अपने जन्म-स्वत्व पर अधिकार जमाओ। कहो, "मैं वह हूँ।" डरो मत, काँपो नहीं।

सिनाई नामक पहाड़ी पर चलते हुए मूसा ने एक झाड़ी को जलता हुआ देखा। उसने पूछा—"तुम कौन हो? वहाँ कौन है?" वह चाहे ज़ोर से न बोला हो, किन्तु उस विचित्र ज्वाला से वह बड़ा चकित हुआ, जिसने झाड़ी को प्रकाशित तो कर रक्खा था, जलाया नहीं था। झाडी से उत्तर आया—"मैं वही हूँ, जो मैं हूँ" यही विशुद्ध "मैं हूँ" वास्तव में तुम्हारी आत्मा या तुम्हारा अपना आप है।

तुम्हारी आत्मा, तुम्हारी सच्ची प्रकृति, पारदर्शी हीरा या चमकते हुए बिल्लौर के समान है। इसके पास कोई काली वस्तु रक्खो और स्फटिक (बिल्लौर) काला जान पड़ेगा, विशुद्ध स्फटिक के पास कोई लाल वस्तु रक्खो और वह लाल मालूम पड़ेगा, और इसी तरह अन्य रंगों का हाल है। वास्तव में विशुद्ध बिल्लौर बेरंग है, वह सब रंगों से परे है। लालिमा, कालिमा या कोई और रंग उसका अपना नहीं है। वह है जो कुछ वही है। इसी प्रकार तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा /सच्चा स्वरूप "जो कुछ वास्तव में है, वही है।" वह है वास्तव में विशुद्ध "मै हूँ।"

यह एक भारतीय मनुष्य है। वह उस पवित्र स्वरूप, पवित्र आत्मा के पास एक काला, हिन्दू-रङ्ग का, चिथड़ा लाकर रखता है और स्फटिकवत् आत्मा काली भासित होती है, मानो वह उसी रङ्ग की है। यह विशुद्ध "मै हूँ"—"मैं हिन्दू हूँ" हो जाता है। अमेरिका में, शुद्ध स्वरूप, विशुद्ध स्फटिक, नाम-रूप-रङ्गहीन आत्मा के पास, एक यानकी (Yankee), मान लीजिये, एक पीला चिथड़ा रखता है,

तब विशुद्ध "मैं हूँ", यह "मैं एक अमेरिकावासी हूँ" के रङ्ग में रँग जाता है। एक दूसरा मनुष्य आता है, और विशुद्ध आत्मा (पारदर्शी स्फटिक) के पास,' मान लीजिये, वह एक लाल चिथड़ा या लाल काग़ज़ का एक टुकड़ा रखता है, और पवित्र "मैं हूँ", यह "मैं एक नारी हूँ" के रङ्ग से रँग जाता है। तीसरा कोई दूसरी तरह का रंग आत्मा के पास रखता है, और कहता है "मैं साहित्य का आचार्य (एम. ए.) हूँ।" इस तरह हम देखते हैं, एक कहता है "मैं ईसाई हूँ", दूसरा कहता है "मैं हिन्दू हूँ", तीसरा कहता है "मैं यान्की हूँ", चौथा कहता है "मैं जॉन बुल (John Bull) हूँ", पाँचवाँ कहता है "मैं बच्चा हूँ", छठा कहता है "मैं नारी हूँ", सातवाँ कहता है "मैं सिंह हूँ" आठवाँ कहता है "मैं चीता हूँ", इत्यादि। विशुद्ध, सच्चा स्वरूप, रंगहीन, स्वच्छ; प्रकाशमान् आत्मा, ॐ या "मैं हूँ" सब में सामान्य है, सब में व्यापक है। वह अद्वैत निर्विकार है, वास्तव में उसमें कोई रङ्ग नहीं है, तुम्हारे मूर्खता-पूर्ण विशेषणों ने उस पर रङ्ग चढ़ा दिया है। एक स्वच्छ दर्पण लो और उसके पास कोई रंग रख दो। रङ्ग उसमें उतर नहीं जाता, वह उसमें केवल प्रतिबिंबित होता है, किन्तु उससे संयुक्त नहीं होता। स्फटिक सदा विशुद्ध, स्वच्छ और रङ्गहीन रहता है। "मैं हूँ" सर्वव्यापक और सार्वभौम है। तुम में वह सर्वत्र उपस्थित है। "मैं हूँ" का विचार सिंह और चीते भी प्रकट करते हैं। यह पवित्र "मैं हूँ", तुम हो। अपने पास रक्खे हुए काग़ज़ के रङ्गीन टुकड़े या चिथडे से अपने आपको एक कर देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि एक समय ऐसा भी था जब यह नि.अवयव, विशुद्ध आत्मा दूसरे रूप में बसती थी। "मैं हूँ" ने दूसरा शरीर धारण किया था। एक समय था जब किसी पूर्व जन्म में तुम समझते थे "मैं सिंह हूँ" या "मैं बैल हूँ।"

सच्चे स्वरूप, आज, कल, सदा एक रहनेवाली वास्तविक "मैं

हूँ" का अनुभव प्राप्त करने से स्वतन्त्रता और आनन्द तुम्हें मिलता है। विशुद्ध "मैं हूँ" को काल स्पर्श नहीं करता, क्योंकि पूर्व जन्म से विशुद्ध "मैं हूँ" इसी प्रकार चला आता है। वह देश से दूषित वा मलिन नहीं होती, क्योंकि ये सब शरीर उसी "मैं हूँ" के अधिकार में हैं। उसके लिए अखिल काल "अब" और सम्पूर्ण देश "यहाँ" है। यह विशुद्ध शब्द "मै हूँ" नित्य वस्तु, और अपरिवर्तनीय सत्य का सूचक है। अब यही अनिर्वचनीय "मै हूँ" ॐ द्वारा प्रतिपादित होता है। ॐ विशुद्ध "मैं हूँ" "मै वही हूँ" का प्रतिनिधित्व करता है।

फ़ारसी भाषा के अनुसार ॐ 'ओ अम' है या "मैं वह हूँ", "मैं अह्म हूँ"। "मैं हूँ" की पवित्र कल्पना को ॐ प्रतिपादन करता है।

1. In a thousand forms may thou attempt surprise,
   Yet, all-beloved one, straight know I thee.
   Thou may with magic veils thy face disguise,
   And yet, all present one, straight know I thee.
2. Upon the cypress's purest, youthful bud,
   All-beauteous growing one, straight know I thee;
   In the canal's unsullied, living flood,
   All captivating one, well know I thee.
3. When spreads the water-column, rising proud,
   All-sportive one, how gladly know I thee;
   When, e'en in forming is transformed the cloud,
   All figure-changing one, there know I thee;
4. Veiled in the meadow's carpet's flowery charms,
   All chequered starry fair one, know I thee;
   And if a plant extend its thousand arms,

O, all-embracing one, there know I thee;

5. When on the mount is kindled morn's sweet light,
Straight-way, all-gladdening one, salute I thee;
The arch of heaven o'erhead grows pure and bright,
All heart-expanding one, then breathe I thee.

6. That which my inward, outward sense proclaims,
Thou all-instructing one, I know through thee;
And if I utter Allah's hundred names,
A name with each one echoes meant for thee.

हे सबके प्यारे! तू चाहे हजारों रूपों में मुझे विस्मित करने का प्रयत्न कर, फिर भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। ऐ सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले! तू अपना मुखड़ा चाहे मायावी घूँघटों में छिपा, फिर भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। (१)

ऐ विकासोन्मुख सर्व-सुन्दर! सरों की पवित्रतम नई कोंपलों पर मैं तुझे झट पहचान जाता हूँ। सबको मोहनेवाले! नहर की निर्मल सजीव धारा में मैं तुझे ख़ूब जान लेता हूँ। (२)

ऐ सर्व-कौतुकी! जब जल-धारा सगर्व चढ़ती हुई फैलती है, मैं तुझे अत्यन्त प्रसन्नता से जान लेता हूँ। ऐ सब रूपों में बदल-बदल कर आनेवाले! जब मेघ का रूपान्तर होता है, तो इस रूपान्तर में भी मैं तुझे झट जान लेता हूँ। (३)

ऐ चित्र-विचित्र तारामय रूपवान्! हरियाली-रूपी गलीचे पर फूलों की जो छवि छा रही है, उस शोभा में भी मैं तुझे जान लेता हूँ; और ऐ सबको आलिंगन करने वाले! यदि कोई पौधा अपनी सहस्रों भुजाएँ फैला देता है तो वहाँ भी मैं तुझे पहचान लेता हूँ। (४)

ऐ सबको प्रफुल्लित करनेवाले! जब पर्वत पर प्रातःकाल का मधुर

प्रकाश प्रज्ज्वलित होता है, तब तत्काल मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। ऐ सर्व हृदयों के विकसित करनेवाले ! जब शिर के ऊपर निर्मल नभमण्डल प्रकाशमान होता है, तब मैं तुझे अपनी साँसों में भरता हूँ। (५)

ऐ सबके शिक्षक ! वह जिसकी घोषणा मेरी बाहरी और भीतरी इन्द्रियाँ करती है, तेरे द्वारा मैं उसे जान लेता हूँ। और यदि मैं अल्लाह के सौ नाम लेता हूँ, तो प्रत्येक ध्वनि के साथ तेरा ही नाम अभिप्रेत है। (६)

राम अब हज़रत मूसा के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता है। जब हज़रत मूसा ने झाडी में एक आवाज़ सुनी, तब उसे अपने पास एक फुफकारता हुआ सर्प दिखायी दिया। डर के मारे मूसा की बुद्धि रफूचक्कर हो गई, वह थरथराने लगा, उसकी छाती धड़कने लगी, सारा ख़ून उनकी नाडियों में लगभग जम-सा गया, वह हताश हो गया। तभी एक आवाज़ ने चिल्लाकर कहा—"ऐ मूसा ! डर मत, साँप को पकड़ ले। उसे मज़बूती से पकड, हिम्मत कर, उसे पकड़ लेने का साहस कर।" मूसा फिर भी काँपता रहा, और उस आवाज़ ने फिर कड़ककर उससे कहा—"मूसा ! आगे बढ़, सर्प को पकड़ ले।" मूसा ने पकड़ लिया और लो ! वह तो एक सुन्दर और चमकता हुआ डण्डा (आसा) था। अब इस कथा का अभिप्राय बताइये। साँप साँच का स्थानीय है। आप जानते हैं कि हिन्दू और अन्य पूर्व देशवासी सत्य या अन्तिम तत्त्व को शेषनाग द्वारा व्यक्त करते हैं। चक्कर-पर-चक्कर बनाता हुआ, पेंचदार रूपों में सर्प कुंडली मारता है, और अपनी पूँछ लौटाकर अपने मुख में रख लेता है। इसी तरह हम इस दुनिया में देखते हैं कि चक्रों के भीतर चक्र हैं। यहाँ हर एक वस्तु घूम-घूमकर अपने को दोहराती रहती है और अन्तिम सिरे मिल जाते हैं। यह एक सार्वभौम सिद्धान्त है, जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

साँप को वीरतापूर्वक पकड़ने का अर्थ है, अपने आप में दैवी

नियम धारण करना या विश्वनियन्ता की स्थिति में आना। वीरतापूर्वक अपने आपको उस स्थिति में रक्खो और परमेश्वर से अपनी एकता अनुभव करो।

हज़रत मूसा उस जाति के थे जो गुलामी में पड़ी हुई थी। यहूदी उन दिनों बुरी हालत में थे। वे अपने देश से निकाल दिये गये थे और गृह-हीन भटकते थे। अनेक विपत्तियों के कारण, जो उन्हें भोगनी पड़ती थीं, वे स्वभावतः परमेश्वर को एक घोर अत्याचारी और पूर्ण स्वेच्छाचारी समझने लगे थे।

यदि अनेक बैल एकत्रित होकर धार्मिक महासभा करें, तो वे ईश्वर का क्या वर्णन करेंगे? निस्संदेह वे ईश्वर को एक महा प्रतापी बैल बतावेंगे, ऐसा प्रतापी जिसके डर से ही दूसरे बैलों के प्राण छूट सकते हों। यदि सिंह अपनी धार्मिक महासभा करें, तो वे ईश्वर की कल्पना एक सबसे बड़े और सबसे अधिक बलवान् सिंह के रूप में करेंगे, जो सबसे अधिक भयानक सिंह होगा। क्या तुम अपनी बुद्धि से परे किसी चीज़ की धारणा कर सकते हो? क्या तुम अपने आप से बाहर कूद सकते हो? नहीं। सिंहों को ईश्वर के निर्णय के लिए बैठने और विचार आरंभ करने दो, वे उसे एक भीमकाय, दारुण सिंह बना देंगे। इसी तरह यदि डरे हुए लोग निर्णय के लिए बैठें और ईश्वर का विचार करने लगें, तो वे लाचार होकर उसे गुलामों का एक सर्वोपरि स्वामी, हौवा, सबसे बड़ा मालिक, एक भयानक शासक मानेंगे। इसीलिये यहूदियों ने स्वभावतः परमेश्वर को एक भीमकाय, प्रतापी शासक, एक महान् स्वामी के रूप में चित्रित किया है।

अधिकांश पूर्वीय और विशेषतः सेमेटिक (Semetic) भाषाओं में ईश्वर के लिए 'मालिक' शब्द आया है, जिसका उल्था अँगरेज़ी में प्रायः 'मास्टर' शब्द से किया जाता है। इस नामकरण के सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ कहना असंगत न होगा।

यहूदियों में बहुत-सी टोलियाँ थीं, और हर एक टोली का अलग-अलग देवता होता था। एक टोली विशेष का देवता एक समय मोलोक (Moloch) कहलाता था। इन टोलियों की आपस की लड़ाई में इसराईल की टोली की विजय हुई, और फलतः इस जाति के देवता 'मोलोक' ने और सब देवताओं को परास्त कर दिया और वही सारे यहूदियों का देवता बन गया। सेमेटिक जातियों के 'मोलोक' नामक अद्वैत और साकार ईश्वर के लिए 'मालिक' या 'मास्टर' शब्द किस प्रकार प्रचलित हुआ होगा, यह बात इस कथा से स्पष्ट हो जाती है। उन दिनों एक, अद्वैत, साकार मालिक की कल्पना ही सर्वोपरि विज्ञान था। अज्ञान के क्षेत्र में घुसना ही उनका प्रयत्न था और यही उनके लिए अनुकूल था। किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। अब अधिकांश लोग एकाधिपत्य नहीं चाहते, वे अब स्वराज्य चाहते हैं। अमेरिका में लोग स्वाधीनता चाहते हैं, इँगलैंड में तथा सर्वत्र स्वाधीनता चाहते हैं। पदार्थ-विद्या ने उन्नति की है। हर एक वस्तु का विकास और उन्नति हो रही है। अब वह समय आ गया है कि ईश्वर के सम्बन्ध में प्राचीन घमण्डी और अत्याचारी कल्पना से स्वतन्त्रता को फैलानेवाला विचार "अहं ब्रह्मास्मि", जो कि वेदान्त का सिद्धान्त है, विकसित किया जाय। जैसे इँगलैंड के स्वेच्छाचारी राजतन्त्र की शक्तियाँ क्रमशः सीमित होती गईं, उसी तरह इस शरीरधारी ज़ालिम परमेश्वर की शक्तियाँ भी छिन्न-भिन्न करके धार्मिक स्वाधीनता लाभ करने का समय आ गया है। यहूदी राजनैतिक ग़ुलामी में रहते थे, अतएव उनका देवता उनसे अलग स्वतंत्र मालिक के रूप में होना ही चाहिए था। तुम राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता भोगते हो। तुम्हारा देवता, तुम्हारा निज स्वरूप, निज आत्मा होना चाहिए। आजकल लोग ग़ुलामी में नहीं रहना चाहते। बन्धन और दासता शीघ्रता से कूच कर रही है, विकास का बोलबाला है। अतएव हर एक वस्तु को आगे बढ़ना तथा ऊपर

चढ़ना चाहिए। अब क्या अकेला तुम्हारा व्यक्तिगत ईश्वर ही चुपचाप अपने स्थान पर खड़ा रहेगा ? नहीं, कदापि नहीं !

प्राचीन समय में शैतान ईश्वर का प्रतिपक्षी था, और ईश्वर के पास कुछ फ़रिश्ते और सेवक भी थे जिससे उसका अस्तित्व परिमित हो गया था। उसने सात दिनों में दुनिया की सृष्टि की थी। यह कब की बात है ? जब हज़रत मूसा ने अपने ग्रन्थ लिखे थे। आप जानते हैं मूसा को हुए हज़ारों वर्ष बीत गये। दुनिया में विप्लव हो चुका है। यह किस तरह का ईश्वर है, जो बढ़ता नहीं ? हर एक वस्तु को बढ़ना और विकसित होना चाहिए। अब तो शैतान-सरीखा कोई प्रतिस्पर्द्धी (रक़ीब) तुम्हारे ईश्वर के समीप न होना चाहिए। उसकी सत्ता को परिमित करनेवाली, कोई दूसरी वस्तु न होनी चाहिए। अब एक कारीगर, संसार के निर्माता या बनानेवाले के पेशे से उसकी हैसियत बड़ी होना चाहिए। अब ठीक समय आ गया है कि सारा संसार वेदान्त को ग्रहण करे। अब ठीक समय है कि सारा संसार साहसपूर्वक सत्य के इस फुफकारते हुए सर्प को उठाकर पकड़ ले। परम सत्य तुम्हारे पास आता है और तुमसे कहता है—"तुम परमेश्वर हो, परमेश्वर तुमसे पृथक् नहीं है, परमेश्वर इस स्वर्ग वा उस नरक में नहीं है, बल्कि तुम्हारा अपना आप (आत्मा) है।" इस भावना का यही अनुभव है कि तुम परम स्वतंत्र हो।

भय से अपने मस्तिष्कों को क्यों पस्त करते हो और प्रार्थनाओं में क्यों अपनी शक्तियों को खपाते हो ? अपनी सहज आन्तरिक प्रकृति का प्रतिपादन करो, सत्य को मत कुचलो, दिलेरी से निकल पड़ो, निर्भय होकर उच्च स्वर से पुकारो—"अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि।" यह तुम्हारा जन्म-स्वत्व (पैदायशी हक़) है।

साधारण लोगों के चित्त की वही दशा है, जो उस आवाज़ को सुनते समय हज़रत मूसा की हुई थी। हज़रत मूसा ग़ुलामी की हालत

में था, और सर्प देखकर काँपने लगा था। यही हाल लोगों का होता है, जब वे इस पवित्र ध्वनि को सुनते हैं कि "मैं शुद्ध ज्ञान, पवित्र सत्य ॐ हूँ"। जब वे इसे सुनते हैं, तब वे थर्राते और हिचकते हैं। इसे पकड़ने की हिम्मत उनमें नहीं होती। नीचे के जैसे शब्द उन लोगों को सर्प की फुफकार के समान सुनाई पड़ते हैं:—"तुम स्वयं परमेश्वर हो, पवित्रों के पवित्र हो ; दुनिया कोई दुनिया नहीं है ; तुम सब में सब कुछ हो, परम शक्ति हो, जिस शक्ति का वर्णन कोई शब्द नहीं कर सकता ; तुम न तन हो, न मन; तुम विशुद्ध 'मैं हूँ' हो, वही तुम हो।"

स्फटिक के पास से इन पीले, लाल या काले काग़ज़ के टुकड़ों को हटा दो, अपनी वास्तविक सत्ता में जाग पड़ो और अनुभव करो—"मैं वह हूँ", "मैं सर्व में सर्व हूँ।" लोग इससे भागते हैं। वे साँप से डरते हैं। अरे, साँप को पकड़ लो, और तब आश्चर्यों का आश्चर्य रूप यह सर्प तुम्हारे हाथ में पहुँचते ही शाही दण्ड हो जायगा। जब तुम्हें भूख लगेगी, तब यही फुफकारता हुआ सर्प तुम्हें खिलावेगा, प्यास लगने पर यही तुम्हारी प्यास बुझावेगा, यही तुम्हारे मार्ग से सब दुःखों और कठिनाइयों को साफ़ कर देगा।

जंगल में हज़रत मूसा ने इस डंडे से एक चट्टान छू दीः लो। चट्टान से कलकलाता हुआ निर्मल जल निकल पड़ा। जब इसराईल की सन्तान अपनी रक्षा के लिए भाग रही थी, तब उन्हें लाल समुद्र पार करना था। वह भयंकर समुद्र खुली हुई क़ब्र की तरह उन्हें निगल लेने को तैयार खड़ा था। हज़रत मूसा ने अपने डण्डे से उस लाल समुद्र (Red Sea) को छू दिया और पानी फटकर दो टुकड़े हो गया, सूखी भूमि निकल आई और इसराईली पार उतर गये।

देखने में यह फुफकारता हुआ सर्प, यह सत्य भयानक जान पड़ता है, किन्तु तुम इसे उठा लेने और मज़बूती से पकड़े रहने की हिम्मत-भर कर लो, फिर तुम यह देखकर विस्मित होगे कि तुम विश्व

के सम्राट् हो, महा तत्त्वों के मालिक हो, नक्षत्रों के हाकिम हो और आकाशों के नियन्ता हो। तब तुम अपने को सब कुछ पाओगे। इस सत्य के वर्तने और इस दैवी सिद्धान्त के आलिंगन करने में लोग झिझकते हैं। किन्तु बढ आओ, हिचको नहीं। इस सत्य को निर्भयता से ग्रहण करो। इसे अपनी छाती से लगाने की हिम्मत करो और इसे अपना आप बनाओ। सत्य का अनुभव करो, और यह सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा।

"अहं ब्रह्मास्मि"—न-कहना पाप है। आत्मा को चुराना निकृष्ट चोरी है। "मैं मर्द हूँ या औरत" अथवा अपने आपको दीन-हीन कीट समझना झूठ और नास्तिकता है। कंजूस का स्वाँग मत खेलो। कृपण के घर में अटूट सम्पत्ति होती है, किन्तु वह एक कौड़ी भी नहीं निकालना चाहता। सारा संसार तुम्हारे अन्दर है, सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी अपनी है, फिर क्यों इसे छिपाते हो? क्यों इसे काम में नहीं लाते? इसे अमल में लाओ! अपनी ही आत्मा के अमृत का डटकर पान करो। अपने निजी स्वाभाविक आन्तरिक साम्राज्य को क्यों नहीं लेते?

भारत में लोग इस परम सत्य के अनुभव को ऐसा मानते हैं, जैसे कोई भूला हुआ हार फिर से मिल जाय। एक मनुष्य अपने गले में एक बडा मूल्यवान् और लम्बा हार पहने था। किसी तरह वह उसकी पीठ पर सरक गया और वह उसे भूल गया। अपनी छाती पर उसे जग-मगाता हुआ न देखकर वह उसे ढूँढने लगा। किन्तु सब ढूँढना व्यर्थ हुआ। उसने आँसू बहाये और वह अपना अमूल्य हार खो जाने पर बडा रंज करने लगा। उसने किसी से कहा—"यदि हो सके, तो मेरा हार ढूँढ दो।" तब किसी ने उससे पूछा—"अच्छा, यदि मैं तुम्हारा हार ढूँढ दूँ, तो मुझे क्या दोगे?" उसने उत्तर दिया—"जो कुछ तुम माँगोगे, वही दूँगा।" उस आदमी ने अपने मित्र के गले में हाथ डाला और हार खींचकर कहा—"यह है तुम्हारा हार। यह खोया

नहीं था, यह तो तुम्हारे गले में ही पड़ा था, किन्तु तुम इसे भूल गये थे।" कैसा सुखकर आश्चर्य है। इसी प्रकार तुम्हारा परमेश्वरत्व तुमसे बाहर नहीं है, तुम तो पहले ही से ईश्वर हो, तुम वही हो। यह कैसी विचित्र विस्मृति है, जिसके कारण तुम अपनी सच्ची आत्मा को, अपने सच्चे परमेश्वरत्व को भूल जाते हो। इस अज्ञान को दूर करो, इस तम का नाश करो। इसे हटाओ और तुम पहले ही से ईश्वर (ब्रह्म) हो। तुम स्वभाव से ही मुक्त हो। ग़ुलामी की दशा में तुम अपने आपको भूल गये हो।

एक राजा स्वप्न में अपने आपको भिखारी की हालत में देख सकता है। वह स्वप्न देख सकता है कि मैं भिखारी हूँ, किन्तु यह भिखारीपन उसकी सच्ची बादशाहत में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

ऐ राजाओं के राजा! इन सब शरीरों में मेरे प्रिय आत्मा! ऐ परम सम्राट्? ऐ कल्याण के सारभूत! ऐ प्यारे! तुम अज्ञान के स्वप्न में अपने आपको ग़ुलाम न बनाओ। उठो और अपने परम प्रताप की दशा में शासन करो। तुम परमेश्वर हो, तुम और कुछ हो ही नहीं सकते। अन्दर की पूरी शक्ति से, हिचक, दुर्बलता और अशक्तता को दूर करके, ठीक विशुद्ध 'मैं हूँ' या 'आत्मा' में कूद पड़ो। तुम परमेश्वर हो। वह और मैं एक हैं। कैसा सुखद विचार है! कैसी धन्य धारणा है!! यह सारी मुसीबतें हर लेती है और हमारे सारे बोझ उतार लेती है। अपने आप से बाहर मत भटको। अपने केन्द्र में जमे रहो, आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा था—"यदि मुझे कोई स्थिर आधार, स्थिर बिन्दु मिल जाय, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूँ।" किन्तु वह बेचारा उस स्थिर बिन्दु को न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है तुम्हारी आत्मा। इसे पकड़ो, और तुम सारे संसार के संचालक हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

८

प्रश्नोत्तर (१)

[२६ दिसम्बर १६०२ हारमेटिक ब्रादरहुड हाल, सनफ्रांसिस्को, अमेरिका]

ॐ का उच्चारण

प्रश्न—क्या ॐ को बिना समझे-बूझे उच्चारण करने से कोई विशेष लाभ हो सकता है ?

उत्तर—हिमालय के जंगलों में रहनेवाले साधु ॐ का उच्चारण करते हैं, या कुछ गाते-बजाते रहते हैं। बहुधा साँप, हिरन और जंगली पशु अपने स्थान छोड़कर साधुओं के पास आ जाते हैं। यद्यपि ये जंगली जानवर संगीत-विद्या के नियम कुछ भी नहीं जानते, ॐ उच्चारण के बारे में भी कुछ नहीं जानते, फिर भी उन पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि केवल ध्वनि ऐसा अद्भुत प्रभाव उन साँपों और हिरनों पर डाल सकती है, तो ठीक समय पर नियमपूर्वक उच्चारण की हुई केवल ध्वनि-मात्र क्या आपके जीवन पर कोई प्रभाव न डालेगी ?

संगीत के हर एक गीत में तीन बातें होती हैं। एक तो गीत का अर्थ, दूसरे संगीत-विद्या के नियम, तीसरे गीत के शब्द या ध्वनि। यदि संगीत की इन तीनों बातों से आप भली भाँति परिचित हैं, तो आपको संगीत से अद्भुत आनन्द मिलेगा। किन्तु यदि आप उसके एक

ही अंग से परिचित हैं, तो आप कुछ अंश तक ही उसका मज़ा लूट सकते हैं। साँप और हिरन केवल संगीत की तानों को सुनते हैं, वे उसके अर्थ और उसके नियमों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, फिर भी उन्हें आनन्द आता है। इसी प्रकार कुछ लोग संगीत के नियमों का, जिन्हें इस विद्या के जाननेवालों ने बनाया है, आनन्द लेते हैं, उन्हें संगीत के अर्थ से कोई मतलब नहीं। दूसरे केवल संगीत के अर्थ का सुख भोगते हैं, उन्हें संगीत के नियमों की कुछ भी जानकारी नहीं होती। तीसरे केवल संगीत के नियमोपनियमों के सुख में ही मग्न रहते हैं। इसी प्रकार ॐ में भी तीन पहलू हैं। पहला केवल ध्वनि है, केवल मंत्र है, जैसा वह मुख से उच्चारण किया जाता है। दूसरा है अक्षर का अर्थ, जिसका अनुभव 'भाव'-द्वारा होता है। तीसरा है ॐ को अपने चरित्र में उतार लेना अर्थात् उसे अपने कार्यों और अपने जीवन में गाना। जो मनुष्य इन तीनों प्रकारों से ॐ गाता है—अपने ओठों से इसका उच्चारण करता है, हृदय से इसका अनुभव करता है, और कर्म के द्वारा इसे गाता है, वह अपने जीवन को एक लगातार संगीत बना देता है। हर एक व्यक्ति के लिए वह ईश्वर है। यदि तुम उसे भाव-पूर्ण चित्त से उच्चारण नहीं कर सकते और न अपने कार्यों मेंउ से उतार सकते हो अर्थात् तुम उस पर अमल नहीं कर सकते हो, तो भी उसका उच्चारण न छोड़ना चाहिए। उसे केवल ओठों से ही उच्चारते रहो, वह भी निरर्थक न जायगा। यदि तुम उसे केवल भावपूर्वक गा सकते हो, कार्यों या वाकइन्द्रिय के द्वारा नहीं गा सकते, तो भी किसी अंश तक तुम्हें लाभ होगा। यदि तुम उसे केवल कर्म द्वारा गा सकते हो, भावनाओं तथा मुख के द्वारा नहीं गा सकते, तो यह भी अच्छा और श्रेयस्कर है। तात्पर्य यह, तुम उसे मुख से जपना शुरू करो, कालान्तर में भावपूर्ण और कर्म-मय गान स्वतः तुम्हारे द्वारा होने लगेगा।

कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जिनके नाम लेने से ही मुँह में पानी

भर आता है, जैसे नारंगी, नींबू इत्यादि। इनकी चर्चा का ही हमारे ऊपर एक प्रभाव पड़ता है और इनके खाने से तो निश्चयपूर्वक पूरा प्रभाव होता है। ठीक इसी तरह ॐ की ध्वनि अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती, और यदि तुम उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करो, तो फिर पूरा प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भ में चाहे तुम्हें प्रभाव न मालूम पड़े, किन्तु निश्चय रक्खो, अन्त में वह अवश्य फल देगा।

जल-गणित-विद्या से हमें मालूम होता है कि यदि एक ऐसा हौज़ हो जिसकी पेंदी में डाट लगी हो और उसमें हम पानी भरते जायँ, तो जितना ही पानी हम भरते जायँगे, उतना ही दबाव पेंदे पर बढ़ता जायगा; और इस विद्या के नियमों से हम यह हिसाब लगा सकते हैं कि इस डाट को ठेलकर पानी को पेंदे से बाहर निकाल देने के योग्य जल का काफ़ी दबाव पड़ने के लिए ठीक कितना पानी हमें हौज़ में डालना चाहिए। इसी तरह यदि आप अपनी देह के हौज़ में ॐ भरते जायँ, तो मानो दबाव बढ़ने के रूप में उसका प्रभाव पड़ता रहेगा, किंतु सर्व-साधारण की दृष्टि में प्रभाव का प्रकट होना एक बात है और प्रभाव का उत्पन्न होना दूसरी बात। दबाव बढ़ते-बढ़ते एक ऐसा समय आवेगा, जब आप देखेंगे कि हौज़ की पेंदी से डाट हट गई है और जल उससे फूटकर बहने लगा है। किसी समय तक प्रभाव चाहे प्रकट हो किन्तु प्रभाव मौजूद ज़रूर होगा। एक दृष्टान्त है। एक नई ब्याही कन्या थी, मानो सरलता की साक्षात मूर्ति। उसे बच्चा जनने का अनुभव नहीं हुआ था। अपने गर्भ के पहले महीने में उसे अपने स्वभाव में कुछ अन्तर समझ पड़ा। सरल तो थी ही, उसने सोचा, अब आगामी महीनों में कोई अन्तर न पड़ेगा। भारत में दुलहिन सास के घर रहती है, और सास अपनी बहू तथा उसके बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करती है। युवती बहू एक दिन गम्भीर-भाव से अपनी सास से कहने लगी—"अम्माजी! अम्माजी! जब मेरे बच्चा पैदा होने को हो,

तब मुझे दया करके जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि मेरे बिना जाने ही बच्चे का जन्म हो जाय।" अम्माजी ने उत्तर दिया—"प्यारी बहू! घबराओ नहीं, जब समय आयेगा तब किसी को तुम्हें जगाने की ज़रूरत न पड़ेगी। तुम्हारी ऐसी हालत होगी कि तुम ख़ुद ही अपनी चीख़ों और रोने-धोने से अपने पड़ोसियों को जगा दोगी। गर्भ के दिनों में विचित्र परिवर्तन हो रहा था, उस पर प्रभाव पड़ रहा था, यद्यपि माता को उसका ज्ञान नहीं था। जब ठीक समय आता है, तब प्रभाव प्रकट हो जाता है। बस, इसी प्रकार इस ॐ मंत्र से पेट भरते रहो, अपने को पुष्ट करते रहो, इस पौष्टिक दूध को ख़ूब मन-माना पीते रहो, ठीक समय पर प्रभाव प्रकट हुए बिना न रहेगा। तुम्हें अधीर न होना चाहिए।

जब राम बच्चा था, तब वह और कई दूसरे बच्चे अनाज के कुछ दाने, जौ या चावल ले आते और आँगन की बगिया में गढ़े खोदते, फिर इन गढ़ों में दानों को जल-सहित डाल देते और अन्त में इन सबको ढक देते थे। इस काम में हम लोग इतने तन्मय हो जाते थे कि हमें भोजन तक की सुध न रहती थी। दाने क्या पैदा करते हैं, कैसे उगते हैं, यह देखने के लिए हम उद्विग्न हो जाते थे। उस जगह से, जहाँ कुछ ही मिनट पहले हमने अनाज, जौ और चावल के दाने बोये थे, क्या उगता है, यह देखने के लिए अधीर हो जाते थे। एक क्षण के लिए भी हम से वह स्थान छोड़ा नहीं जाता था, इस डर से कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे अनजाने बीज उग आयें। हम बड़े चिन्तित रहते थे और एक घण्टा भी न होता हम बहुत नगीच से उस स्थान की जाँच करते कि अँखुए निकले है या नहीं। किन्तु जब हमें कुछ भी दिखाई न पड़ता, तब हमें निराशा होती। हम लोग थोड़ी मिट्टी हटाकर देखा करते कि शायद भीतर कुछ निकला हो, लेकिन कुछ न देख पाते। जब वहाँ कुछ न दिखाई पड़ता, तब थोड़ी मिट्टी और हटाते कि कुछ उगना शुरू

हुआ है या नहीं। फिर और मिट्टी हटाते, पर दानों में कोई रूपान्तर न पाते। तुम इन बच्चों की तरह अधीर होकर पाव घण्टे में ही फल काटने की आशा न करो। तुम बीज बो सकते हो, किन्तु इतनी थोड़ी देर में फ़सल नहीं काट सकते। उसमें अन्ततः कुछ समय अवश्य लगेगा, पर प्रभाव अवश्य ही पैदा होगा।

मानसिक चिकित्सक

प्रश्न—लोग कहते हैं कि मानसिक चिकित्सक (Mental Healers) अपने लिए ऐसे कारण जमा कर रहे हैं जिनका परिणाम भावी जन्म में भयंकर रोग होंगे। क्या यह सत्य है?

उत्तर—नहीं। मानसिक चिकित्सक जो कुछ कर रहे हैं उसका अवश्यंभावी परिणाम भावी जन्म में दारुण रोग कदापि नहीं है। मानसिक चिकित्सा में स्वयं ऐसी कोई बात नहीं है जिसका परिणाम दारुण रोग हों। यहाँ सब प्रकार के सांसारिक काम करनेवाले लोग हैं, क्या उनमें से किसी के कार्य का परिणाम दारुण रोग कहा जा सकता है? नहीं। मानसिक चिकित्सक तो साधारण लोगों की तरह चिकित्सा-कार्य करते हैं। यदि साधारण वैद्यों का काम भावी जन्म में ऐसे भयंकर परिणामों का उत्पादक हो सकता हो, तो मानसिक वैद्यों का काम भी ऐसे दारुण फलों को पैदा करनेवाला होगा। यदि वैद्यों को ऐसे कर्मों का फल भोगना नहीं पड़ता, तो मानसिकों को भी न भोगना पड़ेगा। राम से प्रश्न किया गया था कि वह मानसिक चिकित्सा क्यों नहीं करता? उस समय यह उत्तर दिया गया था कि राम की दृष्टि में शारीरिक जीवन इतने महत्त्व का नहीं है, जिस पर इतना विशेष ध्यान दिया जाय। ईसा अपनी रोग हरने की शक्तियों का पेशा नहीं करता था। जब वह किसी को चंगा करता या जब कोई उसके द्वारा चंगा होता था, तो वह यही कहता था कि मैंने कुछ नहीं किया, तेरे विश्वास ने ही तुझे चंगा किया है। यदि राम ऐसा करने लगे, तो नतीजा क्या होगा? हर एक

व्यक्ति रोटी-दाल के लिए राम के पास आवेगा। कोई आकर कहेगा—"मेरे लड़के को चंगा कर दो, यह करो, वह करो" दूसरे आकर कहेंगे—"मैं चाहता हूँ कि समाज में ऊँचा स्थान फिर मिल जाय।" किंतु ऐसी बातें व्यापारिक वृत्ति और बनियेपन की हैं। मानसिक चिकित्सा का व्यापार वास्तविक स्वाधीनता के मार्ग में हमें आगे नहीं बढ़ा सकता।

आत्मा का विकास

प्रश्न—क्या आत्मा स्थूल शरीर में रहते हुए अपने आपको पूर्णतः विकसित कर सकती है ?

उत्तर—यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को कुछ समझा देना चाहिए। यह पानी का एक बर्तन है और इसमें सूर्य प्रतिबिम्बित होता है। अब पानी एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डालो। तुम देखोगे कि दूसरे बर्तन के जल में भी सूर्य ठीक उसी तरह प्रतिबिम्बित होता है, जैसे पहले बर्तन के जल में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता था। जल दूसरे बर्तन से तीसरे बर्तन में पलट दो, सूर्य की छाया वहाँ भी वैसी ही पड़ रही है। इसी तरह तुम्हारे बाह्य शरीर या तुम्हारे स्थूल शरीर की तुलना एक कलश या मिट्टी के मटके से की जा सकती है। कलसे में भरे हुए जल की तुम्हारे सूक्ष्म शरीर से, जो मुख्यतः तुम्हारी इच्छाओं, मनोभावों और चित्त का बना है, अद्भुत समता है। मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के एक बर्तन से दूसरे में बदल दिया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार जन्मान्तर ग्रहण करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर ही आत्मा है, किन्तु वेदान्त के अनुसार ऐसा नहीं है। वेदान्त के अनुसार सच्चा स्वरूप अथवा तेजस्वी आत्मा सूर्यवत् है, जो स्थूल शरीर-रूपी पहले बर्तन के सूक्ष्म शरीर में ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है, जैसा दूसरे में। अब शुद्धात्मा, वास्तविक स्वरूप, सब अवस्थाओं में सदा अपने को पूर्णतया स्पष्ट व्यक्त करता रहता है। शुद्ध तेजस्वी आत्मा में कोई परिवर्तन या उन्नति नहीं हो सकती, वह सदा पूर्ण है। यदि तुम 'आत्मा' शब्द

से 'सूक्ष्म शरीर' समझते हो, तो उस अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिए जहाँ पुनर्जन्म बन्द हो जाता है, साधारणतः उसे अनेक जन्म या योनियाँ मिलती हैं। किन्तु यदि तुम मुक्ति के लिए सचमुच उत्सुक हो, तो इस जन्म में भी तुम पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हो, और पुनर्जन्म को फिर प्राप्त नहीं करना होगा।

मृत्यु क्या है? मृत्यु का अर्थ है शरीर-रूपी स्थूल वर्तन का टूटना। जब मृत्यु आती है, तब जल मानो एक स्थूल शरीर या वर्तन से दूसरे में पलटा जाता है? सूक्ष्म शरीर ने फिर जन्म लेकर दूसरी देह पाई है, पर इस दूसरे वर्तन में शुद्ध-स्वरूप ईश्वर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है जैसे पहले देह-रूपी वर्तन में होता था। मान लीजिये, शरीर-रूपी वर्तन अपनी इस बारी में ७० वर्ष के काल तक चलने के बाद टूट जाता है, तो जो द्रव-रूप सूक्ष्म शरीर इस वर्तन में है, वही तीसरे मिट्टी के वर्तन या देह में बदल दिया जाता है। यही पुनर्जन्म है। सच्ची आत्मा सूर्य की तरह एक रूप से सूक्ष्म शरीर में और स्थूल शरीरों के सब विभिन्न वर्तनों में प्रतिबिम्बित होती है। इस तरह पर शुद्ध आत्मा पुनर्जन्म से परे है। सम्पूर्ण पुनर्जन्मों का सम्पर्क केवल सूक्ष्म शरीर से है, न कि सूर्य अर्थात् सच्ची आत्मा से। अब इस बात को और भी स्पष्ट कर देना चाहिए।

आप जानते हैं कि सूर्य हर समय पूर्ण-रूप से चमकता रहता है; किन्तु जल में प्रतिबिम्बित उसकी प्रतिमा सदा पूर्ण या अविच्छिन्न नहीं होती। जब जल जमी हुई दशा में होता है, तब बरफ़ या हिम पर चमकनेवाला सूर्य उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होता। जब पानी वायु-रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब भी हम देखते हैं कि सूर्य की प्रतिमा उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होती। इस प्रकार जल की तीन अवस्थाओं अर्थात् घन, तरल और वायु-रूप में से जल जब जमी हुई अवस्था में होता है, तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती; जब जल तरल

(बहनेवाली) अवस्था में होता है, तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित होती है ; किन्तु जब जल तीसरी या वायु-रूपी दशा में होता है, तब फिर हम सूर्य की प्रतिमा का प्रतिबिम्ब नहीं देखते। पानी की दशा के परिवर्तनों के साथ-साथ सूर्य की प्रतिमा में परिवर्तन होते हैं। ये मिट्टी के वर्तन या स्थूल शरीर वानस्पतिक रूप, पशु-रूप और मनुष्य-रूप हैं। एक समय होता है, जब सूक्ष्म शरीर घन अवस्था की तरह बड़ी ही स्थूल प्रकृति का होता है। इस दशा में सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती, यद्यपि सूर्य ऊँचाई पर समान-भाव से चमका करता है। पौधे और नीची श्रेणी के जीव-जन्तु बढ़ते और उन्नति करते हैं ; किन्तु उनमें "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार नहीं होता। 'कर्तृत्व-भाव' की वहाँ ज़रा-सी भी झलक नहीं होती, दूसरे शब्दों में शुद्ध आत्मा की मूर्ति का कोई चिह्न नहीं होता। प्रकृति के सम्पूर्ण प्रसार की भाँति उनमें सारी उन्नति या बढती सूर्य के द्वारा हो रही है, किन्तु उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। जैसे हिमालय की चोटियों या शिखरों पर सूर्य बरफ़ को समेटता या गलाता तो है, पर उसके द्वारा प्रतिबिम्बित नहीं होता। वानस्पतिक और निम्नतर श्रेणी के जीव-जन्तु आत्मा-रूपी सूर्य की शक्ति और करतूत से उठाये और चढ़ाये जा रहे हैं, विकास और उन्नति पा रहे हैं ; किन्तु बाह्य सूक्ष्म शरीर के लिए उनमें आत्मा-रूपी सूर्य के वास्तविक कर्तृत्व-भाव और शक्ति का कुछ भी विनियोग नहीं है। उनमें प्रोमीथियस (Prometheus) के स्वर्ग से अग्नि चुराने की भाँति* कोई भी बात नहीं है, व्यक्तिगत आत्म-श्लाघा का—"मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ"—कुछ भी विचार या भाव नहीं है।

---

* प्रोमीथियस यूनानी की पौराणिक कथाओं में वह व्यक्ति है, जिसने मनुष्य-मात्र की भलाई के लिए स्वर्ग से अग्नि को चुराया, और इस प्रकार ज़ीयस (Zeus) के अत्याचारों से मनुष्य को बचाया।

सूक्ष्म शरीर-रूपी जल अधम श्रेणी के वर्तनों से होता हुआ क्रमशः मनुष्य नामक सुन्दर पात्र में पहुँचता है, और उस जल में, जो द्रव और पारदर्शी दशा में है, परम कर्ता सूर्य या आत्मा का अद्भुत प्रतिबिम्ब पड़ता है। यद्यपि यहाँ भी पहले की तरह असली कार्यकर्ता सूर्य, केवल आत्मा है, पर यहाँ अहंकार या उत्तरदायित्व पूर्ण कर्ता के रूप में असली आत्मा की प्रतिमा या छाया सूक्ष्म-शरीर में झलकती है। "मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ" का यह विचार वनस्पतियों और निम्नतर जन्तुओं में अनुपस्थित है। मनुष्य में मिथ्या आत्मा की कल्पना प्रकट होती है। "मैं कर्ता हूँ, मैं करनेवाला हूँ", यही बाह्य वा मिथ्या आत्मा है, जो जल में सूर्य की प्रतिबिम्बित प्रतिमा है। यह अहं, यह बाह्य अपना आप झूठा और असत् है। सच्चा कर्ता और असली काम करनेवाला ईश्वर सब कुछ करता है। वह ज़िम्मेदार मालिक है, और अज्ञान-वश यह ज़िम्मेदारी विशुद्ध सूक्ष्म शरीर द्वारा ओढ़ी और हृदय-गत कर ली जाती है। इस कर्तृत्व-भाव का यह अपनाया जाना झूठे, मायामय, क्षुद्र आत्मा का विधान करता है। यह मिथ्या अहम् उसी तरह असत्य है, जैसे जल में प्रतिबिम्ब असत्य है। चक्षु-चिकित्सक (Opticians) गणित से सिद्ध करते हैं कि दर्पण या जल में पड़ने-वाला प्रतिबिम्ब दिखाऊ या भ्रम-मात्र है। इसी तरह यह उत्तरदायी स्वार्थपरायण अहं केवल दिखाऊ या भ्रम-मात्र है। तरल या सूक्ष्म शरीर में विकास सूर्य के द्वारा होता है। सूर्य-रूपी आत्मा या ईश्वर की रोशनी और गरमी को सूक्ष्म शरीर अधिकाधिक ग्रहण करता और सोकता है, और इस प्रकार अपनी शारीरिक दशा स्थूलतर से सूक्ष्मतर में बदलता है। जब साधारण मनुष्य निज-स्वरूप या आत्मा का प्रकाश और ज्ञान अधिकाधिक मात्रा में सोकता या ग्रहण करता है, तब सूक्ष्म शरीर विकास को प्राप्त होता है, उसका सूक्ष्म शरीर समय पाकर मानो वायु-रूप हो जाता है, और वायुरूप होकर, यद्यपि स्थूल शरीर के

पात्र में अब भी निबद्ध है, तथापि वह सूर्य की प्रतिमा को प्रतिबिम्बित नहीं करता। मिथ्या आत्मा वा प्रतिमा की सूर्य से अभिन्नता हो जाती है। यहाँ फिर वनस्पतियों और निम्नतर जन्तुओं के मामले की भाँति, हम ज़िम्मेदारी की कोई कल्पना, "मै यह कर रहा हूँ" का कोई विचार, "मेरे कृतज्ञ हो" ऐसी कोई बलवती माँग हम नहीं पाते। बल्कि ऐसी वृत्तियाँ सब लोप हो जाती हैं। यहाँ मिथ्या आत्मा वा सच्चे आत्मा की प्रतिमा अब नहीं दिखाई देती ; सर्वाधिकार स्वाधीन-रखनेवाली व्यापारिक वृत्ति नष्ट हो जाती है ; अपहरणकारी स्वार्थी अहंकार (अहं) से पीछा छूट जाता है।

सामान्यतः वायुओं को एक पात्र से दूसरे पात्र में नहीं उँडेला जा सकता। घन और तरल द्रव्य ही एक वर्तन से दूसरे वर्तन में पलटे जा सकते हैं। किन्तु बर्तन टूट जाने पर वायु (गैस) जो उसमें होती है, हवा में फैल जाती है। अतएव हिन्दू-मात्र का उद्देश्य उस अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में पहुँचना है, जहाँ वे फिर पुनर्जन्म के अधीन न हों। हिन्दू-माता की सर्वोच्च आकांक्षा ऐसी सन्तान उत्पन्न करना है जो मुक्त होगी और जिसका पुनर्जन्म कदापि न होगा।

सूक्ष्म शरीर

प्रश्न—मुक्त मनुष्य की आत्मा मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर के रूप में बनी रहती है या लीन हो जाती है ?

उत्तर—जब कोई गैस किसी बर्तन से निकाल दी जाती है, तब वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाती है। इसी तरह मुक्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर दुनिया का शरीर हो जाता है।

प्रश्न—सूक्ष्म शरीर किन पदार्थों से बनता है ?

उत्तर—सूक्ष्म शरीर मनोवेगों, इच्छाओं, मनोभावों, वेदनाओं और संकल्पों से बनता है। मुक्त मनुष्य की इच्छाएँ व्यक्तिगत नहीं होतीं। उनमें स्वार्थपरता का कोई चिह्न नहीं होता, और स्वार्थ-शून्य, व्यक्तित्व-

हीन, सार्वभौम इच्छाओं का बना हुआ वह सूक्ष्म शरीर मानो वायु-रूपी (गैस की) दशा में होता है और इस वायु (गैस) को धारण करने-वाला स्थूल पात्र जब टूट जाता है, तब फिर गैस सघन समूह नहीं रह जाती, बल्कि समग्र विश्व में लीन हो जाती है।

फ़ारस के बादशाह महान् कैख़ुसरू के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह जब तक इस दुनिया में जिया, केवल जनता की सेवा और भलाई के लिए जिया। मरते समय उसने अपने इच्छा-पत्र (वसीयत-नामे) में आदेश किया कि "मेरा शव शानदार मक़बरे में न दफ़नाया जाय, उसके टुकड़े-टुकड़े काटकर सम्पूर्ण फ़ारस-साम्राज्य में वितरण कर दिया जाय, ताकि खाद का काम दे।" मुक्त मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की ठीक यही गति होती है। उसका सूक्ष्म शरीर सारे संसार भर में बाँट या फैला दिया जाता है। हर एक व्यक्ति उसमें हिस्सा लेता है, उसका मांस काट-काटकर खाता है और लोहू पीता है, मानो उसके मांस और लोहू को हड़प कर जाता है। उसका सूक्ष्म शरीर टुकड़े-टुकड़े करके सारी दुनिया द्वारा खाया जाता है। यह है अहंकार को हवा में उड़ा देना (बर्बाद करना)। वह मनुष्य, चाहे अपना मुँह खोले या नहीं, वह ग्रन्थकार हो या न हो, सर्व-साधारण के सामने आवे या न आवे, मानवजाति की अपूर्व सेवा करता है। वह अद्भुत सुधारक है। राजाओं के सारे ख़ज़ानों से उसे किसी वस्तु की भी इच्छा नहीं है। दुनिया की सारी पुस्तकें और धर्म-पुस्तकें उसे कुछ भी नहीं सिखा सकतीं। बादशाहो और ज़ालिमों की रीझ और खीझ उसके लिए निरर्थक है। जब तक वह जीता है, उसकी दयामय उपस्थिति, उसका दिव्य दर्शन पवित्रता और सुख का प्रसार करता रहता है। उसके मरने पर दुनिया विलक्षण रूप से सुधर जाती है।[❀]

मान लो कि सूर्य-ताप के कारण इस स्थान पर वायु विरल

[❀] स्वामी राम की महा समाधि लेते ही भारत क्या, सारे संसार में

हो जाती है और विरल होने पर स्वभावतः ऊपर चढ़ती है, अपना यहाँ का स्थान ख़ाली करके उठ जाती है। नतीजा क्या होगा ? उसकी जगह भरने को, शून्य स्थान ग्रहण करने को चारों ओर से हवा झपटेगी। इस तरह सम्पूर्ण आकाश-मंडल में हलचल और उथल-पुथल की घटना होती है। जो मनुष्य पूर्ण है, जो शरीर के बारे में कभी कुछ नहीं सोचता, और जिसे कोई इच्छा नहीं है, वह फिर जन्म नहीं लेता। उसकी मृत्यु होने पर उसका सूक्ष्म शरीर, जिसने आत्मा-रूपी सूर्य को ख़ूब पान किया और सत्य-रूपी गरमी या प्रकाश को सोख लिया है, विश्व में अपना स्थान ख़ाली कर देता है, और विरल वायु की तरह इस दुनिया से ऊपर उठ जाता है। उसका स्थान ख़ाली हो जाने से और उसका पुनर्जन्म न होने के कारण, एक दैवी-नियम के अनुसार उसके सब अत्यन्त नगीचीं उसके स्थान की पूर्ति के लिये ऊपर उठाये जाते हैं, और जो उनके बाद हैं

हलचल मच गई। राम का संदेश है—

"Whether working through many souls or alone, I seriously promise to infuse true life and dispel darkness and weakness from India within ten years; and within the first half of the twentieth century, India will be restored to more than its original glory, let these words be recorded."

अर्थात्—

चहे बहुतों के द्वारा चहे तनहा, सच्चा जीवन करूँगा मैं पैदा।
भारत से अन्धकार दूर करूँ, और कमज़ोरी को भगा दूँगा।
दस बरस में यह वादा है पक्का, नोट करलो इसे मैं हूँ कहता।
इसी अर्ध बीसवीं सदी के ही अन्दर ही अन्दर भारत की महिमा।
पहले से भी ज़्यादा बढ़ जावे, राम ने यह भविष्य प्रकाश किया।

है भी इसी तरह एक दर्जा चढ़ जाते हैं, और इसी प्रकार समग्र दुनिया एक दर्जा चढ़ जाती है। तात्पर्य यह कि दुनिया में आपसे आप हलचल मच जाती है। यह कैसा अपूर्व, अद्भुत सुधारक है। उसे अपने ओंठ खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर भी दुनिया का उत्थान हो जाता है।

आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा—"यदि मुझे खड़े होने को स्थल मिल जाय, तो दुनिया को हिला दूँ।" दुनिया को हिलाने के लिए एक स्थिर-बिंदु या आलंब पाने में वह असफल रहा। वेदान्त कहता है कि वह स्थिर-बिन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है। आत्मा। उसे प्राप्त करो और तुम समग्र संसार को हिला सकते हो।

मिथ्या आत्मा के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहे जाते हैं। बर्तन के द्रव पदार्थ में यह सूर्य का प्रतिबिम्ब है। पदार्थ-विद्या सिद्ध करती और दृग्-विद्या (Optics) स्पष्ट करती है कि यह प्रतिबिम्ब मिथ्या है; सम्पूर्ण प्रकाश बाहर है और द्रव-पदार्थ में जो प्रतिबिम्ब है, वह केवल प्रतिबिम्बित प्रकाश है। प्रतिबिम्ब हमारा ही अनुमान है, इन्द्रियों का केवल हथफेर है; पानी या गिलास में ऐसी कोई वस्तु नहीं है। प्रतिबिम्ब भ्रम के सिवा और कुछ नहीं है। अब, यह देखने-मात्र प्रतिबिम्ब पानी या द्रव-पदार्थ की गतियों से प्रभावित होता है, उसी मात्रा में यह भी संक्षुब्ध होता है जितना जल या द्रव पदार्थ संक्षुब्ध होता है।

बालों को कौन बढ़ाता या रक्त को कौन बहाता है? क्या इस मिथ्या क्षुद्र, अधिकार-लोलुप, स्वत्व-स्वायत्तकारी 'अहं' के ये काम हैं? कदापि नहीं। यह क्षुद्र, उत्तरदायी कहा जानेवाला 'अहं' मस्तिष्क में विचार का प्रेरक नहीं है। इस भ्रमात्मक मलिन अहंकार को परे फेंको और अपने सच्चे शुद्ध अहंकार का अनुभव करो। तुम विश्व के स्वामी हो; तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, पवित्रों के पवित्र हो।

हम देखते हैं कि सुषुप्ति-अवस्था में सूक्ष्म शरीर कुछ समय के

लिए मानो घन-अवस्था में लौट जाता है। रुधिर बहता है, भोजन पचता है, किन्तु "मैं पचा रहा हूँ" का कोई विचार नहीं है। स्वप्ना-वस्था में सूक्ष्म शरीर घन-अवस्था को त्याग देता है और द्रव-रूप हो जाता है; सूर्य का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ने लगता है और तुम फिर कहने लगते हो "मुझे उसकी इच्छा है, मैं यह करता हूँ।" वह स्वार्थी, ज़िम्मेदार, इच्छाकारी आत्मा, वह प्रतिबिम्ब, पुनः तुम्हारे पास आ जाता है। यदि यह स्वार्थी व्यक्तित्व सत्य होता, तो सदैव रहता। गाढ निद्रा-अवस्था में वह क्यों नहीं रहा? वह क्यों नहीं टिका? वह गाढ निद्रा-अवस्था में नहीं रहा, यही तथ्य सिद्ध करता है कि आपका यह कीर्तिकामी 'अहं' एक भ्रम है। इससे ऊपर उठो। तुम सूर्यों के सूर्य हो, पूर्ण आनन्द हो, तत्त्वरूप हो, तुम वही हो, और कुछ नहीं।

सामान्य लोगों के लिए यही कठिनता है कि वे अपने आपको यह मिथ्या अहंकार, यह झूठा-प्रतिबिम्ब समझते है। वे इसे नहीं छोड़ सकते। सारे गड़बड़ का यही कारण है।

पानी बहता है। उसमें हिलकोरें, लहरें और तरंगें उठती हैं, किन्तु इन सबका कारण सूर्य का कर्म है, और जल में पड़नेवाले सूर्य के प्रतिबिम्ब का हाथ इस में ज़रा भी नहीं है, बल्कि जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब उतना ही हिलता-डुलता और संक्षुब्ध होता है जिस मात्रा में जल में गड़बड़ होता है। ठीक इसी तरह सूक्ष्म शरीर जल के तुल्य है। सच्ची आत्मा की शक्ति के द्वारा वह संक्षुब्ध होगा, उसमें हिलकोरें आवेंगी, तथापि मिथ्या अहं (प्रतिबिम्ब) इस तरह उद्विग्न होता है, मानो जल की सारी हलचल का वही कारण है। जल में प्रतिच्छाया का अर्थ है, चित्त, शरीर आदि से अभेदता स्थापित करना। यदि शरीर रोगी है, तो तुम कहते हो—"मैं बेकाम हो गया, मैं रोगी हूँ"। ठीक इसी लिए क्योंकि तुम अपने आप को देह या मन से अभेद समझते हो। वेदान्त कहता है, इस मिथ्या अभेदता को त्याग दो और तुम ठीक

हो जाओगे। तन या मन के किसी दोष से तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। इस झूठे आत्मा के कारण यह मिथ्या भावना ही तुम्हारी सब व्यथाओं का हेतु है।

आत्मा के विकास का पुनरुत्तर

प्रश्न—भौतिक शरीर में होते हुए क्या आत्मा अपने आपको पूर्णतया प्रकट कर सकता है?

उत्तर—'आत्मा' शब्द का जैसा तुम अर्थ करोगे, उस पर यह उत्तर निर्भर है। आत्मा से क्या प्रयोजन है? क्या मन आत्मा है? बर्कले (Berkeley), मिल (Mill), हेमिल्टन (Hamilton), रीड (Reid), सब-के-सब मन और आत्मा को एक समझते हैं। इस अर्थ में आत्मा की उन्नति अनिश्चित है। यदि 'आत्मा' शब्द से तुम्हारा मतलब वह है, जिसे हमने मनुष्य में सत्यता का प्रतिबिम्ब कहा है, तो प्रश्न घटित नहीं होता। यदि 'आत्मा' शब्द से सच्ची आत्मा अभीष्ट है, तो किसी परिवर्तन या उन्नति की संभावना के लिए कोई स्थान ही नहीं है। किन्तु साधारणतः अधिकांश लोगों के लिए 'आत्मा' शब्द मिथ्या, कल्पना-मात्र है, कोरा नाम है, जिसका उनके लिए कोई निर्दिष्ट महत्व (उपयोग) नहीं है। ये लोग इस मामले पर अपने मत आप ही स्थिर करते रहें।

९

क्या किसी समाज विशेष की आवश्यकता है ?

[गोलडन गेट हाल, सन फ्रांसिस्को, २६ जनवरी, १६०३]

प्रश्न—स्वामीजी की दी हुई इन सचाईयों का अनुसरण करने के लिए क्या यह सर्वोत्तम न होगा कि हम अपना एक स्वतन्त्र समाज स्थापित करें ?

उत्तर—जाति-भेद और साम्प्रदायिकता को तोड़ना राम का एक उद्देश्य है !

यह सत्य है कि सभा चलाकर या एक समाज बनाकर सत्य का पक्ष पुष्ट किया जा सकता है, किन्तु इससे प्रायः हित की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

यदि कोई समाज या सभा बनाई जाय, तो वह अन्य सभाओं-सरीखी न होनी चाहिए। राम न तो किसी को गुलाम बनाना चाहता है और न किसी के कंधे पर वेदान्त का जुआ रखना। तुम सबको किसी भी दूसरी सभा में उपस्थित होने और नवागतों के विचार सुनने की स्वाधीनता है। जो मेरे हैं, वे मेरे हैं, वे मेरे पास आ जायँगे। यदि तुम दूसरे वक्ताओं से आकर्षित हो, यदि तुम्हारे लिए इसमें या उसमें कुछ सार हो, तो उनके पास जाओ। प्रत्येक व्याख्याता राम है। कृष्ण में हूँ, मोहम्मद में हूँ ; उन्हें स्वच्छन्दता से सुनो। राम नहीं चाहता कि

तुम उसके ग़ुलाम हो जाओ ! प्रकाश को मत रोको । साथ ही राम चाहता है कि तुम इस सत्य से लाभ उठाओ ।

सत्य जो इतना प्राचीन है जितना हिमालय की सफ़ेद शिखवाली चोटियाँ हैं और सत्य जो हज़ारों-लाखों साल पहले गंगा के तट पर गाया गया था, यह वही सत्य है जिसे इमर्सन (Emerson), व्हिटमैन (Whitman) और अनेकों ने सोचा-समझा है, और यह वही सत्य है जो उन्हें मस्ती में लाता है । आजकल के समाजों और सभाओं द्वारा हज़ारों रूपों में उपस्थित किया जानेवाला वही सत्य कहीं पूर्णतः और कहीं अंशतः प्रकट होता है । वही सत्य, जिसकी चर्चा तुम्हारे अख़बारों और पत्रों में होती है, सुन्दरता से उपस्थित किया जा सकता है । किन्तु सत्य बदला नहीं है, जैसा सहस्त्रों वर्ष पूर्व वह था, वैसा ही आज भी है । किन्तु राम कहता है कि सत्य को बड़ी ही सुन्दरता से वह उपस्थित करता है, और यदि आप इन पुस्तकों को पढ़ें, तो आप देखेंगे कि राम ने किस आन-बान-शान और विलक्षणता के साथ इस सत्य का वर्णन किया है । कुछ लोग राम के वाग्विलास (oratory)का मज़ा नहीं ले सके, क्योंकि लोगों की रुचि के अनुसार उसमें न तो कोई मसख़रापन था और न चटपटा मसाला । हाँ, राम यदि सत्य से डिगे और एक ऐसा स्वर ग्रहण करे जिसमें चापलूसी और मसख़रापन हो, जो तुमको अच्छा लगे, तो राम को सुनने के लिए अधिक संख्या में लोग जमा होंगे । किन्तु राम किसी व्यक्ति की रुचि के अनुसार चटपटा भोजन देने के लिए सत्य के शिखरों से नहीं उतरा और न कभी उतरेगा ।

ईसा ने केवल ग्यारह शिष्यों को ही उपदेश दिया था ; किन्तु वायुमंडल ने उन शब्दों को संचित किया, आकाशों ने उन्हें जमा किया, और आज करोड़ों मनुष्य उन्हें पढ़ते हैं । धूल में मिलाया हुआ सत्य फिर उठेगा ।

हो सकता है कि इस विचार को अनेक लोग प्रकट कर रहे हों, किन्तु राम का ढंग उसी विचार को प्रकट करने का जिसे आजकल के पत्र प्रचार कर रहे हैं, किसी आवश्यकता की पूर्ति करेगा और कुछ हित करेगा। कुछ का इस ढंग से उपकार होगा, और दूसरों का दूसरे ढंगों से लाभ होगा; परन्तु फिर भी लाखों मनुष्यों को राम के ढंग से बड़ा लाभ होगा। राम कहता है कि यदि तुम्हारा इसमें अनुराग है, तो इसे ले लो, इसे बढ़ाओ और इसे हाथोहाथ हर एक को, क्या सबको पहुँचाओ। यदि राम के चले जाने पर तुम कोई सभा संगठित करो, तो स्वामीजी की ,रचनाएँ ले लो। इमर्सन, व्हिटमैन, स्पेंसर और दूसरों की रचनाएँ ले लो। ऐसी सभा बनाओ जो किसी नाम से बँधी न हो, जिसका उद्‌देश्य हो सत्य की वास्तविक बढ़ती, और यदि उस सभा में कोई ऐसा हो जिसके पास कोई मौलिक वस्तु हो, अथवा अध्ययन करने या पढने में कुछ उपयोगी बातें उनके ध्यान में आई हों, तो वे सभा के सामने ये बातें रख सकें, जिससे सबका हित हो। निजी ध्यान में यदि कुछ नये विचार किन्हीं सदस्यों को सूझ पड़ें, तो वे उनकी सूचना दें। किन्तु यह सब स्वाभाविक तौर पर हो, नियमों आदि के अनुसार नहीं।

यह एक सीटी है जो बजाई जाने पर बुलबुल की आवाज़ देती है। हम जब चाहें इसे बजा सकते हैं और बुलबुल की ध्वनि पा सकते हैं, किन्तु ध्वनि स्वाभाविक नहीं है। बुलबुल का स्वाभाविक गान देश-काल या नियम से नहीं बँध सकता। जब उसका जी चाहेगा, तब गावेगी, न कि जब तुम उसके पास पहुँचो और कहो—"ऐ बुलबुल, गा।" सो तुम देखोगे कि कि बोलने या लेक्चर देने का समय नियत कर देने से कुछ शर्तें लग जाती हैं, और अत्युत्तम परिणाम हाथ नहीं लगते।

हाल (Hall) के किराये, तथा इसलिए कि और भी रुपया

कमाया जाय, नियत नियमों की आवश्यकता है, किन्तु ये सब नियम सत्य का ख़ून करते हैं। यह है चाँदी के तीस टुकड़ों पर सत्य के ईसा को बेचना।

राम तुमसे कहता है कि यदि तुम सभा बनाना चाहते हो, तो उसे स्वाभाविक क्रम पर बनाओ और वर्तमान सभाओं की नक़ल न करो। हो सकता है कि यह अपने ढंग की पहली हो।

ईसाई सम्प्रदाय का गिर्जा स्वयं एक भूल है। यद्यपि उसने बड़ा हित किया है, किन्तु अपने अनुयायियों के इर्द-गिर्द दीवारें खड़ी करके और ईसाई इंजील के सिवा किसी दूसरे सूत्र से सत्य ग्रहण करने में उन्हें रोककर उसने उसी हिसाब से हानि भी की है। इसी तरह बौद्ध, मुस्लिम और अन्य बहुतेरे सम्प्रदाय स्वयं भयंकर भूल हैं, क्योंकि वे अपने अनुयायियों को संकीर्ण सीमाओं में संकुचित कर देती हैं और किसी दूसरे स्रोत से सत्य प्राप्त करने में उन्हें रोकती हैं। तुम्हें उसी दरवाज़े या खिड़की से स्वर्ग पहुँचना होता है, किसी दूसरे से नहीं।

किसी भी दरवाज़े या खिड़की से तुम्हें आकाश की ओर देखने का अधिकार है, यहाँ तक कि तुम्हें घर छोड़ने, दरवाज़ा या खिड़की छोड़ने और खुले मैदान में आ सारे स्वर्ग का मज़ा लूटने का अधिकार है। इस लिए राम चाहता है कि दूसरी सभाओं की तरह अस्वाभाविक विधि पर इस सभा की रचना न हो, वरन् अत्यंत स्वाभाविक विधि पर उसकी रचना की जाय। सदस्य किन्हीं बंधनों से न बँधें, वे स्वाधीन हों। ऐसी सभा हो जिसके सदस्य, बुलबुल की तरह, जब इच्छा करें अथवा जब प्रेरणाधीन हों, तब व्याख्यान दें। बुलबुल जब गाने को विवश की जाती है, तब उसके गाने की सारी माधुरी चौपट हो जाती है। अपने को बनावटी सीढ़ियों का-सा न बनाओ, बुलबुल की ध्वनि की नक़ल न करो। नियमों और क़ानूनों से न बँधो। सत्य बंधनों से नहीं बांधा जा सकता।

राम की सर्वोत्तम रचनाएँ हिमालय के गंभीर वनों में लिखी गई है, जहाँ कोई नहीं सुनता था। वहाँ राम वन के वृक्षों को गाकर सुनाता था, वन की वायु ने ध्वनि को ले लिया और दूर-दूर उसकी प्रतिध्वनि की, उन रचनाओं का प्रचार होने लगा। किन्तु राम जब कभी किसी सभा के सामने बोलने को लाचार किया गया और नियमों तथा विधियों के अनुसार बोला, तब उसके प्रयत्न अच्छे नहीं रहे। वह अस्वाभाविक था और इसलिए सुन्दरता चली गई। कभी-कभी जब केवल एक मनुष्य आपका श्रोता होता है, तब सत्य अधिक सुन्दरता और शान से आता है। सत्य श्रोताओं की एक या अधिक संख्या की परवाह नहीं करता। भावना को ग्रहण कर लो और धीरे-धीरे सारा संसार सुनेगा।

तुम किसी समाज के क्यों हो जाओ? समाज तुम्हारा है। यह लो, तुम एक वार में बहुत कम हवा अपने फेफड़ों में श्वास से लेते हो, और तथापि दुनिया की सारी हवा तुम्हारी है। क्या ऐसा नहीं है? सारा वायुमण्डल तुम्हारा है, सम्पूर्ण वायुमण्डल तुम साँस से खींच सकते हो। भारत, जापान, चीन, इँगलैंड, अमेरिका की हवा राम की है और राम तुम भी हो। हिमालय की पवन अपनी मधुर सुगन्ध के सहित तुम्हारी है। हवा पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। इसी तरह सत्य या ज्ञान पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। दुनिया का सम्पूर्ण धर्म, जगत् का सम्पूर्ण सत्य तुम्हारा है।

जब तुम साँस लो, तब इस विचार पर सोचो और इस भाव को अनुभव करो कि जिस तरह यह देह सारे संसार की हवा की साँस ले रही है, उसी तरह मन सारे संसार के सत्य का वारिस या उत्तराधिकारी है।

सारे संसार के सत्य का साँस लो, उसे सब स्रोतों से इमर्सन

(Emerson), व्हिटमैन (Whitman) और दूसरों से, उपनिषदों, गीता आदि सबसे बटोरो। वे सब स्रोत तुम्हारे हैं। उन्हें अपना समझो।

जब तुम कोई पुस्तक पढ़ने को उठाओ, उसके लेखक का नाम न देखो। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित होने दो, जिनमें उपनिषदों की तरह लेखक का नाम न हो।

उपनिषद्कारों ने अपने विचारों को दुनिया को देकर कोई साख अपने लिए नहीं ली। भारत के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ, षट्दर्शनों में कहीं भी रचयिता का नाम नहीं है। उस सर्वाधिकार-लोलुप वृत्ति से शून्य, इस प्रभुताशील अहं से मुक्त, और "मैं सत्य हूँ" की वृत्ति से परिपूर्ण, निष्पक्ष होकर ग्रन्थकार अपना काम करता है। "मैं सत्य हूँ" यह अनुभव करना ही मेरे लिए यथेष्ट आनन्द है। "मैंने सौ पुस्तकें लिखीं, मैं ५० लाख का धनी हूँ" इस विचार में क्या सुख रक्खा है। सच्चा सुख तुम्हारे पास यह अनुभव करने से आता है कि "मैं सम्पूर्ण हूँ, परम सत्य हूँ, प्रतापी, अविनाशी आत्मा हूँ, तत्त्व-स्वरूप हूँ"। यह सुख तुम्हारे सब सांसारिक व्यक्तिगत सुखों और हर्षों को तुच्छ बना देता है।

इसलिए साँस लो और जब तुम साँस लो तब यह भान और अनुभव करो कि संसार की प्रत्येक वस्तु तुम्हारी है। अनुभव करो कि समग्र संसार की वायु तुम्हारी है, समग्र संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता और प्रेम तुम्हारा है, ठीक जैसे फेफड़ों में गुजरती हुई हवा तुम्हारी है, जैसे तुम्हारी नसों में खून का प्रत्येक बूँद प्रत्येक सेल (Cell) का है। तुम्हारी देह का प्रत्येक सेल (Cell) तुम्हारी देह के रुधिर के प्रत्येक बूँद का मालिक है। इसी प्रकार जब तुम इस विचार का साँस लो, तब अनुभव करो कि सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, सत्य, सुख, सब सिद्धान्त, सब मत, कृष्ण, मोहम्मद, राम, ईसा, सब तुम्हारे हैं। इस तरह

तुम्हारे द्वारा जो कुछ बह रहा है, केवल उसी को अपने अन्तर्गत का मत समझो।

अब विषादों या उदासी की इस दशा से अपने आपको चंगा करने के उपाय पर कुछ कहा जायगा। औषध बहुत सीधी-सादी है, इतनी सीधी-सादी और सहज होने ही के कारण लोग इसकी उपेक्षा करते हैं।

अनुभव ने यह बताया है, और ये सब महापुरुष जान-बूझकर या अनजाने उसी साधन पर आकर टकराते हैं, जो राम तुम्हारे सामने रखता है। जब तुम इसका प्रयोग करोगे, तब इसके प्रभाव तुम्हें चकित कर देंगे।

कमरे में बैठे हुए यदि तुम उदास हो, यदि तुम्हें थकावट मालूम हो रही हो, अथवा कोई तुच्छ स्वार्थ-पूर्ण दुष्ट विचार, या कोई मन्द कल्पना या ईर्षा का भाव अथवा किसी नीच स्वभाव से अनुचित आसक्ति पैदा हो जाय, तो मन में विचार करो कि शरीर की स्वस्थ अवस्था में ये विचार पास नहीं फटक सकते। याद रक्खो कि पेट में कुछ गड़बड़ है।

जब कोई मनुष्य राम के पास आता है और अनुचित वार्तालाप करने लगता है या उसका स्वर कड़ा होता है, तो राम उसे कदापि दोष नहीं देता, न वैसे ही स्वर में उसे वह उत्तर देता है। जब कोई मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध ईर्षा, कटाक्ष या अप्रसन्नता के लक्षण प्रकट करे, तब तुम उस पर रहम खाओ और उसके पेट के आराम के लिए कोई दवा उसे दो। जब तुम स्वयं दुःख भोगते हो, तब तुम्हें क्या करना चाहिए? क्या तुम्हें बाहरी दवा लेनी चाहिए? अरे! नहीं। ये बाहरी ओषधियाँ ठीक ओषधियाँ न होंगी, इनका प्रभाव टिकाऊ न होगा।

गिरी हुई हालत में जब आप अपने को समझो, तब, राम की सलाह है, अपना आलस्य त्याग दो, अपनी पुस्तक अलग हटा दो,

खड़े हो जाओ, खुली हवा में टहलने लगो और तेज़ी से चलो। स्वभावतः तुम्हारी श्वास दीर्घ हो जाती है। स्वभावतः ऐसी साँस चलेगी और वह तुम्हें शक्ति से प्रफुल्लित कर देगी, और सारी गिरावट दूर हो जायगी। वह ठंडी हवा तुम्हारे मुख पर लगकर एक अद्भुत प्रभाव पैदा करेगी। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि अधिक लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया।

लोगों ने प्राणायाम अथवा श्वास-नियंत्रण पर अनेक व्याख्यान दिये हैं, किन्तु राम का तरीक़ा अत्यन्त स्वाभाविक है। समुद्र-तट पर अथवा कहीं अन्यत्र चलते समय राम की विधि से तुम्हारा प्राण ठीक क्रम पर आ जायगा। खुली हवा में कमरे के बाहर टहलते रहना दूसरा उपाय है। मान लो कि तुम जल्दी-जल्दी नहीं, किन्तु धीरे-धीरे चलते हो, मान लो कि तुम जल्दी-जल्दी चलना अच्छा नहीं समझते और आज़ादी के मुक़ाबले नज़ाकत से चलने के ज्यादा ग़ुलाम हो, क्योंकि अपने हित की अपेक्षा तुम्हें लोकमत का अधिक ध्यान है, मान लो कि तुम मंद-मंद चलते हो, तब तुम्हारी श्वास पेट के केवल ऊपरी भाग को भरती है और यथेष्ट गहराई तक नहीं जाती, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी कोने या ऐसे स्थान में चुपचाप खड़े हो जाओ, जहाँ किसी का ध्यान तुम पर न जाय, और मुख खोलकर भरपूर हवा खाओ। मुख से हवा ख़ूब भीतर खींचो और नथुनों से उसे बाहर निकालो। इस विधि का पूरे ज़ोर से अभ्यास किया जाना चाहिए, और तुम देखोगे कि इससे कितनी अपूर्व प्रफुल्लता तुमको मिलती है।

राम ने आपको अत्यन्त स्वाभाविक प्राणायाम बताया है। श्वास लो, श्वास लो, श्वास लो। दीर्घ श्वास में वायु पेट के नीचे का भाग भरेगी और सम्पूर्ण भीतरी नली से होकर भी गुज़रेगी। इस तरह तुम्हारी गिरी हुई तबीयत तुरन्त सँभल जायगी और तुम्हारी शक्तियाँ तीव्र हो जायँगी। श्वास लेते समय यह बोध करके कि "मैं सारे संसार की वायु

श्वास में ले रहा हूँ, समग्र संसार का अखिल सौंदर्य और प्रेम मेरा है।" गहरी श्वास लेते हुए इसी विचार को इस तरह जारी रक्खो कि दुनिया की सारी सुन्दरता, सारी दौलत मेरी है,"—इससे तुम प्रसन्न हो जाओगे। ज़रा इसकी परीक्षा कीजिये, इतना सहज होते हुए भी इसके परिणाम अपूर्व हैं।

टहलने के बारे में लोग किसी दूसरे के साथ टहलना पसन्द करते हैं और किसी अनाड़ी कवि ने इसी आशय की कविता भी लिख डाली है—

"Have a friend with whom to talk,
Somebody with whom to walk".

अर्थ—"बात करने को मित्र हो कोई,
साथ चलने को हो साथी कोई।"

राम कहता है कि यदि तुम मननशील नहीं हो, अथवा तुम आध्यात्मिक वृत्ति के नहीं हो, यदि मन को तुम किसी महान् या श्रेष्ठ काम में नहीं लगा सकते, तब तुम्हारे लिए किसी को अपने साथ रखना आवश्यक हो सकता है। अथवा मान लो कि तुम बड़े निर्बल हो, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी शिक्षक के साथ टहलने के अधिकार का उपयोग करो, उससे तुम्हारा कुछ हित होगा। किन्तु उन लोगों के साथ घूमने न जाओ, जो तुम्हारा उत्थान या उत्कर्ष नहीं करते। उन लोगों के साथ न टहलो, जो तुम्हें घृणा, मत्सर या ईर्षा के अधम लोकों में लाते हैं। यदि तुम अकेले टहलो और यदि तुम विचारवान् हो, तो जब कोई भी आस-पास न हो तब ॐ का जाप शुरू करने से अधिक हितकर तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हो सकता। जब तुम चलते हुए ॐ का उच्चारण करोगे, तब देखोगे कि स्वयं वायु-मण्डल ही तुम्हें प्रेरित कर रहा है और तुम्हारे भीतर अपूर्व तथा अद्भुत विचार आ रहे हैं।

लोग इस तथ्य से लाभ नहीं उठाते। यह बहुत साधारण सलाह जान पड़ती है, किन्तु अभ्यास करने पर जो अपूर्व परिणाम निकलेंगे, वे तुम्हें चकित कर देंगे।

एक महान् और शक्तिशाली सागर है। इस महाशक्तिशाली सागर में, एक बूँद जल के पीछे भी वही शक्ति है, जो समुद्र की लहर के पीछे। एक लहर के पीछे भी वही शक्ति है, जो दूसरी के पीछे है। हर एक बुलबुले की आत्मा शक्तिशाली सागर है। हर एक तरंग का आधार वही अनन्त समुद्र है।

इस प्रकार अनुभव कीजिये, कृपया अनुभव कीजिये कि यह जिसे आप शरीर कहते हैं, यह छोटा नन्हा बूँद, लहर की तरह, उसी शक्तिशाली समुद्रों के समुद्र से, जो सूर्यों और नक्षत्रों का आधार तथा सहारा है, पालित और पोषित होता है, बल और समर्थन पाता है।

तुम्हारी आत्मा सूर्य और नक्षत्रों का सहारा है, तुम्हारे रुधिर के हर एक बूँद की वह आत्मा है; सम्पूर्ण शरीर की वह आत्मा है, सिर के प्रत्येक बाल की आत्मा है, सारे देह की आत्मा है।

तुम यह अनन्त आत्मा हो। तुम केवल इस शरीर का ही समर्थन और रक्षण नहीं करते, किन्तु तुम अखिल देश (Space) और अखिल काल (Time) की भी आत्मा हो। अब ध्यान दो, तुम वह आत्मा हो, जो अखिल काल और अखिल देश को सहारा दे रही है। तुम अनन्त की आत्मा हो। अब देखिये, यदि यह शरीर मृत्यु को प्राप्त हो, तो क्या उस आत्मा की मृत्यु होगी ? नहीं। यदि शरीर मरे, तो आत्मा तब तक नहीं मर सकती जब तक काल और देश है। अरे, कैसा परम आश्चर्य है ! मैं सम्पूर्ण देश की आत्मा हूँ, सम्पूर्ण नित्यता की आत्मा हूँ, निखिल काल की स्वयं आत्मा हूँ।

जब तुम अकेले घूमते हो, समुद्र के किनारे या खुली हवा में टहलते हो, इसी विचार का अनुभव करो। जब तुम अकेले रहते हो, तब

भी इसी विचार का अनुभव करो। चाहे तुम स्वच्छन्दता पूर्वक ॐ का का उच्चारण न करो, किन्तु इस विचार को भाव द्वारा धारण करना ही ॐ का उच्चारण करना है।

ॐ के बाहरी उच्चारण पर तुम्हें अति अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं है; किन्तु भावना के द्वारा तुम्हें अनुभव करना चाहिए कि "मैं अखिल अनन्त हूँ, सम्पूर्ण देश मैं हूँ, सब शरीर मुझसे भरे हैं, शत्रुओं या मित्रों की सब इच्छाएँ मेरी हैं, समग्र इच्छाएँ मेरी हैं।"

यह एक मनुष्य है, जिससे मुझे डाह है, जिसे मैं अपना प्रतियोगी (रक़ीब) समझता हूँ। अब समझो "वह प्रतियोगी मैं ही हूँ।" सारी विलगता त्याग दो, अनुभव करो कि वह क्षुद्र डाह करनेवाले व्यक्ति तुम नहीं हो। मान लो कि तुम किसी को प्यार करते हो और तुम्हें मालूम होता है कि कोई दूसरा भी उसी को प्यार करता है, तब डाह का भाव आता है। इसे बढ़ने न दो। प्रेमपात्र तुम हो और जो दूसरा तुम्हारी हृदय-प्रतिमा को प्यार करता है, वह भी तुम्हीं हो, उसके हर्ष तुम्हारे हर्ष हैं, इस सत्य को अनुभव करो। सत्य को अनुभव करने के लिए तुम्हें अपने आपको सत्य-रूप अनुभव करना चाहिए। समझो "मैं वह हूँ जिसके पास वह व्यक्ति पहुँचता है, कोई पृथक्ता नहीं है।" इससे ऊपर उठो। बड़े और छोटे के इस विचार से पीछा छुटाओ। न कोई बड़ा है और न कोई छोटा, इसके अनुभव करने में अपने वेदान्त को लगाओ। समझो—"मैं वह हूँ, जो आज बड़ा है; और वह, जो आज बड़ा नहीं है, वह भी मैं हूँ।" एक मनुष्य तुमसे बड़ा हो सकता है, उसमें तुमसे अधिक दौलत कमाने की शक्ति हो सकती है, उसे तुमसे अधिक सम्मान प्राप्त हो सकते हैं। अब उन्नति करने का एक यही उपाय है कि हम देखें कि हम जिससे डाह करते हैं वह शरीर है, किन्तु वह शरीर उस नायक (Hero)

की आत्मा नहीं है ; नायक की आत्मा और मैं एक हूँ । यह समझो और डाह के इस भाव से ऊपर उठो ।

प्रकृति में जो सर्वोत्तम है, उसके साथ-साथ जितना ही अधिक तुम्हारा हृदय धड़कता है, उतना ही अधिक तुम्हें यह भान होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति भर में तुम्हीं साँस ले रहे हो । वृक्षों की उत्पत्ति और नाश में तुम्हीं साँस लेते हो । सूर्य उदय और अस्त होता है, यही साँस का अन्दर लेना और बाहर निकालना है ।

जीवन और मृत्यु साँस भीतर लेने और साँस बाहर निकालने के समान हैं । जब तक तुम प्रकृति से फटे ; पृ हो, तब तक तुम नष्ट वा भ्रष्ट हो । जितना ही अधिक तुम समझते हो कि सारा जगत् मेरी श्वास है और मैं वह अनन्त शक्ति हूँ जो मृत्यु की घटना द्वारा, आवागमन के द्वारा, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड द्वारा श्वास लेती है, उतना ही अधिक तुम सब तुच्छ चिन्ताओं और फ़िक्रों से ऊपर उठ जाते हो । यह है आन्तरिक सुन्दरता । जो लोग भीतर से सुन्दर हो जाते हैं, उनके चेहरे चाहे जैसे हों, वही प्यारे हो जाते हैं । वे समग्र संसार के आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं ।

सुक़रात बड़ा बदसूरत था । पर वह भीतरी सुन्दरता के लिए प्रार्थना करता था । अच्छे विचार रखना भीतरी सुन्दरता है ।

यह भाव तुम्हारे लिए समग्र संसार को कितना स्निग्ध बना देता है ! जब तुम समझते हो कि तुम स्वाधीन हो, तब दुनिया में कोई विषमता, कोई खुरखुरापन नहीं रह जाता ।

यदि सूर्य नीचे गिर पड़े, यदि चन्द्रमा धूल में मिला दिया जाय, यदि नक्षत्रों के मण्डल नाश हो जायँ, तो तुमको, जो वास्तविक स्वरूप और सच्ची आत्मा हो, उससे क्या ! ऐसा भान करो, क्योंकि फिर तुमको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता । सूर्य, चन्द्र और तारागण चाहे नाश हो जायँ, पर तुम्हारा नाश नहीं होगा । तुम सम्पूर्ण देश और

सम्पूर्ण काल की आत्मा हो। तुम अविनाशी हो और तुम शिला की तरह स्थिर खड़े हो। इसको अनुभव करो। इसी प्रकार तुम्हें श्वास लेना चाहिए। फेफड़ों और मन के द्वारा श्वास लो। मन के द्वारा तुम सारे संसार की आत्मा को अपनी श्वास बनाओ। तुम अखिल विश्व को अपने प्राणों में ले आओ और इस प्रकार प्रकृति से एकताल हो जाओ। तुम्हारा जीवन सारे विश्व से एकताल हो जायगा।

एकगति होना क्या है? मस्तिष्क की गति एकताल होने दो। एक-ताल गति सकल मण्डलों का संगीत है। ब्रह्माण्ड के सब मण्डल उस एकताल गति में श्वास ले रहे है।

यह ताल-गति प्राप्त करो। इस ताल के साथ एकस्वर हो, और आकाश-मंडल के राग के साथ एकस्वर हो, और तुम भीतर से सुन्दर हो जाओगे।

इस महा समुद्र में एक मछली है। समुद्र का जल मछली के गल-फड़ों को भरता है, और समुद्र का पानी उसमें होकर गुज़र जाता है। सारी गति उसमें है।

इसी तरह, भान करो कि सम्पूर्ण संसार मेरा है। वह क्या है, जो तुम्हारी प्रसन्नता और वलवलों पर पानी फेर देता है? वह वही है जिसे आध्यात्मिक मलिनता कहते है। तुम्हें अपने को शुद्ध पारदर्शी बनाना है। तुममें जो मलिनता है, उसे त्याग देना है। वह तुम पर अँधियारा छा देती है।

यह मलिनता क्या है? यह वह क्षुद्र अहं या ख़ुदी है, यह वह मिल्कियत जतानेवाला अहम् है, जो कहता है—"यह मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है, इत्यादि।" यह वह मलिनता है जिसे त्याग देना चाहिए। खुली हवा में साँस लेते समय यह भान करो कि तुम संपूर्ण संसार से एक हो। तुम शुद्ध पारदर्शी हो जाओ, और हर एक वस्तु तुम्हारे पास आवेगी। दो मनुष्य एक राजा के सामने गये और

कहा कि आप अपने महल की दीवारें रँगने और सजाने के काम पर हमें नियुक्त कीजिये। इन दो प्रतियोगी कारीगरों ने सारे काम का ठेका पाने के लिए राजा से प्रार्थना की। उन्हें नियुक्त करने से पहले राजा ने उनके काम की परीक्षा करना चाही और इसके अनुसार उनसे आमने-सामने की दो दीवारें रँगने को कहा गया।

कारीगर एक-दूसरे के काम को देखे बिना अपना काम अलग-अलग कर सकें, अतः दीवारों के सामने परदे डाल दिये गये। उन्होंने लगभग एक महीने काम किया और समय पूरा होने पर एक कारीगर राजा के पास पहुँचकर बोला—"मैंने अपना काम पूरा कर दिया है, अतः मैंने जो कुछ किया है, उसे आप चल कर देख लीजिये।" तब राजा ने दूसरे कारीगर से पूछा—"तुम्हें पूरा करने में कितने दिन लगेंगे ?" उसने उत्तर दिया—"महाराज, मैंने भी समाप्त कर दिया है।" दिन नियत कर दिया गया और राजा अपने सब मुसाहिबों तथा अन्य दर्शकों के साथ देखने पहुँचे कि कौन कारीगर दूसरे से बढ़ गया है। पहले कारीगर की दीवार के सामने से परदा हटाया गया। राजा और उसके परिजन तथा सब दर्शकों ने काम को अत्युत्तम और अपूर्व बताया, वे काम पर मुग्ध हो गये, उसे उन्होंने महान् और उत्कृष्ट समझा।

दरबारियों ने राजा से कानाफूसी की कि इससे बेहतर की आशा नहीं की जा सकती। दूसरे कारीगर का काम देखना अब बेकार है, क्योंकि यह चित्रकार हमारी सब आशाओं से कहीं अधिक बढ़ गया। उन्होंने कहा कि सारा काम इसी कारीगर को देना उचित है। किन्तु राजा अपने दरबारियों से अधिक बुद्धिमान् था और उसने दूसरी दीवार के सामने से परदा हटाये जाने की आज्ञा दी। और देखो ! लोग स्तंभित हो गये, उनके मुँह पसर गये और हाथ उठ गये। आश्चर्य से नीचे की साँस नीचे और ऊपर की साँस ऊपर रुक गई। अरे आश्चर्यों का आश्चर्य, यह तो और भी अपूर्व है !

आप जानते हैं, उन्हें क्या पता लगा ? दूसरे चित्रकार ने महीने भर में दीवार पर कुछ भी नहीं चित्रित किया था। उसने दीवार को यथासाध्य शीशा बना देने का यत्न किया था। उसने इस दीवार को घोंटा, क़लई की और सुन्दर बना दिया। वह दीवार को पूरा शीशा बना देने में सफल हुआ। सामने की दीवार पर उसके प्रतियोगी ने जो कुछ चित्रित किया था, वह पूरी तरह इस दीवार में प्रतिबिंबित हुआ। इसके सिवा यह दीवार अधिक चिकनी थी, इसके सामने दूसरी दीवार खुरदरी, विषम और कुरूप जान पडती थी। उस दीवार की सारी चित्रकारी इस सुन्दर, चिकनी दीवार में प्रतिबिंबित हुई, और फल यह हुआ कि इस दूसरी दीवार में पहली दीवार की सारी सुन्दरता जुड़ गई।

उन दिनों लोगों और राजाओं को दर्पणों की जानकारी नहीं थी, अतः उन्होंने बहुत सूक्ष्मता से जाँच नहीं की, किन्तु बोल उठे—"महाराज ! यह मनुष्य दीवार के अन्दर गहरा घुस गया है, इसने दीवार दो या तीन गज़ खोद कर हर एक बात चित्रित की है।"

चित्र दर्पण में उतने ही भीतर जान पड़ते थे, जितनी दूरी पर इस दीवार से सरी दीवार थी।

अब जिस तरह इस चित्रकार ने दीवार यहाँ तक बालू से मली और घोंटा थी कि वह दर्पण हो गई थी, उसी तरह राम तुमसे कहता है कि जो लोग पुस्तकें पढ़ने में व्यग्र रहते हैं, उन्हें बाहरी ज्ञान की प्राप्ति होती है ; जो बाहर चित्रकारी कर रहे हैं, उन्हें उन दीवारों पर अपनी सारी इल्मो लियाक़त ख़त्म करके ऐसी चित्रकारी करने दो जिससे कि वह सुंदर प्रतीत हों।

अपने मन और बुद्धि की दीवारों को घोंट और रगड़कर साफ़-शफ़्फ़ाफ़ और चिकना बनाने अर्थात् अपने हृदयों को शुद्ध करके साफ़-शफ़्फ़ाफ बनाने की जो प्रक्रिया है, उससे समस्त जगत् का ज्ञान तुम्हारे मन पर प्रतिबिंबित हो जायगा, और सारा विश्व तुमसे प्रेरित होगा।

राम निजी अनुभव से तुम्हें बताता है कि जब हिमालय के घने जंगलों में वह रहता था, तब प्रायः ऐसा हुआ कि जब मन साफ होता था, जब मन शून्य होता था तब अत्युत्कृष्ट विचर, अपूर्व तत्त्वज्ञान और अद्भुत शक्ति मानो प्रेरणा से मन में उदय होती थी । इसलिए राम तुमसे कहता है कि समस्त पुस्तकें, इंजील हो या उपनिषद्, वेद हो या मिल्टन के ग्रन्थ, इमर्सन के ग्रन्थ हों या इंगरसोल की पुस्तकें, प्रेरणा के द्वारा लिखी गई थीं, यद्यपि इंगरसोल धार्मिक नहीं कहा जाता था। स्पेंसर की रचनायें उतनी ही प्रेरित (Inspired) हैं, जितने वेद, कुरान या इंजील ! प्रेरणा के बिना कोई ज्ञान नहीं होता, समस्त ज्ञान प्रेरणा के द्वारा आता है। ग्रन्थकार का यह मालिकाना, व्यापारिक, अहंकारी दावा शुरू होना ही, मेहनताना लेने की यह अर्थ-दास्यता की वृत्ति, लोगों से यह माँगना और चाहना ही, मन की दीवारों को अपूर्ण, खुरखुरा और विषम बना देता है। यह तुच्छ रेंगने-वाली, दबकने-वाली वृत्ति ही हमें ऐसा बनाती है। जब यह वृत्ति दूर हो जाती है, तब मन की दीवार पूर्ण हो जाती है। जब तुम समग्र संसार के साथ स्पन्दित होते हो, जब संसार का व्यापार तुम्हारा व्यापार हो जाता है, जब संसार का हृदय तुम्हारा हृदय हो जाता है, जब तुम भान करते हो कि तुम समग्र विश्व की नाड़ी में चलते हो, जब जान बूझकर या अनजाने तुम उस दशा में होते हो, तब ज्ञान आता और तुम्हें परिपूर्ण कर देता है। यह है यथार्थ मार्ग।

पुस्तकों और मन्दिरों से अपना अन्वेषण उठाओ; रहस्य को अपने अंदर ढूँढ़ो। सारे संसार को अपने-अपने भीतर खींच लो। तुम स्वच्छ हो। तुम्हारी मलिनता उसी दम चल देती है, जब तुम्हारे मन में कोई प्रतियोगिता नहीं रहती, जब तुम्हारा अपने आप पर से दावा उठ जाता है। जब तुम एक शत्रु की इच्छाओं को अपनी ही इच्छाओं-जैसा समझने लगते हो, जब यह कसौटी तुम अपनी आत्मा

में लागू करते हो तब देखते हो कि जिन सबसे मैं डाह किया करता था, वे मैं ही हूँ, मैं उनकी इच्छाओं का मालिक हूँ। यदि इस शरीर का वध करने की इच्छा हो, और यदि यह इच्छा तुम्हें भी उतनी ही सुखकर हो जितनी उनको, तब तो तुम विश्व से निस्संशय एकस्वर हो, समग्र संसार से एकताल हो। तुम शुद्ध और स्वच्छ हो, सारी मलिनता जाती रही, तुम सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हो। यह सफलता का रहस्य है। दुनिया के सब ख़ज़ाने तुम्हारे हैं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

१०

मनुष्य का भ्रातृत्व

[१५ फरवरी, १६०३ को दिया हुआ व्याख्यान]

व्याख्यान आरम्भ करने के पूर्व आपके लिए यह बेहतर होगा कि मनुष्य-मात्र की एकता, हम सबकी इकाई और मनुष्य-मात्र के भ्रातृ-भाव पर अपने मनों को एकाग्र कर ज़रा महसूस कीजिये, भान कीजिये अनुभव कीजिये।

ॐ

यदि यह कोरी कल्पना की ही बात होती, तो इसे सुनने में एक घंटा व्यय करना उचित न होता। इसे एक अमली मामला बना देना चाहिए, जो वस्तुतः तुम्हें आध्यात्मिक आनंद दे सके। अरे! जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में सब लोग हमारी आत्मा हैं, तब हमें कितना हर्ष होता है। वह संगीत जो मैंने सुना, मेरा था। अरे! कितना सुख होता है जब हम समझते हैं कि इस दुनिया में जो लोग अति समृद्ध और लोक-प्रसिद्ध हैं, वे सब मैं हूँ। कितना सुख इससे मिलता है! यह अनुभव करने की चेष्टा करो और तुम्हें अपने अभ्यास में इसके स्वाभाविक फल दिखाई पड़ेंगे। जैसे तुम समझते हो कि यह एक शरीर तुम्हारा है, उसी तरह यह समझना और अनुभव

करना शुरू करो कि सब शरीर तुम्हारे हैं। और जब तुम ऐसा समझना शुरू करते हो, तब तुम देखोगे कि ठीक जैसे यह शरीर, जिसे तुम अपना कहते हो, तुम्हारी इच्छाओं और आज्ञाओं का पालन करता है, जिस तरह तुम्हारे इच्छानुसार, तुम्हारी मर्ज़ी पर पैर चलना शुरू करते हैं, तुम्हारे आदेश पर हाथ चलने लगते हैं; जिस तरह पर तुम अपने शरीर में यह देखते हो, ठीक उसी प्रकार यह अनुभव किया जा सकता है, यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है कि यदि तुम एकता के इस सत्य पर अपने मन और शक्तियों को एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि इस दुनिया में सब शरीर ठीक तुम्हारी इच्छाओं के अनुसार बर्तना और चलना-फिरना शुरू कर देंगे। यह परीक्षा-सिद्ध तथ्य है। इसमें विश्वास कीजिये, इसकी जाँच कीजिये। यह कल्पना का विषय नहीं है, यह कोरी बात-चीत नहीं है, यह उतना अधिक तथ्य है जितना तुम अपने इस शरीर को तथ्य कहते हो। यद्यपि यह सर्वथा तत्त्व है, फिर भी तर्क के लिए इसे अव्यावहारिक मान लेने पर, मनुष्य-मात्र की एकता के इस अनुभव से एक सुख तुम्हें अपने भाग में आता तुरंत दिखाई पड़ेगा। लोग धन के लिए उदास और चिन्तित क्यों रहते हैं? वे वाटिकाओं पर अपना अधिकार जमाना और हरे-भरे मैदानों को अपना बनाना चाहते हैं। कैसा मलिन विचार है! क्या तुम यहाँ के धनी लोगों के बाग़ों में, सार्वजनिक बाग़ों में नहीं जा सकते, और वहाँ घंटों बैठकर अपनी इच्छा के अनुसार उन बाग़ीचों का आनन्द ठीक उसी तरह नहीं लूट सकते, जिस तरह वह भद्र पुरुष उसका आनन्द लूटता है, जो उस बाग़ीचे को अपना ही कहता है? उस बग़ीचे को जो भद्र पुरुष अपना कहता है, क्या वह कभी उन सब फूलों और फलों को चार आँखों से देख सकता है? क्या वे बाग़, फूल, हरी-भरी पत्तियाँ और वे सारे फल तुम्हारी ही जैसी दो आँखों के द्वारा उसे सुलभ नहीं हैं? बाग़ में बुलबुलों और पक्षियों का गान वह भी उसी तरह के दो कानों से सुनता है, जैसे तुम

सुनते हो। तो फिर उस बाग़ के अधिकारी होने की मूर्खता-पूर्ण इच्छा के लिए क्यों हैरान और परेशान होते हो? हाँ, राम चाहता है कि दुनिया के सब बाग़ों को तुम अपना ही समझो। राम चाहता है कि मनुष्य के सब शरीरों को तुम अपना ही शरीर समझो, और अनुभव करो। अनुभव करो कि सब सुयोग्य शक्तियाँ और प्रवीण मन तुम्हारे ही हैं। यह ऐसी कल्पना नहीं है जिसे तुम अस्वाभाविक या क्लिष्ट कह सको। जीवन के उच्च आदर्शों की प्राप्ति के लिए क्या तुम्हें अनेक गुणों की साधना नहीं करना पड़ती? वे तुम्हारे लिए उपयोगी हैं, किन्तु सत्यों के इस सत्य पर, कि सब एक हैं, सब शरीर तुम्हारे हैं, इस तत्त्व पर अपनी शक्तियों को एकाग्र करना और अपने विचारों को केन्द्रित करना तुम्हारे लिए सबसे बढ़कर उपयोगी होगा। इस सत्य पर, इस परम तत्त्व पर अपने विचारों को केन्द्रित करो, अपनी शक्तियों को एकाग्र करो। महसूस करो, भान करो और अनुभव करो कि सब तुम्हारे शरीर हैं। सड़क पर जाते हुए जब किसी मनुष्य को तुम देखो, जो प्रतिष्ठित हो—चाहे वह इँगलैंड का सम्राट् हो, चाहे रूस का ज़ार और चाहे यूनाइटेड स्टेट (अमेरिका) का प्रेसिडेंट हो—तो किसी तरह की ईर्षा या भय का विचार अपने मन में न आने दो। उसकी शाहाना नजर को अपनी ही दृष्टि समझकर मज़े लूटो—"मैं वही हूँ, अन्य कोई नहीं।" जब तुम ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करोगे, तब तुम्हारा अपना अनुभव यह सत्य सिद्ध कर देगा कि सब एक हैं, प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे कान, नेत्र, पैर और तुम्हारा अपना शरीर हो जायगा। मनुष्य का भ्रातृत्व! तर्कशास्त्र इसे चाहे सिद्ध कर सके या न कर सके, पदार्थ-विद्या इसे साबित कर सके या नहीं, दर्शन-शास्त्र इसे प्रमाणित करने में समर्थ हो या असमर्थ, किन्तु है यह एक तथ्य, जिस तथ्य को अनुभव सिद्ध करता है।

ॐ

अच्छा, राम अब तुम्हें कुछ युक्तियाँ बतावेगा, जिनसे यह सत्य मनुष्य का भ्रातृत्व स्थापित होगा, और जब तक वह युक्तियाँ दे, तब तक तुम अपने भावों में और हृदय में उन परिणामों को स्थान देने की कोशिश करो, और अपने भावों और हृदय से उनको ग्रहण करने का यत्न करो। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम राम के मुख से निकलनेवाले परिणामों को स्वयं अनुभव करने की चेष्टा करोगे।

उस सज्जन को, जिसे समाचार-पत्रों में इस व्याख्यान का विज्ञापन देना पड़ा था, "मनुष्य का भ्रातृत्व" शीर्षक बताने के बाद राम लज्जित हुआ। "मनुष्य का भ्रातृत्व" भ्रान्त उपाधि है। "विश्वव्यापी भ्रातृत्व" भ्रमात्मक उपाधि है, यह यथार्थ ठिकाने पर नहीं पहुँचती। 'भ्रातृ' शब्द कुछ भेद जतलाता है। भाई एक दूसरे से कलह करते, लड़ते दिखाई पडते हैं ;किन्तु यहाँ तो किसी तरह के भेद के लिए ज़रा भी स्थान नहीं है, यहाँ भ्रातृत्व से अधिक है। "मनुष्य की इकाई और संयुक्त इकाई" अच्छा शीर्षक होता। आप कहेंगे कि आत्मा-सम्बन्धी अनुमानों से हमें हैरान न करो। तुम सदा हमसे आत्मा या स्वयं की चर्चा करते हो। यह तो बड़ा ही सूक्ष्म विषय है।" अच्छा, बहुत ठीक, यदि तुम आत्मा के बारे में सुनने को राजी हो, तब तो बातचीत के लिए गुंजायश नहीं है, और सब मामला तुरन्त समाप्त हो जाता है। कम-से-कम इस विषय में हम सब एक हैं, कोई शब्द उस अवस्था को नहीं पहुँच सकते, कोई भाषा वहाँ नहीं जा सकती। किन्तु यदि तुम आत्मा के बारे में नहीं सुनना चाहते हो, जो शब्दों से परे है, तो राम स्थूलतम स्थिति-बिन्दु से ही मामले को उठावेगा। हम स्थूल देह से शुरू करेंगे, वह अति स्थूल है। यदि हम आत्मा की प्रकृति को त्याग भी दें, यदि हम आत्मा को सच्चा अपना आप न भी समझें, तो स्थूल शरीर भी सिद्ध करता है कि हम सब एक हैं। सब मन प्रमाणित करते हैं कि

तुम सब एक हो। भावना के लोक में भी पदार्थ-विद्या सिद्ध करती है कि तुम सब एक हो; स्थूल लोक पर, मानसिक लोक पर, सूक्ष्म लोक पर तुम सब एक हो। यदि तुम ऐसा नहीं समझते, यदि तुम अपने अमली नित्य के जीवन में उस भ्रातृत्व का व्यवहार नहीं करते, तो तुम अत्यन्त पवित्र सत्य को भंग कर रहे हो। यह तो तुम जानते हो कि जो मनुष्य सरकारी कानूनों के विरुद्ध चलने की चेष्टा करता है, वह दण्ड पाता है, वह कोरा नहीं बच सकता। इसी प्रकार जो लोग इस भ्रातृत्व को नहीं भान करते और नित्य के जीवन में इस भ्रातृत्व को अमल में नहीं लाते, उन्हें दण्ड भोगना पडेगा। इस अत्यन्त पवित्र धर्म, इस अत्यन्त पवित्र सत्य, इस क़ानून अर्थात् मानव-जाति के भ्रातृत्व, तुम्हारे हर एक और सबकी एकाई को केवल तोडने के प्रयत्नों का परिणाम ही दुनिया की सारी व्यथायें और विश्व की सारी दुर्दशा और विकलता है। अब देखो कि कैसे हमारे सब भौतिक शरीर एक हैं। पूछोगे, यह कैसे हो सकता है? वह शरीर वहाँ बैठा है और यह शरीर यहाँ खड़ा है, तब वे एक कैसे हो सकते हैं? ठीक वैसे ही जैसे समुद्र में हमें एक लहर यहाँ और एक वहाँ जान पडती है, जान पड़ता है कि वे विभिन्न स्थानों पर दिखाई गई हैं और वे विभिन्न आकार की भी जान पड़ती हैं; किन्तु वास्तव में वे दोनों लहरें या तरंगें एक हैं, क्योंकि वे उसी पानी से हैं, एक ही समुद्र है, जो इन लहरों में दिखाई पडता है। जिस पानी ने अब इस लहर को बनाया है, वही थोडी देर बाद दूसरी लहर या तरंग बनावेगा। लहरों के मामले में हम जो कुछ देखते हैं, वही बात तुम्हारे भौतिक शरीरों की भी है। जो वस्तु अब इस शरीर को बनाती है, वही कुछ देर बाद दूसरे शरीर को बनाती है। इतना ही नहीं, बल्कि इससे भी अधिक, जो भौतिक परमाणु इस शरीर के, जिसे तुम राम का शरीर कहते हो, सम्पादक जान पडते हैं, तुम्हारे जीवन-काल में ही दूसरी देह में चले जाते हैं।

श्वासोच्छ्वास इसे सिद्ध करता है। तुम ऑक्सीजन भीतर खींच रहे हो और उसे कार्बोनिक ऐसिड वायु के रूप में परिणत करके बाहर निकाल रहे हो। इस कार्बोनिक ऐसिड गैस को पौधे साँस द्वारा भीतर ले रहे हैं और ये पौधे ऑक्सीजन छोड़ रहे हैं। उस ऑक्सीजन को तुम साँस से भीतर लेते हो, और तुम कार्बन डायोक्साइड साँस से बाहर निकालते हो। उसी कार्बन डायोक्साइड को फिर पौधे अपने भीतर खींचते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधों से तुम्हारा भाइयों-जैसा सम्बन्ध है। तुम्हारी साँस उनमें जाती है। और उनकी साँस तुममें पैठती है। तुम पौधों में साँस छोड़ते हो और पौधे तुममें साँस प्रविष्ट करते हैं। इस प्रकार तुम बाग़ों के पौधों से भी एक हो।

अब हम दूसरे पहलू से इसे विचारेंगे। जो ऑक्सीजन तुम साँस द्वारा भीतर खींचते हो और जो कारबन डायोक्साइड में बदल जाता है, वह पौधों द्वारा छोड़ा हुआ था। वही ऑक्सीजन तुम्हारे भाइयों के फेफड़ों में जाता है। वही ऑक्सीजन जो इस समय तुम्हारे शरीर में है वही फिर तुम्हारे भाई के शरीर में भी जाता है। तुम सब-के सब एक ही वायु साँस में लेते हो। ज़रा महसूस तो करो कि तुम सब-के-सब एक ही हवा में साँस लेते हो, तुम्हारी साँसों के द्वारा तुम्हारे सब शरीर एक है; उसी प्रकार जैसे तुम एक ही पृथ्वी पर, एक ही सूर्य और चन्द्रमा के नीचे रहते हो और और एक ही वायुमंडल तुम्हारे चारों ओर है। तुम फल, फूल, शाकभाजी, अन्न या मांस खाते हो। उनके खाने से तुम्हारे शरीर की रचना होती है। मल-मूत्र के रूप में वही बाहर निकल जाते हैं और अपने इस त्यागे हुए रूप में वे वनस्पतियों और फलों में प्रवेश करेंगे। वे उन रूपों में पुनः प्रकट होते हैं। वही पदार्थ, जो तुम्हारे शरीरों से बाहर निकला था, जब शाक-भाजियों और फलों के रूप में पुनः प्रकट होता है, तब फिर तुम्हारे भाइयों द्वारा ग्रहण किया जाता है, दूसरे लोगों के शरीरों में प्रवेश करता है। इस प्रकार हम

देखते हैं कि जो पदार्थ एक बार तुम्हारा था, वही तुरन्त दूसरे का हो जाता है। यदि हम सूक्ष्म-दर्शन यंत्र से अपनी खाल की ओर देखें, तो हम अपने शरीरों से छोटे जानदार परमाणु बाहर निकलते, बहुत ही छोटे जीवित ज़र्रें अपनी देहों से बाहर आते देखेंगे। वे केवल बाहर ही नहीं निकल रहे हैं, किन्तु वैसे ही परमाणु हमारे शरीर में जा भी रहे हैं। कुछ परमाणु शरीरों से बाहर आ रहे हैं और कुछ शरीरों में प्रवेश कर रहे हैं। इस दुनिया में इसी प्रकार निरन्तर अदल-बदल हो रहा है। जानदार ज़र्रें, जो अब तुम्हारी देह से बाहर आ रहे हैं, वे इस वायुमण्डल में फैल रहे हैं और वही सजीव परमाणु, जो अब तक तुम्हारे थे, बिना विलम्ब, तुरन्त तुम्हारे अन्य संगी-साथियों के हो जाते हैं। पदार्थ-विद्या असंदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित करती है कि तुम्हारे भौतिक शरीर सब एक हैं। तुम शायद इस पर विश्वास न करोगे। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सजीव, अति सूक्ष्म परमाणु मेरे मित्रों के शरीरों से निकलकर मेरी देह में प्रवेश करते हैं, और ऐसे ही परमाणु, जो मेरे शरीर से बाहर निकलते हैं, वे मेरे मित्रों के शरीर में चिपटते हैं? यह कैसे सम्भव है? आओ, जाँचें। गंध का कारण क्या है? आप जानते हैं कि जो वस्तुएँ हम सूँघते हैं, उनसे बाहर निकलनेवाले छोटे, सजीव परमाणु ही गन्ध का कारण हैं। फूल छोटे जानदार ज़र्रें बाहर निकालते हैं, इसीलिए वे सुगंधित हैं। यह एक तथ्य है जिसे पदार्थ-विद्या ने सिद्ध कर दिया है। यहाँ तुम्हारे बहुत से शरीर हम देखते हैं, क्या उनसे गंध नहीं आती? तुम्हारी घ्राणेन्द्रिय इतनी तीव्र नहीं है, या यों कहिए कि इस प्रकार की अथवा इस सामर्थ्य की नहीं है कि इस गन्ध को ग्रहण कर सके। तुम्हारे शरीर गन्धवान् हैं। कभी-कभी तुम्हें अपने शरीरों की गन्ध जान भी पड़ती है। कुत्ते सूँघकर तुम्हें ढूँढ लेते हैं। यदि तुम्हारी देहों से गन्ध न निकलती होती, तो कुत्ते तुम्हें सूँघकर कैसे ढूँढ लेते? तुम्हारे शरीरों

से निकलनेवाली यह गन्ध सिद्ध करती है कि छोटे, सजीव परमाणु तुम्हारे शरीर को छोड़कर बाहर निकल रहे हैं। ये छोटे सजीव परमाणु तुम्हारी देहों से बाहर जाते है और दूसरों की देहों से निकलकर तुम्हारी देहों में घुसते हैं। इस प्रकार तुम सब एक हो। अरे, हम सब तो एक ही (विराट्) देह रखते हैं। इस गन्ध को भान करो। इस अर्थ में हम सब एक ही भौतिक शरीर रखते हैं। एक मनुष्य बीमार है, तुम उसके पास जाते हो और उस कमरे तक से उसकी बीमारी की गन्ध आती है। एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से बीमार है—हैज़ा, चेचक या प्लेग से। दूसरे लोगों को बीमारी की छूत कैसे ग्रस लेती है? एकमात्र कारण यही है कि जो छोटे ज़र्रे बीमार की देह से निकल रहे हैं, वे तुम्हारे शरीर में पैठ जाते हैं। इससे क्या यह नहीं प्रकट होता कि रोगी की देह से जो ज़र्रे बाहर आते हैं, वे हमारी देहों में चिपट जाते हैं? इसी तरह महामारी हमें पकड़ती है और हम अपने को बीमार भान करते हैं। एक मनुष्य को ज़ुकाम हो जाता है, उसके साथ रहनेवाले दूसरे व्यक्ति को, यदि वह बहुत कोमल स्वभाव का मनुष्य है, तो ज़ुकाम हो जायगा। एक मनुष्य यक्ष्मा से पीड़ित है। दूसरे को वह रोग लग जाता है। यह कैसे हो सकता, यदि सजीव परमाणु, जो तुम्हारे भाई का शरीर बनाते हैं, उसके शरीर से बाहर न निकलते और तुम्हारे शरीर न बनाते? इससे स्पष्ट होता है कि तुम सब एक हो। हमारे स्थूल शरीर भी एक है, आत्मा का तो कहना ही क्या है! अच्छा, राम इससे एक विलक्षण परिणाम पर पहुचता है। यदि एक मनुष्य बीमार पड़ता है, तो उसकी बीमारी की मुख्य सूचना क्या है, उस संबंध में ख़ास ज़िम्मेदारी क्या है? वह रोगी है; वह स्वयं रोग भुगत रहा है, यह सत्य है। क्यों? अपनी अज्ञानता के कारण। पर वह हमारी बीमारी भी लाता है। वह यद्यपि स्वयं पीड़ा पा रहा है, किन्तु अपनी इस बीमारी के लिए वह सारी दुनिया के प्रति

उत्तरदायी है। वह रोगी है और अपने रुग्ण शरीर के द्वारा रोग के कीटाणु बिना जाने फैला रहा है। मुझे बीमार न पड़ना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि मुझे पीड़ा होगी, किन्तु इसलिए कि इस शरीर की बीमारी सारे संसार की बीमारी की ज़िम्मेदार है। तुम्हें बीमार होने का कोई हक़ नहीं है। अपने बीमारी के कारण तुम सारी दुनिया के प्रति जवाबदेह हो, तुम्हारा रोगी शरीर सम्पूर्ण संसार को बीमार बना रहा है, यह रोग पैदा करनेवाले रोगाणुओं की सृष्टि कर रहा है। इस प्रकार हर एक को ख़ूब सावधान रहना चाहिए। बीमारी सिर्फ़ जिस्मानी नहीं है, किन्तु इख़लाकी बीमारी भी है। तब तो तुम्हें इस बात की पूरी चौकसी रखना चाहिए कि तुम्हारे शरीर बलिष्ट और चंगे रहें। तुम जब कुछ खा—पी रहे हो, तब सावधान रहो, अपने व्यक्तिगत शारीरिक आराम के लिए नहीं, किन्तु सारे जगत् के हित के लिए अति अधिक न खाओ, अति अधिक न पियो और ख़ूब सचेत रहो।

अच्छा, फिर जो लोग स्वस्थ हैं, उनका रोगियों के प्रति क्या कर्तव्य है? जो स्वस्थ हैं, उन्हें रोगियों की सेवा करना चाहिए। यह सेवा व्यक्तिगत रूप से उन पर कृपा या अनुग्रह के लिए नहीं होना चाहिए, वरन् समग्र संसार के लिए, सारे संसार की भलाई के लिए मानव-समाज और सत्य के नाम पर, सार्वभौम भ्रातृत्व के नाम पर, अपने निजी हित के नाम पर तुम्हें रोगी की सेवा करना है। यह रोगी पर दया नहीं है, रोगी की सेवा करना और उसकी सहायता के लिए प्रयत्न करना तुम्हारा मानव-समाज के प्रति कर्तव्य है। तब तुम देखोगे कि हमारे स्थूल शरीर, जो इतने विभिन्न जान पड़ते हैं, एक-दूसरे के लिए पीड़ा पा रहे हैं। मांस और रक्त के सामान्य अति पवित्र बन्धनों से जुड़े हुए, हम स्थूल-लोक में भाई-भाई हैं। चिकित्सक सिद्ध करते हैं कि प्रति सात वर्ष के बाद मनुष्य का शरीर बिलकुल बदल जाता है, देह के प्रत्येक परमाणु के स्थान पर नये परमाणु आ जाते हैं। इससे

यह भी मालूम होता है कि इन परमाणुओं को, जो प्रतिक्षण बदल रहे हैं, इन शरीरों को, जो निरन्तर प्रवाह में हैं, केवल अपना या तुम्हारा समझने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यह शरीर मेरा और वह शरीर तेरा कहने का मुझे कोई हक़ नहीं है। यह देह क्षण-क्षण बदला करती है, और वह देह जिसे मैं इस क्षण अपनी कहता हूँ, मेरी नहीं रहती। वह कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं अपनी कह सकता हूँ? जो अब राम की देह है, वह सात वर्ष पूर्व किसी दूसरे की देह थी। चौदह वर्ष पहले जो राम की देह थी, वह अब किसी और की है? अनेक लोगों की। सो यह देह, जिसे तुम अपनी कह रहे हो, हर एक की और सबकी है। कृपया यह बात समझो। स्थूल-लोक में भी तुम सब एक हो।

अब हम मानसिक लोक में आते हैं। तुम्हारे बाल बढ़ते हैं और तुम्हारी नाड़ियों में रक्त बहता है। ज़रा ध्यान दो। तुम्हारे बालों को बढ़ानेवाला कौन है? क्या वह शक्ति वही नहीं है जो तुम्हारे साथी मनुष्य के बाल बढाती है? क्या तुम्हें इसमें कुछ भेद मालूम होता है? नाड़ियों में रक्त बहाने-वाला कौन है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हर एक की और सबकी नाड़ियों में रुधिर बहाती है? तुम्हारे पेट में अन्न कौन पचाता है? क्या यह वही शक्ति नहीं है जो हर एक के और सब के पेट में अन्न पचाती है? क्या यह वही एक शक्ति नहीं है? इस सत्य को अपने मन के सामने रक्खो और एक पल के लिए इसे अनुभव करो। अरे! आश्चर्यों का आश्चर्य, मै क्या हूँ? क्या मैं वही शक्ति नहीं हूँ जो बाल बढाती, भोजन पचाती तथा नाड़ियों में रक्त प्रवाहित करती है? यदि मैं वही शक्ति हूँ, तो मै अखण्ड हूँ, एक हूँ, और हर एक की और सबकी देहों में व्यापक हूँ। मैं वह अद्वितीय, अखंड, अप्रमेय, अविनाशी शक्ति हूँ, जो इन सब शरीरों पर शासन करती और उन्हें वश में रखती है। कृपया इसे भान करो। यह मानसिक

लोक की बात है। हम तुम सब एक हैं। तुम सब एक हो, कोई भेद नहीं। कृपया यह भान करो। यह एक देह, जिसे तुम अपनी कहते हो, जब भूखों मरती है, तब तुम शोक क्यों करते हो? वे सब शरीर, जो खूब खाने को पाते हैं, तुम्हारे ही हैं। यह शरीर विशेष, जिसे तुम अपना कहते हो, जब बीमार पड़ता है, तब तुम्हें दुखी और उदास होने की क्या ज़रूरत है? वे सब शरीर जो स्वस्थ हैं, तुम्हीं हो। इस सत्य को भान करो, इस सत्य को महसूस करो। दूसरों के प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है? जब दूसरे लोग बीमार पड़ें, तब उन्हें अपने पास ले आओ। जैसे तुम इस देह विशेष के घावों की सेवा करते हो, ठीक उसी तरह दूसरों के घावों की भी सेवा करो, मानो वे तुम्हारे ही हैं। तुम्हारा कर्तव्य औरों को उठाना, उनके साथ सहानुभूति और हमदर्दी करना होगा। किन्तु अपने निजी शरीर के प्रति तुम्हारा कर्तव्य यह होगा कि तुम अपने को सब अवस्थाओं में प्रसन्न और और सुखी रक्खो। सारी विकलता और क्लेशों से बचे रहो।

अब हम मनोवृत्ति या भावना के लोक (Psychological plane) में आते हैं। भावना के लोक में भी तुम सब एक हो। मनोवृत्ति के लोक में तुम सब एक हो। यह एक सत्य है, तथ्य है, इसे खूब अनुभव करो। एक सारंगी है, या यों कह लो कि एक तार वाला बाजा है, जो खूब ठीक और दुरुस्त है। उसी के मुकाबले में एक और तार का बाजा रक्खा है। दोनों बिलकुल एक-समान कसे हुए हैं। जब तुम एक के तार को बजाना शुरू करते हो, तब सामनेवाले तार से भी वैसी ही ध्वनि निकलती है। जब एक बाजे के एक तार को तुम बजाते हो, तब सामनेवाले तार से भी वैसी ही तंत्री फड़कने लगती है। ऐसा क्यों होता है? कारण यह है कि जिन लहरों से हमें एक बाजे से ध्वनि मिलती है, वे दूसरे बाजे के इर्द-गिर्द भी मौजूद हैं। तुम किसी बात को भान करना शुरू करते हो, तुम्हारे पड़ोसी पर तुरन्त प्रभाव

पड़ता है। नाटक-अभिनयों और नाट्यशालाओं में अभिनय-कर्ता सब प्रकार की मनोभावनाओं का स्वाँग करते हैं। उनकी भावनाएँ सच्ची नहीं होतीं। वे एक ओर तो रोते हैं और दूसरी ओर हँसने लगते हैं। उनकी भावनाएँ सत्य नहीं होतीं। किन्तु फिर भी यह देखा जाता है कि जब कोई बहुत बढ़िया अभिनेता रोना शुरू करता है, तब सब दर्शक, सारे तमाशाई रो पड़ते हैं। यह क्यों? एक वीणा या तार का बाजा बजता है और तुम्हारे मनों तथा भावनाओं के सब बाजों पर तुरन्त चोट लगती है। यदि तुम सबके चित्त एक ही न होते, यदि तुम्हारी सब भावनाएँ या चित्त-वृत्तियाँ या मनुष्य के अन्तःकरण वा मनोवैकारिक अस्तित्व भाई-भाई की भाँति एक दूसरे से सम्बद्ध न होते, तो ऐसा होना असम्भव था। यदि तुम्हारे चित्त परस्पर एक-दूसरे से ऐसे सम्बद्ध न होते, जैसे विभिन्न लहरें और तरंगें, यदि तुम्हारे चित्त उसी एक सागर की लहरें और तरंगें न होते, तो यह पारस्परिक सहानुभूति असम्भव होती। पदार्थ-विद्या कहती है कि यदि एक शरीर की क्रिया का प्रभाव दूसरे शरीर पर पड़ता है, तो दोनों में अनुवर्तन का होना आवश्यक है। कोई शक्ति इस अनुवर्तन के नियम (Law of continuity) को तोड़ नहीं सकती। यह एक ठोस सख़्त डेस्क या मेज़ है। इसके एक कोने को सरकाओ, पूरी सरक जाती है। कारण यही है कि यह भाग दूसरे भागों से दृढ़ता-पूर्वक जुड़ा हुआ है। हर एक शक्ति को क्रिया करने के लिए लगातार कर्म करना पड़ता है। इस-प्रकार एक मनुष्य की मनोवृत्तियाँ वा भावनाएँ दूसरे मनुष्य के पास पहुँचा दी जाती हैं। यदि एक मनुष्य का हृदय दूसरे मनुष्य के हृदय से मानो एक अविच्छिन्न माध्यम के द्वारा, जुड़ा न होता, तो ऐसा होना असम्भव होता। इस प्रकार यदि तुम्हारे सबके हृदय एक-दूसरे से, निरन्तरता से, दृढ़ता से, जुड़े हुए न होते, तो एक मनुष्य की मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ दूसरे तक कदापि नहीं पहुँच सकती थीं। यह

एक ठोस तथ्य है। क्या तुम नहीं देखते हो कि मनुष्य की मनोभावनाओं का एक दूसरे के पास पहुँच जाने का तथ्य ही तुम्हें इस परिणाम को मान करने के लिए विवश करता है कि तुम सबके मन एक दूसरे से युक्त हैं, मानों वे एक शरीर हैं, उनमें विचार और भावना की एकता है? राम ने प्रायः यह देखा है कि जब वह व्याख्यान में हँसता है, तब हर एक व्यक्ति हँसता है। यह भी देखा जाता है कि जब एक मनुष्य रोने लगता है, तब दूसरे लोगों के चित्त भी द्रवित, आकुल होने लगते हैं। यहाँ एक मनुष्य गा रहा है, जो लोग उसके इर्द-गिर्द हैं, उनके दिल भी लहराने लगते हैं। राम ने यह भी देखा है कि जब एक आदमी गाना प्रारम्भ करता है, जब दूसरे लोग भी गुनगुनाने लगते हैं। यह तथ्य है। यदि तुम्हारी सबकी मनोवृत्तियाँ या चित्त एक न होते, तो यह कैसे हो सकता था? कृपया इस पर ज़रा ध्यान दीजिये। हम बातें कैसे सीखते हैं? हम अपने मित्रों और दूसरे लोगों से सीखते हैं। कोई शिक्षक तुम्हें कोई बात कैसे सिखा सकता, यदि शिक्षक और शिष्य का चित्त एक ही न होता, यदि मानसिक जगत् में उनमें परस्पर बन्धुत्व न होता? यहाँ एक चित्त सीधा दूसरे चित्त से वार्तालाप कर रहा है, शिक्षक का ज्ञान शिष्य का हो जाता है, यह कैसे हो सकता था, यदि दोनों चित्तों का सीधा संयोग न होता? और फिर आप जानते हैं कि यह एक अनुभव की बात है कि जब आप वास्तव में अपने मित्र के साथ सहानुभूति करते हैं और जब आप प्रेम, दया, उदारता के भावों को और किसी मनुष्य के प्रति भ्रातृभाव को हृदय में पोषण करते हैं, तब दूसरा मनुष्य हजारों मील की दूरी पर होता हुआ भी, उस सबको अनुभव करने को बाध्य होता है। राम ने इस तथ्य की सत्यता की परीक्षा की है, और प्रत्येक दिन राम इसकी परीक्षा करता है। हज़ारों मीलों की दूरी से कोई भेद इसमें नहीं पड़ता। क्या इससे यह नहीं प्रकट होता कि तुम्हारे सब मन एक ही

सतह पर हैं और उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध है? मानसिक लोक में तुम सब भाई-भाई हो।

इस दुनिया में अपराधियों और कुकर्मियों की उत्पत्ति कैसे होती है? एक मनुष्य आता है और तुम्हारी भावनाओं को चोट पहुँचाता है; किन्तु वह मनुष्य बड़ा बली है, तुमसे कहीं अधिक शक्तिशाली है। तुम उसके प्रति घृणा का ख़याल रखते हो, किन्तु घृणा के उस भाव को तुम कार्यान्वित नहीं कर सकते। वही प्रबल मनुष्य दूसरे मृदुल मनुष्य की भावनाओं को आघात पहुँचाता है। वह दूसरा मृदुल मनुष्य भी इससे रुष्ट होता है, बुरे विचार रखता है, किन्तु अपने शरीर के द्वारा उन्हें अमल में नहीं ला सकता। बलवान् मनुष्य एक तीसरे व्यक्ति की भावनाओं को घायल करता है। तीसरा व्यक्ति भी दीन है और अपराधी को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं पहुँचा सकता। इसी तरह, मान लीजिये, बीस, पचास या सौ मनुष्य उस मनुष्य से पीड़ित होते हैं। अन्त में एक समय आता है, जब यह बलवान् मनुष्य एक अत्यन्त ही बलवान् मनुष्य के पास पहुँचता है, जो उसके जोड़ का है। प्रथम अपराधी से बहुत ही थोड़ा अपमानित होने पर यह व्यक्ति इतना क्रुद्ध और जामे के बाहर हो जाता है कि वह अपमान की मात्रा का कुछ भी विचार नहीं करता, वह नहीं सोचता कि अपमान बहुत हलका या नगण्य-सा है, उचककर खड़ा हो जाता है और हाथ में बन्दूक लेकर उसे मार देता है। मूल अपराधी को बन्दूक मार दी जाती है, दूसरा मनुष्य घातक कहकर पुलिस द्वारा पकड़ा और मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जाता है। मैजिस्ट्रेट मामले की जाँच शुरू करता है। अपमान की तुलना में क्रोध को बिलकुल बेहिसाब देखकर वह चकित होता है। अनादर बहुत ही कम था, किन्तु दूसरे अपराधी में भड़क उठनेवाला रोष विकट था। मैजिस्ट्रेट को अचम्भा होता है। समाचार-पत्रों में मामले की चर्चा होती है। यह कैसा तुनुक-मिज़ाज आदमी

था, वह बड़ा ही ख़राब आदमी था, अति सामान्य अपमान ने उसके गुस्से की आग इतनी भड़का दी कि उसने मनुष्य की हत्या कर डाली। ऐसे मामले क्या नित्य नहीं घटते? मैजिस्ट्रेट और समाचार-पत्रों की समझ में नहीं आता कि इतने छोटे अपमान से ऐसा भयंकर रोष क्यों भभक उठा? वेदान्त इसे समझाता है। वेदान्त कहता है कि मानसिक सतह पर एक साझे की कंपनी (Joint Stock Company) है। आप जानते हैं कि ज्वाइंट स्टॉक कंपनियों में बहुत से हिस्सेदार होते हैं और एक मनुष्य उसका व्यवस्थापक होता है। इस तरह जब मूल अपराधी ने तुम्हारी भावनाओं को उत्तेजित किया था, तब तुमने उसके विरुद्ध वैर और विद्वेष के विचारों को बहाया था, और उस प्रवाह में तुमने अपना भाग, अपराधी मनुष्य के विरुद्ध रोष का अपना हिस्सा प्रदान किया था। जब दूसरा मनुष्य अपमानित हुआ था, तब उसने भी अपना हिस्सा दिया, और जब तीसरे व्यक्ति का अनादर हुआ, तब उसने भी अपना हिस्सा दिया। ऐसे ही चौथे, पाँचवें या छठे व्यक्ति भी उसमें अपना-अपना भाग देते रहे। इस तरह पर वह समय भी आ पहुँचा, जब व्यापार शुरू करने के लिए जो कुछ आवश्यक था, उस सबकी पूर्ति हो गई। तुम जानते हो कि व्यापार आरंभ नहीं हो सकता, जब तक कुछ हिस्सों का रुपया अदा न कर दिया जाय। जब हिस्सों की यथेष्ट संख्या की रक़म आ गई, तब एक अधिकारी, प्रबल मनुष्य प्रकट हो गया; और जब इस प्रबल मनुष्य का अपमान हुआ, तब धार्मिक बन्धुता के नियम से पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और अन्य बीसियों क्या, सैकड़ों मनुष्यों के भेजे हुए रोष, ये सब-के-सब रोष इस कर्ता के पास तुरन्त खिंच आये, इसके शरीर में आकर्षित हुए, प्रवाहित हुए और बटुर गये। बस, इसने सांघातिक चोट पहुँचाई और मूल अपराधी को गोली से मारा तथा स्वयं राज्य का अपराधी बना। सरकार या राज्य केवल इस अपराधी को दण्ड देगी; किन्तु ईश्वर के नेत्रों में या परमेश्वर अथवा सत्य की दृष्टि

में तुम सब-के-सब हिस्सेदार हो, तुम सब घातक हो। तुम भी हत्यारे हो। शत्रुता या विद्वेष के विचारों को भेजनेवाले तुम सब भी उतने ही दोषी हो, जितना दोषी वह मनुष्य है जिसने हत्या की। इसी प्रकार मसीह कहता है कि केवल हत्या के परहेज़ से काम न चलेगा; किन्तु तुम्हें विद्वेष के विचारों को भेजने से भी बाज़ रहना पड़ेगा। जो अपने साथी से घृणा करता है, वह ठीक उतना ही अधिक हत्यारा है, जितना कि वह मनुष्य जो वस्तुतः ख़ून करता है। क्यों? जैसाकि यहाँ स्पष्ट किया गया है कि जो लोग हत्या करते हैं, वे प्रायः क्यों अपमान के हिसाब से बहुत अधिक बिगड़ जाते है। अपमान बहुत ही छोटा होता है, किन्तु रोष और उत्तेजना विकट होती है। इसमें तुम देखते हो कि केवल व्यक्तिगत क्रोध ही नहीं भड़क उठता, तुम्हारे भाइयों का कोप भी तुम्हारे पास आता है और तुम्हें दबा लेता है जिससे तुम पागल हो जाते हो। तुम्हें तुम्हारे उन साथियों का कोप क़ाबू में कर लेता है, जिनका अपराधी ने पहले से अपमान किया था। जैसे किसी मनुष्य पर आसेब का साया हो या जैसे किसी पर भूत चढ़ा हो, वैसे ही तुम्हारे साथियों का रोप तुम पर चढ़ जाता है और जब तुम इसके वश में होते हो, तुम अपने जामे से बाहर और उन्मत्त हो जाते हो, और उस दशा में तुम प्राणघातक आघात करते हो। लोग आश्चर्य करने लगते हैं कि अपमान के हिसाब से इतना अधिक कोप क्यों भड़क उठा था। इस तरह तुम्हारे हत्यारे उत्पन्न होते है। दुनिया का इतिहास पढ़ो और तुम्हें पता लगेगा कि आतंक के राज्य के बाद सब लोगों ने एक ऐसे मनुष्य की इच्छा की, जो बड़ी क्रूरता से काम चला सके, जो उच्छृङ्खल जन-समूह को क़ाबू में रख सके। हर एक ने उच्छृङ्खल जन-समूह को क़ाबू में करना चाहा, किन्तु उनमें, किसी में यह शक्ति नहीं थी। अब हर एक और सबमें यही इच्छा थी कि ऐसा पुरुष मिले, जो विद्रोही लोगों का नियंत्रण करे और इस इच्छा ने नेपोलियन के शरीर में

आकार धारण किया। नेपोलियन ठीक उसी समय आता है, जब समय को उसकी आवश्यकता होती है और उसमें हज़ारों की, वरन् लाखों की शक्ति है। नायकों वा शूरवीरों में लाखों की शक्ति क्यों होत है? एक पूरी सेना नेपोलियन को पकड़ने आई और वह अकेला सीधा उनके पास जाकर कहता है—"ठहरो (Avaunt)" और वे रुक गये। यह एक मनुष्य उन हज़ारों मनुष्यों को, जो उसे गिरफ्तार करने आये थे, डपट के चुप कर देता है। ऐसे तथ्य सुनकर लोग चकित हो जाते हैं। वेदान्त इसे समझाता है। वेदान्त कहता है कि वास्तव में हज़ारों की शक्ति और विचार एक मनुष्य में जमा हो गए हैं, सचमुच हज़ारों के विचार उस मनुष्य में एकत्र हैं। इस प्रकार नेपोलियन को क्या किसी भी नायक को कोई अधिकार नहीं है कि आत्म-श्लाघा के विचारों को हृदय में स्थान दे। नायकवर, यदि तुममें लाखों की शक्ति है, तो तुम लाखों हो। तुम्हारे शरीर में लाखों के विचार काम कर रहे हैं। तुम्हारा विशिष्ट रूप से पाला-पोसा दैवी शरीर कहाँ है? ये लाखों हैं, जो तुममें काम कर रहे हैं। तुम फिर शैक्सपियर, एक महान् नाट्यकार, को देखते हो। इन दिनों किसी शैक्सपियर की जरूरत नहीं है। उन दिनों में लोगों को शैक्सपियर की आवश्यकता थी और शैक्सपियर आया। वे नाट्यशाला में जाने के दिन थे, उन दिनों सब लोगों को नाटक-मंच का उन्माद था। उन दिनों को नाट्यकारों की आवश्यकता थी, नाटकों की आकांक्षा थी। लोगों को उनकी चाह थी और लोगों ही के चित्त और विचार शैक्सपियर के रूप में प्रकट हुए थे। तुम या शैक्सपियर अथवा दूसरा कोई महापुरुष अकेला नहीं प्रकट होता। शैक्सपियर के साथ-साथ हम उज्ज्वल पुरुषों, मेधावियों, तान्त्रिकों—जैसे मारलो, बिउमोंट, फ़्लेचर, और कौन-कौन नहीं हैं—की एक पूरी निर्मल धारा पाते हैं, और उसी प्रकार के साहित्य का पूर्ण राज्य हम अपने सामने देखते हैं। इन मामलों की परिस्थितियाँ, लोगों के हृदय, विचारों को

प्रेरित करते हैं, उस ओर विचार भेजते हैं, और ये सब विचार रासायनिक वन्धुता के नियम के अनुसार एक शरीर में एकत्रित हो जाते हैं, और तब तुम्हें शैक्सपियर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार तुम देखते हो कि तुम्हारा मधुर वाणीवाला शैक्सपियर और तुम्हारे वक्ता, जो बड़ी-बड़ी जमातों पर अपना आतंक जमा सकते हैं, एक मनुष्य जो हज़ारों को क़ाबू में रख सकता है, एक सेनानायक जिसका वचन हज़ारों-लाखों के लिए क़ानून हो जाता है, एक मनुष्य जो लाखों-करोड़ों मनुष्यों में पौरुष और कर्मण्यता फूँक देता है—ये सब कैसे पैदा हो सकते, यदि लाखों मनुष्यों के विचार विभिन्न शरीरों में न जमा हुए होते? अब तुम देखते हो कि शैक्सपियर और नेपोलियन तुम्हारी अपनी ही सृष्टि हैं। तुम्हारे मनोवेग और तुम्हारे विचार उनके मनोविकार और उनके विचार हो जाते हैं। ये ऐतिहासिक तथ्य हैं, और हम नित्य भी इन्हें अपने चारों ओर देखते हैं। इस तरह मनोवृत्ति के लोक में भी तुम सब एक हो।

जेरूसलेम पर अधिकार जमाने के लिए ईसाइयों के धर्म-युद्धों (Crusades) का क्या कारण हुआ? एक मनुष्य को जेरूसलेम की दशा पर बहुत वेदना हुई। वह युरोप लौटा और उसने युरोपवासियों में जेरूसलेम की दुर्गति के सम्बन्ध में प्रचार किया। उसने प्रचार किया, रोदन और विलाप किया। एक मनुष्य को यह वेदना हुई, और लोगों की वही भावनाएँ हो गईं। एक की भावनाएँ दूसरों की भावनाएँ हो गईं। उन सबने तुर्कों और मुसलमानों के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र उठाये। इस तरह ईसाई धर्म-युद्ध हुए। तुम्हारा स्वाधीनता का युद्ध कैसे हुआ? उसी तरह। एक मनुष्य अर्थात् अमेरिका की पहली कांग्रेस के प्रेसिडेंट ने, जब लोग उससे सहमत नहीं हुए, तलवार खींची। उसने म्यान से अपनी तलवार निकाली और कहा—"मैं अकेला युद्ध, युद्ध, युद्ध के पक्ष में हूँ।" फिर तो सब लोगों को उसकी

बात ग्रहण करना पड़ी। कांग्रेस के उन्हीं लोगों को, जो युद्ध के विरुद्ध थे, और उसके विरुद्ध थे, उसका अनुसरण करना पड़ा। इस प्रकार तुम देखते हो, यदि तुम्हारे हृदय और चित्त एक न हो, तो ऐसी विलक्षण करतूतों के अधिकारी वे लोग कैसे बन सकते? हम एक हैं। इस एकता को भान करो।

अब हम दूसरे लोक में आते हैं। तुम देखते हो कि अपनी गाढ़ निद्रा (सुपुप्ति) की अवस्था में तुम सब एक हो। निद्रा सबको बराबर कर देनेवाली महान् वस्तु है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में कोई भेद नहीं जान पड़ता, चाहे राजा हो या रंक, चाहे मख़मल के गद्दों पर, जिन पर सुन्दर चादरें बिछी होती हैं, सोनेवाला बादशाह हो, चाहे गलियों पर पड़ रहनेवाला ग़रीब भिखमंगा, निद्रा की दशा में एक ही हालत में हो जाते हैं। निद्रा की अवस्था में उन दोनों का विचार करो। क्या भेद है? दोनों एक और वही हैं। तुम अपनी सुपुप्ति-अवस्था में एक हो। तुम्हारी जाग्रत्-अवस्था में तुम्हारे शरीर सब एक हैं और तुम्हारा मन और भावनाएँ, जो इस स्वप्न-भूमि में रहते हैं, सब एक हैं। अब हम वास्तविक आत्मा या असली तत्त्व पर विचार करते हैं। अरे, यहाँ तो एक आत्मा, असली तत्त्व, सच्चा स्वरूप है! भाषा अथवा किसी भेद-वाक्य के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है, यहाँ तो 'लहर' या 'तरंग' शब्द का भी प्रयोग नहीं हो सकता, इसमें तुम सब एक हो। तुम कहोगे—नहीं, मेरा बेटा मेरा है, किन्तु यह व्यक्ति मेरा नहीं है। यदि तुम ऐसा सोचते हो, तो तुम्हारी ग़लती है। ऐसा नहीं है। जिनको तुम अपने से भिन्न कहते हो, वे उतने ही तुम्हारे अपने हैं, जितना कि तुम्हारा पुत्र अपना है। तुम्हारे पिछले जन्मों में कितनी बार तुम्हारा उनसे भाइयों, पुत्रों, बेटियों या पिताओं का संबंध हुआ होगा, क्या तुम यह जानते हो? वही पुरुष जो आज तुम्हारा शत्रु है, पिछले जन्म में शायद पिता या पुत्र रहा हो। इस जन्म में जो आदमी

तुम्हारा पिता है, वह तुम्हारे अगले जन्म में शायद तुम्हारा पिता न हो। अपने अगले जन्म में तुम भिन्न माता-पिता से उत्पन्न होगे। तुम्हारी भावनाएँ और सहानुभूतियाँ बराबर बदल रही हैं और उसी तरह तुम्हारे मित्र और नातेदार, बहनें और भाई भी निरन्तर बदल रहे हैं। क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य एक ही घर में कुछ लड़कों और लडकियों के साथ जन्म लेता है और अपनी सारी ज़िन्दगी उनसे अलग बिताता है, अपनी ज़िन्दगी में उन्हें फिर कभी नहीं देखता ? और क्या ऐसा नहीं होता कि एक मनुष्य इस देश में जन्म लेता है और सम्पूर्ण जीवन दूसरे देशों में बिताता है ? कारण यह है कि जो लोग दूसरे देशों में पैदा हुए थे, वे उसके आध्यात्मिक संबंधी होते हैं। इस प्रकार तुम देखते हो, तुम्हें अपना भाईचारा केवल उन्हीं तक न परिमित करना चाहिए, जिन्हें तुम अपनी बहनें और भाई, स्त्रियाँ या पति कहते हो। सब, सब, प्रत्येक और सकल तुम्हारे अपने स्वरूप हैं। इसे अनुभव करो। पदार्थ-विद्या इसे सिद्ध करती है।

अब राम उपसंहार करने लगा है। पदार्थ-विद्या स्पष्ट करती है कि जिस प्रकार यह देह विशेष, जिसे तुम अपना आप कहते हो, एक है; पैर के अँगूठे एड़ी से जुड़े हुए हैं, और वह शरीर के दूसरे अंगों से मिली हुई है, और तुम्हारे शरीर के सब अंगों में अनुवर्तन का नियम (Law of continuity) प्रचलित है और तुम्हारा शरीर एक है, अखंड है, सम्पूर्ण है, और इस आधार पर तुम देखते हो कि वह केवल एक शक्ति है, एक आत्मा है, जो चोटी से एड़ी तक परिपूर्ण है। वही आत्मा पैरों और हाथों में व्याप्त है। तुम वैसे ही यह देखते हो अब पदार्थ-विद्या सिद्ध करती है कि इस विश्व के विभिन्न पदार्थों का एक-दूसरे से ऐसा सम्बन्ध है कि यदि अत्यन्त अविकसित जीवबीज (Undeveloped protoplasm) के पास हम उच्चतर रूप का जीवबीज रख दें और उसके बाद हम उससे भी उच्चतर प्रकार

जीव-बीज को रख दें, और इसी क्रम से रखते जायँ, और यदि इस विश्व में हम प्रत्येक वस्तु ठीक क्रम से सजा सकें, तो इस विश्व में हम हर एक पदार्थ में अनुवर्तन का संचार होता पायेंगे। इस अत्यन्त अभंग अनुवर्तन को हम सम्पूर्ण संसार को धारण किये पाते हैं। ऐसी दशा होने से, सम्पूर्ण विश्व एक अखंड शरीर हो जाता है। अब जिस प्रकार अपने सम्पूर्ण शरीर के मामले में तुम यह मानने को लाचार हो कि एक ही आत्मा कानों और पैरों मे तुल्य रूप से व्याप्त हो रही है, उसी प्रकार इस सम्पूर्ण विश्व में, जो एक अविच्छिन्न शरीर है, तुम्हें एक ही आत्मा को, जो सूक्ष्मतम अणु से लेकर उत्तम-से-उत्तम देवता तक में परिपूर्ण या ओतप्रोत है, मानना पडेगा। इस प्रकार परमोच्च देवता की भी आत्मा वही है, जो अत्यन्त तुच्छ कीट की आत्मा है। इस प्रकार आत्मा के स्थित-बिन्दु से तुम सब एक हो।

मनुष्य का भ्रातृत्व स्थापित करने के लिए युक्तियाँ और दलीलें तुम्हारे सामने किसी अंश तक रक्खी जा चुकीं, अब राम इस सत्य के अमली प्रयोग पर ज़ोर देगा। तुम बुद्धि से इसे चाहे न स्वीकार करो, किन्तु धार्मिक नियम तुम्हें यह सत्य मानने को विवश करेंगे। तुम्हें या तो अपने जीवन में इस पर अमल करना होगा या मरना होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह हाथ है। एक बार यह स्वार्थ परायण हो गया और इसने भाईचारे वा एकता के नियम को तोड़ना चाहा। वह इस तरह तर्क करने लगा—"यह मैं हूं, जो सारे दिन काम करता हूँ, किन्तु मेरे श्रम का सारा लाभ या तो पेट या शरीर के दूसरे अंग उठाते हैं, मैं कुछ नहीं खाता। मैं दोनों या मुख को सब लाभ न उठाने दूंगा, हर एक वस्तु मैं आप ही लूँगा।" यह दलील देने के बाद हाथ इसे अमल मे लाने को उद्यत हुआ। जो भोजन टेबिल पर परोसा गया—दूध, अन्न, मांस और सब प्रकार के सामान, फल, शाक इत्यादि—सभी पदार्थ अब हाथ को खुद ही खाना चाहिए,

हाथ को स्वयं अपना लाभ उठाना चाहिए। हाथ ने एक आलपीन निकाली अपनी एक छेद किया और उसमें ध उँडेल दिया। दूध को सुई के द्वारा भीतर पहुँचाया, ताकि मुँह लाभ न उठा सके। हाथ ने अपने आपको रोगी बना लिया, उससे उसका लाभ कुछ नहीं हुआ। एक और उपाय था। अपने को मोटा करने के लिए हाथ ने शहद लेना चाहा। यह मधु कहाँ से आता है? मधु-मक्खी से। इस लिए हाथ ने मधुमक्खी पकडी और उससे अपने को कटवा लिया। हाथ को बहुत-सा मधु मिल गया। वह ख़ूब मोटा हो गया। किन्तु ओह! इससे तो हाथ पीडित और व्यथित हो गया। जब हाथ को पीड़ा-पर-पीड़ा होने लगी, तब तो कुछ देर बाद उसके होश ठिकाने आ गये। हाथ ने कहा—"मैं जो कुछ उपार्जन करता हूँ, वह सब केवल मुझे न मिलाना चाहिए। मैं जो कुछ कमाता हूँ, वह सब पेट में जाना चाहिए और वहाँ रुधिर के द्वारा, हाथों और पैरों के द्वारा, शरीर के प्रत्येक अंग द्वारा उसका व्यवहार होना चाहिए, और तभी, केवल तभी, मैं अपना लाभ पा सकता हूँ।" दूसरा कोई उपाय नहीं है। तभी हाथ का हित हो सकता है। अब हाथ यह मानने को लाचार हुआ कि हाथ की आत्मा इस छोटे-से क्षेत्र में क़ैद नहीं थी। हाथ की आत्मा का उपकार तब होगा, जब समग्र शरीर की आत्मा का लाभ होगा, जब नेत्रों की आत्मा का कल्याण होगा। हाथ की आत्मा वही है, जो नेत्रों की आत्मा है, कानों की आत्मा तथा संपूर्ण शरीर की आत्मा है। अतएव हाथ ने जिस तरह चेष्टा की थी, उसी तरह स्वार्थपरायण होने की चेष्टा करने से तुम्हें दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे, तुम्हें उसी तरह पीड़ित होना पडेगा, जिस तरह अपनी स्वार्थपरता को कार्य में परिणत करने की चेष्टा करने से बेचारे हाथ को भोगने पड़े थे। दैवी क़ानून तुम्हें अपने आप को अपनी श्रेणी से पृथक् होने की अनुमति नहीं दे सकता। जब तुम अपने आपको अपने संगी-साथी लोगों से भिन्न समझते हो, तब

अत्यन्त पवित्र सत्य-नियम भंग करते हो। जो व्यापारी अपने ग्राहकों के स्वार्थ को अपना ही नहीं समझते, या जो दुकानदार अपने ग्राहकों के स्वार्थों को अपने स्वार्थों से अभिन्न नहीं समझते, उनसे लोग भागते और जी चुराते हैं, और वे अपने आप बरबाद हो जाते हैं। तुम्हें अपने जीवन में इसे अनुभव करना होगा, तभी और केवल तभी तुम फूलो-फलोगे। ऐ हाथ, तेरी आत्मा समग्र विश्व की आत्मा है, तेरी आत्मा आँखों और पैरों और दाँतों तथा शरीर के प्रत्येक दूसरे भाग की आत्मा है, यह भान करो, यह अनुभव करो। यदि तुम अपने आपको कम्बख़्ती से परे रखना चाहते हो और अपने को सुखी करना चाहते हो, तो हर एक और सबके इस इकाई को अनुभव करो। तुम्हारा आचरण प्रकट करेगा, तुम्हारा अपना अनुभव सिद्ध करेगा कि कि जब तुम इस एकता को भान और अनुभव करते हो, जब तुम इस सत्य पर अपने चित्त को एकाग्र करते हो, तब तुम्हारे आस-पास का सब कोई तुम्हारी सहायता के लिए आने को उसी तरह बाध्य है, जिस तरह हाथ उस अंग की सहायता को आता है, जिस में खुजली या पीड़ा होती है। जहाँ तुम्हें खुजली जान पड़ती है, हाथ तुरन्त वहाँ पहुँच जाता है। इसी तरह यदि तुम अनुभव करो कि तुम्हारा अपना आप, आत्मा या तुम्हारी सच्ची प्रकृति वही है, जो तुम्हारे साथियों की है, जिनका संबंध तुमसे आवश्यकता समय वैसा ही होता है, जैसे तुम्हारे सच्चे अपने आपका, तो तुम्हारे साथी तुरन्त ही आवेंगे और तुम्हारी सहायता करेंगे। यह मामला अनुभव का है, अमल का है और परीक्षा से प्रमाणित हुआ तथ्य है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ज्ञान-रश्मि

१

कोई मनुष्य उस समय तक सर्वरूप परमात्मा के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे।

२

यह अनुभव करके कि सारा भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, प्रत्येक भारत-सपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

३

व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को किसी प्रकार राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिए, इनके यथोचित सामंजस्य से ही सुख मिल सकता है।

४

राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

५

ईश्वरानुभव के लिए आवश्यकता होती है संन्यास भाव की अर्थात् स्वार्थ को नितान्त त्याग इस परिच्छिन्नात्मा को भारत-माता की महान् आत्मा से बिल्कुल अभिन्न कर दिया जाय।

[स्वामी राम के ऐसे ही चमकते हुए वाक्य 'राम-हृदय' में पढ़िए।]

स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ—भाग ६

ॐ

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

छठा भाग

(संशोधित संस्करण)

वेदान्त-शिखर से

प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान
(श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)
२५ रामतीर्थनगर, लखनऊ

द्वितीयावृत्ति] १९४८ [मूल्य १॥)

निवेदन

अपने राम-प्रेमी पाठकों से हमें यह कहते हुए कुछ दुःख और कुछ लज्जा का अनुभव होता है कि हिन्दी में प्रथम स्वामी राम के जो ग्रन्थ रामतीर्थ-ग्रन्थावली के २८ भागों के नाम से प्रकाशित हुए थे उनका द्वितीय संस्करण अभी तक पूर्ण नहीं हुआ है। इधर असाधारण परिस्थितियों के कारण हमारे प्रकाशन का कार्य बिलकुल रुका रहा। अब राम की कृपा से हम स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश भाग ६ को प्रेमी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। लेख व उपदेश का चौथा भाग सन् १९३९ में प्रकाशित हुआ था। इस बीच हम और कोई भाग तैयार न करा सके। अब हमें स्वामी राम के समग्र ग्रन्थों (८ भागों) में से केवल पांचवां और आठवां भाग और प्रकाशित करना है, जिससे यह द्वितीयावृत्ति पूर्ण हो जायगी। और फिर हम इन ग्रन्थों की तृतीयावृत्ति प्रारम्भ करेंगे। इस बार भाषा और छपाई-सफाई सभी दृष्टियों से संस्करण को उत्तम से उत्तम बनाने का विचार है। राम की कृपा हुई और हमारे उदार राम-प्रेमी सज्जन इसी प्रकार सहयोग करते रहे तो हमें विश्वास है कि हम शीघ्र ही अपने उद्देश में कृतकार्य होंगे।

मंत्री, रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

छठा भाग

वेदान्त-शिखर से

संसार पर

एक विहंगम दृष्टि

स्वामी रामतीर्थ

दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तुसत्तावाद का समन्वय

१३ जनवरी १९०३ को गोल्डन गेट हाल अमेरीका में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में एकमात्र वास्तविक और आदर्श आत्मन्!

आज के व्याख्यान का विषय बड़ा ही दुरूह, बहुत ही कठिन है। केवल वही इसे भली भाँति समझ सकेंगे। जो पहले से दर्शन शास्त्र से थोड़े-बहुत परिचित हैं। आप सबके सब थककर और खिन्न होकर चले जायँ, अथवा सारा संसार सुनने आवे, इस बात से राम को कोई प्रयोजन नहीं। सत्य तो लोक-प्रियता की सम्पूर्ण अभिलाषाओं से ऊपर रहता है। वैज्ञानिक नियम संसार पर शासन करते थे, आज भी कर रहे हैं, और आगे भी विश्व का नियंत्रण करते रहेंगे, लोग चाहे उन्हें जानें या न जानें, वे लोक-प्रिय हों या न हों। सर आईजक नियूटन द्वारा आविष्कृत होने से पहले भी

गुरुत्वाकर्षण का नियम इसी तरह काम करता था। ऐसे भी वैज्ञानिक नियम हो सकते हैं जिनका पता लोगों को अभी न लगा हो, परन्तु फिर भी वे दुनिया का नियंत्रण करते हैं। खान में पड़ा हुआ एक अति उत्तम हीरा चाहे किसी के हाथ न आया हो, परन्तु हीरे की दमक कहीं चली नहीं जाती। लोग उसे उठाकर अपने मस्तक पर धारण करें अथवा पूर्णतः उसकी उपेक्षा करें, हीरे का इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

विषय कठिन है; किन्तु यदि आप एकाग्र होकर बारीकी से उसे सुनेंगे तो समझ भी सकेंगे। ऐसा न सोचिये कि ऐसे दुरूह, दार्शनिक, और विचारात्मक विषयों पर बोलना व्यर्थ है, हमें इनकी ज़रूरत नहीं, हमें तो ठोस नगदी चाहिए, हमें तो कुछ व्यावहारिक विषय चाहिए। राम पहले व्यावहारिक विषयों पर भाषण करता रहा है, किन्तु विचारात्मक और सैद्धान्तिक विषयों की भी जरूरत होती है। कोई भी तथ्य, कोई बात ठीक ढंग से समझने के लिए उसका रहस्य बतलाने वाला एक यथार्थ मन्तव्य होना ही चाहिए। किसी बात, किसी क्रिया में अभ्यस्त हो जाना तो, आप जानते ही हैं, अपनी शक्ति को केवल कार्य रूप में परिणत भर कर देना है, उससे अधिक कुछ नहीं, इतने से उस क्रिया का भेद नहीं समझा जा सकता। जब आपको कुछ लिखना होता है, तब आपकी लेखनी चलने से पूर्व सम्पूर्ण विषय कल्पना रूप से आपके मन में अवश्य आ जाना चाहिए। कल्पना सदा कर्मशीलता से पहले चलती है। जब कभी आपको किसी जगह जाना होता है, तो चलना केवल आपके अभ्यास की बात होती है, किन्तु आपके मन

में अपनी नसों और हरकतों का नियंत्रण करने का कोई संकल्प न हो तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। कोई विद्यार्थी महाविद्यालय में तब तक नहीं जाता, जब तक विश्वविद्यालय का विचार पहले ही से उसके मन में नहीं हो, जब तक यह ज्ञान उसे नहीं हो कि किस प्रकार की शिक्षा उसे वहाँ मिलनी है। कोई चोर जब बराबर किसी पड़ोसी विशेष की धनसम्पत्ति की चर्चा सुनता रहता है, तब यह निरन्तर मिलने वाली सूचना, हृदय में बसनेवाला विचार, कार्य रूप में परिणत होने लगता है और चोर उस अमीर पड़ोसी के घर में सेंध लगाने की हिम्मत करता है। तात्पर्य यह कि किसी प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति के बिना, अपने इच्छित काम के संबंध में पहले ही से किसी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किये बिना, कोई काम नहीं किया जा सकता।

इसीलिए राम श्रोताओं के कानों में आत्मा के महत्व का ढोल पीटता है, निरन्तर हृदयों में इस तथ्य को उतारने का यत्न करता है जिससे यह बात दिन प्रतिदिन आपके हृदयों में घर करने लगे। आपके मनों में हर घंटे बैठने लगे, तब आप देखेंगे कि मनोविज्ञान के नियमों के अनुसार, यह मानसिक क्रिया-कलाप जो व्यर्थ की कल्पना-जल्पना जान पड़ती है, अत्यन्त श्रेष्ठ क्रियाशीलता में बदल जाती है। आप देखेंगे कि आपका यह ज्ञान परमानन्द और परम कल्याण के रूप में रूपान्तरित हो रहा है।

आज का विषय है "वेदान्त की दृष्टि में दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तुसत्तावाद का समन्वय कैसे होता है"। दूसरे शब्दों में विषय है कि वेदान्त के मत में हमें संवेदन ज्ञान कैसे होता है? यह विषय तत्वज्ञानियों के लिए बड़े मार्के का है।

पहले आपको थोड़े में यह बताया जायगा कि दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-सत्तावाद हैं क्या। इन विषयों के विस्तार में जाने का हमें अवकाश नहीं है। किन्तु संक्षेप में वस्तुसत्तावाद उस विश्वास या मन्तव्य को कहते हैं जो इस संसार को वैसा ही ठीक उसी रूप में स्वीकार करता है जैसा यह दिखाई पड़ता है और दृष्टि-सृष्टिवाद में संसार वैसा नहीं माना जाता जैसा हमें जान पड़ता है; संसार है तो परन्तु जैसा प्रतीत होता है वैसा नहीं। वस्तु सत्तावाद के अनुसार चीजें ठीक वैसी ही होती हैं जैसी हमें जान पड़ती हैं, वे वास्तव में सच्ची होती हैं। दृष्टि-सृष्टिवाद की कई शाखायें हैं। एक तो आत्मगत-कल्पनावाद (Subjective Idealism) जिसके समर्थक बर्कले (Berkeley) और फिश्टे (Fichte) हैं। दूसरा विषयाश्रित कल्पना-वाद (Objective Idealism) जिसके समर्थक अफलातूँ (Plato) और कैंट (Kant) हैं; तीसरा शुद्ध केवल कल्पनावाद जिसका समर्थन हेगल (Hegel) और शेली (Shelley) आदि उसी श्रेणी के दार्शनिकों ने किया है। वस्तुसत्तावाद के समर्थक बेन (Bain) और मिल (will) आदि अनेक दार्शनिक हैं। दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तु-सत्तावाद की इन विभिन्न शाखाओं की व्याख्या हम यहाँ नहीं करेंगे। आज के व्याख्यान में हम बर्कले (Berkeley) के आत्मगत-कल्पनावाद, या अफलातून (Plato) और कैंट (Kant) के विषयाश्रित कल्पनावाद, या हेगल (Hegel) अथवा शेली (Shelley) के शुद्ध कल्पनावाद की आलोचना नहीं करेंगे। हम उनकी चर्चा केवल वहीं तक करेंगे जहाँ तक इस सम्बन्ध में हमारे वेदान्त का दृष्टिकोण आसानी से हरेक की समझ

में आने में सहायता मिल सकती है।

विषय आरम्भ करने से पहले दो शब्दों आधार और आधेय, ज्ञाता और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य 'आधार' (ज्ञाता) और 'आधेय' (विषय) की व्याख्या आवश्यक है। आपको जानना चाहिए कि इन दोनों शब्दों के कई अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। [व्याकरण में ये एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।] साधारण बोलचाल में इनका दूसरा अर्थ लिया जाता है। और दार्शनिक भाषा में इनका अपना एक विशेष अर्थ है। तत्वज्ञान की भाषा में 'आधार' का अर्थ है ज्ञाता, और 'आधेय' का अर्थ है ज्ञेय पदार्थ। आप यह पेंसिल देखते हैं, यहाँ पेंसिल तो ज्ञेय पदार्थ है और आप पेंसिल के देखनेवाले ज्ञाता हैं। देखनेवाला ज्ञाता कहलाता है और जो वस्तु देखी जाती है वह ज्ञेय कहलाती है। साधारण बोलचाल में 'ज्ञाता' शब्द का अर्थ मस्तिष्क या बुद्धि है; किन्तु वेदान्त के अनुसार बोलचाल बुद्धि या मस्तिष्क ज्ञाता नहीं कहलाता, वेदान्त के अनुसार बुद्धि भी विषय अथवा ज्ञेय है। आप जानते हैं कि जो वस्तु जानी जा सकती है वह विषय अथवा ज्ञेय होती है। आप बुद्धि को जान सकते हैं, आप उसके सम्बन्ध में विचार और तर्क कर सकते हैं, उसके नियमों का निर्धारण कर सकते हैं। जिस अंश तक आप बुद्धि के विषय में तर्क कर सकते हैं, उसकी धारणा कर सकते हैं उस अंश तक अवश्य ही बुद्धि या मस्तिष्क 'विषय' अथवा 'ज्ञेय' है, 'ज्ञाता' नहीं। वास्तविक ज्ञाता पर विचार और तर्क नहीं हो सकता, वास्तविक ज्ञाता देखा नहीं जा सकता, वह विषय नहीं बनाया जा सकता। भला जाननेवाला कैसे जाना जा

सकता है, उसे कौन जाने? देखिये वास्तविक ज्ञाता या जो जाननेवाला हो सकता है, या बनी हुई वस्तुओं का ज्ञाता, जानी हुई वस्तु हो जाय, तो वह ज्ञेय या दृश्य बन जायगा ज्ञाता नहीं रह सकता। यद्यपि साधारण बोलचाल में 'आधार या ज्ञाता' शब्द से मन, बुद्धि, या मस्तिष्क का बोध होता है, तथापि वेदान्त के अनुसार वास्तविक आधार या वास्तविक ज्ञाता केवल, एक अनन्त आत्मा है, जो सब देहों में एक रूप; एक ही है। इस सम्बन्ध में एक संस्कृत शब्द को याद रखना उपयोगी होगा। 'आधार' को संस्कृत में द्रष्टा कहते हैं, और 'आधेय' संस्कृत में दृश्य कहलाता है। और संस्कृत में वास्तविक द्रष्टा है ब्रह्म या आत्मा। अंग्रेजी में 'आत्मा' शब्द का पर्यायवाची या तो शोपनहावर (Schopenhauer) का "विल" (Will संकल्प) हो सकता है; या हेगेल (Hegel) का 'हार्ड इंटेलेक्ट' (Hard Intellect, ठोस बुद्धि) अथवा ऐबसोल्यूट इंटेलेक्ट (Abso'uto Intellcet = शुद्ध बुद्धि)। आप जानते होंगे कि हेगेल और शोपनहावर का आपस में घोर विरोध है, वे एक दूसरे को फूटी आँख नहीं देख सकते। किन्तु वेदान्त उन दोनों को मिला देता है। वेदान्त उन्हें बताता है कि शोपनहावर जिसे विल या संकल्प कहते हैं, वही वास्तव में हेगेल की "शुद्ध बुद्धि" है। वेदान्त में इस शुद्ध बुद्धि या शुद्ध आत्मा के लिए एक शब्द ब्रह्म है जिसका अर्थ है शुद्ध संकल्प, शुद्ध चित्, शुद्ध सत् और शुद्ध आनन्द अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द।

सो वास्तविक द्रष्टा तो शुद्ध आत्मा है। और व्यावहारिक द्रष्टा बुद्धि या अन्तःकरण में प्रकाशित होती हुई

आत्मा है। इस प्रकार वास्तविक आत्मा बुद्धि उपकरण के संयोग से द्रष्टा कहलाती है।

वस्तुसत्तावादी अपने पक्ष के समर्थन में क्या तर्क देते हैं, और दृष्टि-सृष्टिवादी अपने पक्ष के समर्थन में किन मुख्य मुख्य युक्तियों का उपयोग करते हैं? यह एक लम्बा विषय है; हम बहुत ही संक्षेप में इस पर विचार करेंगे। 'बर्कले' का खण्डन करने के लिए हमारे पास समय नहीं है। वह एक प्रमुख कल्पना या दृष्टिसृष्टि-वादी है। बड़ी उमंग के साथ वह अपने तत्वज्ञान का प्रारम्भ करता है, और जब तक वेदांत दर्शन के पथ पर चलता रहता है, तब तक कल्पना की ऊँची-ऊँची उड़ानें भरता है, किन्तु वेदान्त दर्शन की दिशा छोड़ते ही वह रास्ता भूल कर एक चक्करदार भँवर में फँस जाता है। यह बड़ा ही रोचक विषय है। एक ऐसा विषय है कि यदि राम को कभी विश्वविद्यालय के अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने भाषण करने का अवसर मिले तो वह इस पर अवश्य विचार करेगा। बर्कले के तत्वज्ञान के उत्तरांश और पूर्वांश में घोर विरोध है। कैसे वह अनेक आत्माओं को मानने के लिए बाध्य हुआ। उसे कैसे इस विश्व के नियंत्रण के लिए साकार या सगुण ईश्वर के मानने की आवश्यकता हुई है। और कैसे उसके तत्वज्ञान के अनुसार संसार में किसी भी वस्तु का अस्तित्व तब तक नहीं माना जा सकता, जब तक कोई आत्मा उसके निकट देखने के लिए न हो। और न जाने कितनी ही बेतुकी बातें उसे अपने दर्शन में घुसेड़नी पड़ी है। किन्तु, यह ऐसा विषय है जिसे आज हम नहीं उठाना चाहते हैं। दृष्टि-सृष्टिवादी या कल्पनावादी जो अनेक तर्क पेश करते हैं, उनमें ये दो या

तीन ही महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहला यह कि अपनी निजी क्रिया-शीलता के बिना आप न किसी वस्तु को देख सकते हैं और न उसका भान ही कर सकते हैं, केवल द्रष्टा की क्रिया-शीलता ही आपको इस दुनिया में किसी वस्तु का बोध करने या किसी पदार्थ को इन्द्रियगम्य कराने में समर्थ होता है। आप कुछ लिख रहे हैं, आपका ध्यान उस कलम पर जमा हुआ है, वहीं आपके सामने से एक साँप निकल जाता है, किन्तु आप उसे नहीं देखते, आपके लिए साँप साँप नहीं रहता, आपकी दृष्टि में साँप कभी होता ही नहीं। नहीं है, बस, कल्पनावादी कहते हैं कि यदि आपकी क्रिया-शीलता, आपके मन की अथवा द्रष्टा की क्रिया-शीलता न होती तो कहीं कोई वस्तु न होती। जब आप सोते हैं, तब द्रष्टा क्रियाशील नहीं होता इसलिए आसपास की आवाजें भी सुनाई नहीं पड़तीं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी आंखें सोते समय बन्द नहीं होतीं। उनके नेत्रों के सामने सभी वस्तुएँ मौजूद रहती हैं; उनके नेत्रों के अन्तर्पट (retina) पर वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है, किन्तु वे उन पदार्थों को नहीं देखते। कल्पनावादियों का कहना है कि यदि आपका मन निष्क्रिय है, द्रष्टा अपनी क्रियाशीलता प्रकट नहीं करता तो तुम्हें वस्तुएँ नहीं दिखाई पड़तीं। क्या मन के व्यापार के बिना आप इस दुनिया की कोई वस्तु देख सकते हैं? नहीं। अच्छा, जरा अपने मन के क्रियाशील किये बिना यह मेज़ अथवा वह दीवार देखने की चेष्टा कीजिये, राम के शब्द सुनने का यत्न कीजिये, किसी भी वस्तु के बोध का यत्न कीजिये। क्या ऐसा आप कर सकते हैं? क्या बिना सोचे, बिना मानसिक संकल्प के आप कोई वस्तु देख सकते

है? आप नहीं देख सकते। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं कि यह सारी दुनिया विचार के सिवा और कुछ भी नहीं है, यह सम्पूर्ण संसार केवल विचार का विस्तार मात्र है। आप कैसे जानते हैं कि संसार का अस्तित्व है? अपनी इन्द्रियों के द्वारा। किन्तु इन्द्रियाँ स्वयं किसी पदार्थ का बोध नहीं कर सकतीं। जब उनका मन से संयोग होता है तभी उन्हें बोध होता है, दूसरे शब्दों में इन्द्रियाँ नहीं देखतीं वरन् इन्द्रियों के द्वारा मन देखता है। अब आपको याद होगा कि मन या बुद्धि ही द्रष्टा है और मानसिक व्यापार के बिना आप कुछ नहीं सुन सकते, आप कुछ नहीं देख सकते, आप कुछ नहीं कर सकते। मानसिक क्रियाशीलता के बिना आप किसी वस्तु को इन्द्रियगम्य नहीं कर सकते। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं, "ऐ दुनिया के लोगो! तुम जो इस दुनिया को सत्य कहते हो और दुनिया की इन वस्तुओं को स्वतन्त्र रूप से सत्य मानते हो, और अपने आपको क्यों भूलते हो ऐसी भूल न करो। इन सब वस्तुओं की सृष्टि तुम्हारे द्वारा होती है, या वे तुम्हारे विचार द्वारा बनती हैं वास्तव में तुम इनके बनानेवाले हो।" यही कल्पनावादियों का कथन है और ऐसा दिखाई पड़ता है कि कल्पनावादी कुछ-कुछ वेदान्तियों से मिलते जुलते हैं। परन्तु राम आपसे कहता है कि इन सब कल्पनावादियों (बर्कले, अफलातून, हेगेल, कांट, फिक्टे, शेली, शोपनहावर) की विचारधारा में वेदान्त के कुछ सिद्धान्त हैं। किन्तु संवेदन की कल्पना (हमें पदार्थों का बोध किस प्रकार होता है) के सम्बन्ध में वेदान्त का मत इन सबसे कहीं आगे है। इन लोगों में आपस में एक दूसरे से झगड़ा है, उनमें परस्पर तू तू मैं मैं और विरोध है, किंतु

वेदान्त दर्शन इन सबकी संगति अथवा समन्वय कर देता है। ये लोग द्रष्टा रूपी बुद्धि को बड़ा महत्व देते हैं, उसे आवश्यकता से अधिक गौरावान्वित करके सबका मूल बताते हैं। किन्तु वेदान्त इस द्रष्टा रूपी बुद्धि को सर्वश्रेष्ठ सर्वेसर्वा नहीं मानता, जैसा कि इनमें से अधिकांश दार्शनिक करते हैं हमें तो सत्य को केवल सत्य होने के कारण ग्रहण करना है।

कल्पनावादियों का दूसरा तर्क यह है कि यह दुनिया, जिसे लोग साधारणतः वास्तविक या सच्चा मानते हैं, वास्तविक या सच्ची न समझी जानी चाहिए, क्योंकि दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी केवल इन्द्रियों द्वारा ही तो प्रकट होती है, और संसार को, जैसा कुछ हमें जान पड़ता है, वास्तव में सत्य हम इन्द्रियों के आधार पर ही कहते हैं। किन्तु इन्द्रियाँ विश्वसनीय गवाह नहीं हैं। उनकी साक्षी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए आँख का मामला ले लीजिये। चींटी की आँखें मनुष्य की आँखों से भिन्न देखती हैं। हाथी की आँखों को मनुष्य की आँखों की अपेक्षा वस्तुयें बहुत बड़ी दिखाई देती हैं। मेंढक की आँखों को पानी में चीज़ें स्पष्ट दिखाई देती हैं, परन्तु बाहर हवा की चीजें धुँधली, एक प्रकार के धुन्ध से ढकी जान पड़ती हैं। अब किसकी आँखों पर विश्वास किया जाय? मनुष्य की आँखों पर या चींटी की आँखों पर? यदि बहुमत से निर्णय किया जाय, तो चींटियों की संख्या कम नहीं है। बहुमत उनकी ओर है। यदि आपके नेत्र सूक्ष्मदर्शक यंत्र के सिद्धान्त (microscopic principle) पर बना दिये जायँ, यदि आँख की पुतली आँख के अन्तर्पट पर

एक दूसरे ढंग से लगा दी जाय तो दुनिया आपके लिए बिलकुल भिन्न हो जायगी। यदि नेत्र का अन्तर्पट दूरदर्शक यंत्र के सिद्धान्त पर लगा दिया जाय, तो सारी दुनिया का नकशा ही बदल जाय। आपने एक खिलौना देखा होगा जिसे 'देखो और हँसो' कहते हैं, यह एक हास्यजनक दर्पण होता है जिसमें दो कूर्मपृष्ठाकार काँच लगे होते हैं. इसके द्वारा देखने से संसार की सब वस्तुयें कौतूहलजनक और हास्योत्पादक हो जाती हैं। अत्यन्त सुन्दर चेहरा भी "देखो और हँसो" के शीशे द्वारा देखने मे इतना लम्बा हो जाता है कि ठोड़ी ज़मीन को छूने लगती है और सिर मानो शनि-ग्रह को छूता है। इसी में होकर यदि दूसरे ढंग से देखो तो चेहरे की लम्बाई तो वही रहती है, किन्तु एक कान पूर्वी भारत तक पहुँचता है, और दूसरा कान चीन की खबर लेता है। अच्छा, यदि आँखें इस सिद्धान्त पर बनी हों, तो दुनिया बिलकुल बदल जायगी। यही हाल श्रवण एवं दूसरी ज्ञानेन्द्रियों का है। यदि शिराओं या पुट्ठों को भिन्न तरह पर लगा दिया जाय, तो सम्पूर्ण संसार भिन्न प्रकार का हो जाय, सारी दुनिया ही बदल जाय। आप कह सकते हैं कि हमारे मज्जातन्तु और नसें और ज्ञानेन्द्रियाँ जिस तरह बनी हुई हैं, वैसी ही रहनी चाहिएँ। सो बात भी नहीं है। विकासवाद का नियम बतलाता है कि उनमें परिवर्तन हो रहा है। इसलिए कल्पनावादी कहते हैं कि दुनिया जैसी जान पड़ती है, वैसी नहीं है; दुनिया जैसी प्रतीत होती है, उसका वह रूप मिथ्या है; दुनिया जैसी हमें मालूम पड़ती है असत्य है, माया है, भ्रान्ति है।

उनके भी बहुतेरे तर्क अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

किन्तु यदि उन पर हम विस्तारपूर्वक विचार करें, तो केवल कल्पनावाद में ही अनेक रातें बीत जायँगी।

अब हम वस्तु-सत्तावाद पर आते हैं। वस्तुसत्तावादी कहते हैं, "ओ कल्पनावादियो! तुम गलती पर हो, तुम बिलकुल भूल में हो. यदि हमें दिखाई देनेवाली हर एक वस्तु हमारी ही बनाई हुई, हमारी ही कल्पना-प्रसूत है. यदि आपका यह कथन सत्य है, तो ऐ कल्पनावादियो जहाँ दीवार है, वहाँ जरा घोड़ा तो पैदा कर दीजिये। ऐसा कीजिये जिससे वह दीवार घोड़ा मालूम पड़ने लगे। ऐ कल्पना-वादियो! यदि संसार केवल इस छोटे से द्रष्टा की बुद्धि या मन का खेल है, तो इस रूमाल को सिंह में बदल दो, या इस पेंसिल को एक भव्य भवन बना दो।" वस्तु-सत्तावादी कहते हैं, "ऐ कल्पनावादियो! तुम्हारी बात बिलकुल ठीक नहीं है, दुनिया सच्ची है। दीवार दीवार है और इसी कारण आपकी ज्ञानेन्द्रियों को वह सदा दीवार के रूप में भान होती है, कल वह तुमको घोड़ा रूप नहीं जँचेगी।"

कल्पनावादी वस्तु-सत्तावादियों के इन आक्षेपों का उत्तर देते हैं। इन आपत्तियों के उत्तर उनके पास हैं। किन्तु हम दोनों ओर के सब प्रश्नोत्तरों को नहीं लेंगे। कल्पनावादी कहते हैं कि यह यह प्रश्न केवल समय का है। आप अपनी कल्पना से चाहे जिस वस्तु की रचना कर सकते हैं। जब आप मृत प्राणियों का ध्यान करने लगते हैं, तब मृत-प्राणी आपको दिखाई देते हैं। हम जब किसी वस्तु की कल्पना करते हैं, तो वह कल्पना हमें प्राप्त होती है। उनका कहना है कि क्या अपने स्वप्नों में हम वस्तुओं की सृष्टि नहीं करते हैं? हमारी कल्पना इन वस्तुओं का अनुभव करा देती है।

कल्पनावादियों के ऐसे ही उत्तर हैं और वस्तु-सत्तावादी इ उत्तरों के प्रत्युत्तर हैं। अब हम इन प्रश्नोत्तरों के ब्यौरे में नहीं पड़ना चाहते।

वेदान्त भी संसार को अपना संकल्प, अपनी सृष्टि, मानता है। परन्तु संसार को अपना संकल्प, अपनी सृष्टि मानते हुए भी आप वेदान्त को कल्पनावाद नहीं कह सकते। राम के मुख से यह बात बहुत ही विलक्षण-सी जान पड़ती है। इसे फिर दुहराया जायगा। यूरोप और अमेरिका के लोग समझते हैं कि वेदान्त एक प्रकार का कल्पनावाद है, और यूरोपियनों की लिखी हुई जो पुस्तकें राम की दृष्टि में आई हैं प्रायः उन सब में वेदान्त को कल्पनावाद कहा गया है। किन्तु राम आपसे कहता है कि इन लोगों ने वेदान्त को समझा नहीं है। वेदान्त वैसा कल्पनावाद नहीं है जैसा बर्कले या अफलातून का कल्पनावाद है। वेदान्त इससे कहीं ऊँचा है, कहीं श्रेष्ठ है।

कल्पनावादी संसार को इस क्षुद्र द्रष्टा, तनिक-सी बुद्धि, या छोटे से मन पर आश्रित करते हैं। किन्तु वेदान्त जब यह कहता है कि संसार मेरा विचार या संकल्प है, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि संसार इस क्षुद्र द्रष्टा, नन्हीं सी बुद्धि, छोटे से मन का संकल्प है। यह तो एक परिवर्तन-शील वस्तु है, यह तो स्वयं एक रची हुई वस्तु है, यहाँ पर बर्कले ने यह कहकर भयंकर भूल की है कि स्वप्न स्वप्नद्रष्टा की रचना होती है। उसने भूल यह की कि स्वप्न-जगत् के द्रष्टा को उसने जाग्रतावस्था के द्रष्टा से एक कर दिया। आप जानते हैं, जैसा कि कल रात को बतलाया गया था स्वप्नावस्था का द्रष्टा जाग्रतावस्था के द्रष्टा से भिन्न होता है।

स्वप्नलोक का द्रष्टा तो उसी तरह का एक पदार्थ है जिस प्रकार कि स्वप्नलोक की अन्य वस्तुएँ। जब आप जागते हैं, तब जाग्रतावस्था का द्रष्टा भी उसी श्रेणी का है जैसी कि जाग्रतावस्था की वस्तु। बर्कले ने जाग्रतावस्था के द्रष्टा और स्वप्नावस्था के द्रष्टा को एक समझा। संसार जाग्रतावस्था के द्रष्टा या स्वप्नावस्था के द्रष्टा की रचना नहीं है। संसार मेरे वास्तविक स्वरूप, वास्तविक ईश्वर, ब्रह्म, शुद्ध आत्मा की रचना है।

अब हम संवेदन सम्बन्धी (हमें बाह्य वस्तुओं का भान कैसे होता है) वेदान्त मत की चर्चा करेंगे।

वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "ऐ कल्पनावादियो! तुम्हारा यह कहना यथार्थ है कि इस दुनिया के सारे नाम और रूप के सम्पूर्ण गुण और धर्म द्रष्टा की क्रियाशीलता के बिना प्रकट नहीं हो सकते।" यही बात फिर दुहरायी जायगी। विषय बड़ा क्लिष्ट है और आपको खूब ध्यान देना चाहिए। वेदान्त कल्पनावादियों से कहता है, "तुम्हारा इतना कहना ठीक है कि द्रष्टा की क्रिया बिना इस संसार के नाम और रूप प्रकट नहीं हो सकते, पदार्थों के लक्षण, गुण और धर्म हमारी बुद्धि या मन अथवा द्रष्टा की क्रियाशीलता पर निर्भर हैं। यहाँ तक तुम ठीक हो। किन्तु तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं कि तुम्हारे इस छोटे से द्रष्टा, तुम्हारे इस छोटे से मन से बाहर कुछ और नहीं है।" वेदान्त वस्तु-सत्तावादियों से कहता है, "तुम्हारा यह कहना ठीक है कि इस गोचर जगत् अथवा नाम-रूप-संसार का प्रादुर्भाव बिना किसी बाहरी सत् वस्तु की क्रिया के नहीं हो सकता।" आप जानते हैं कि वस्तु-सत्तावादी कहते हैं कि यह दृष्टि-

गोचर जगत् हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर किसी बाहरी क्रियाशीलता के कारण प्रकट होता है। इन्द्रियों पर पदार्थों की क्रिया होती है और हमें उनका बोध होता है। वेदान्त कहता है, ठीक है। किसी प्रकार की बाह्य क्रियाशीलता के बिना हमें पदार्थों का बोध नहीं हो सकता। यहाँ तक वस्तु-सत्तावाद ठीक है। किन्तु वेदान्त के अनुसार वस्तु-सत्तावाद वहाँ गलती करता है जब यह कहता है कि हमारे सम्पूर्ण बोध का एकमात्र कारण सम्पूर्ण बाह्य क्रियाशीलता है, इसमें द्रष्टा का कुछ भी हाथ नहीं। इसे हम और स्पष्ट किये देते हैं। इस संसार का कोई भी विषय, कोई भी वस्तु लो, उदाहरण के लिए, यह पेंसिल ले लो। इस पेंसिल के रंग का कारण क्या है? आप कह सकते हैं, द्रष्टा की क्रिया के साथ ही बाहर की प्रतिक्रिया उसका कारण है। यदि तुम्हारी आँखों को कोई रंग नहीं सूझता, तो तुम्हें पेंसिल का यह रंग भी न सूझेगा। पेंसिल का रंग उसका एक गुण या धर्म है। फिर पेंसिल का वजन लो। अब यह वजन और रंग दोनों बदलने वाली चीजें हैं। यदि हमारी आँखों में पांडु-राग हो, तो पेंसिल हमें दूसरे ही रंग की दिखाई पड़ेगी। और यदि हम इसे यहाँ न तौल कर बड़ी ऊँचाई पर, चन्द्रलोक में या किसी गहरी खान में तौलें, तो इसके वजन में अन्तर पड़ जायगा। आप जानते होंगे कि किसी वस्तु का भार यदि लंदन में तौला जाय तो कुछ और होगा और भारतवर्ष में तौला जाय तो कुछ और होगा। तात्पर्य, भार भी परिवर्तनशील है, रंग भी परिवर्तनशील है।

आप जानते हैं कि वही पानी जाड़े में छूने पर गरम जान पड़ता है और गर्मी में छूने पर शीतल लगता है।

क्यों ? क्योंकि द्रष्टा या बोध करनेवाले में पानी छूने के समयों में गर्मी-सर्दी के भिन्न अंश होते हैं, यद्यपि पानी में गर्मी-सर्दी के अंश लगभग वही रहते हैं। इस प्रकार हमारे हाथों की गर्मी-सर्दी के भेद के कारण जल में गर्मी-सर्दी के अंशों का भेद मालूम पड़ता है। इसी प्रकार द्रष्टा के भेदों के अनुसार पदार्थ के गुणों में भी भेद हो जाँयगे।

अब यह पेंसिल काहे की बनी है ? बर्कले और कुछ अन्य दार्शनिकों के अनुसार, केवल गुणों और धर्मों की पोटली के सिवा यह कुछ भी नहीं है। इन गुणों को अलग कर दीजिये, शेष कुछ भी नहीं बचेगा। किन्तु केन्ट के अनुसार वस्तु स्वयं इसके पीछे है। और अफलातून के अनुसार भी स्वयं वस्तु इसके पीछे है, जिसे वह विचार मात्र कहता है। इस तरह यहाँ कुछ गुण हैं। ये सब गुण द्रष्टा अथवा मन की क्रियाशीलता के कारण प्रकट होते हैं। किन्तु हमारा कहना है कि जब इस प्रतिक्रिया से पेंसिल में ये गुण पैदा हुए, उससे पहले कुछ असलियत वहाँ थी। यह बात और भी साफ की जायगी, और यदि तुम राम से कहोगे, तो फिर दुहरा दी जायगी। यह सत्य है कि वेदान्त के अनुसार पेंसिल में इन सब गुणों का प्राकट्य द्रष्टा के कारण से होता है, परन्तु द्रष्टा की क्रियाशीलता कैसे उत्तेजित हुई ? यह एक प्रश्न है। बाहर कोई वस्तु अवश्य होनी चाहिए जिसने द्रष्टा पर प्रभाव डाला और द्रष्टा में क्रिया या प्रतिक्रिया उत्तेजित की, और जब द्रष्टा में क्रियाशीलता उत्तेजित हुई तब ये गुण प्रकट अथवा विकसित हुए। यहाँ हम यह नहीं कह सकते कि इस द्रष्टा की क्रियाशीलता से पहले ही इन गुणों ने ही स्वयं मन पर प्रभाव डाला और मन की क्रिया

या प्रतिक्रिया उत्तेजित की। हम ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि ये गुण तो मन की क्रिया या प्रतिक्रिया के बाद प्रकट होते हैं। इसलिए बाहर कोई चीज़ अवश्य होनी ही चाहिए, पेंसिल में कुछ वास्तविकता अवश्य होनी चाहिए जिसने तुम्हारी आँखों पर काम किया, प्रभाव डाला, जिसने उसका नाम लेने तुम्हारे कानों पर काम किया। जिसने चखते समय तुम्हारी जिह्वा पर काम किया जिसने स्पर्श के समय तुम्हारे हाथ पर काम किया बाहर ऐसी कोई वस्तु होनी ही चाहिए, जो आँख, कान, और नाक सब पर काम करती है। इस पेंसिल को खा जाओ तो तुम्हारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि बाहर कोई तथ्य है नहीं? बाहर भी कुछ तथ्य है, और जब वह मनुष्य की इन्द्रियों पर काम करता है तब इन्द्रियाँ मन को खबर पहुँचाती हैं, और मन प्रतिक्रिया करता है। तभी पदार्थ के गुण या धर्म बाह्य स्थूल रूप में प्रकट होते हैं। यह ठीक इस प्रकार होता है। जैसे यह एक हाथ और यह दूसरा हाथ है। केवल एक हाथ कोई शब्द नहीं कर सकता। दोनों हाथों से (ताली बजाकर देखो यों) आवाज़ पैदा होती है। यहाँ एक ओर से क्रिया हुई, और दूसरी ओर से प्रतिक्रिया, और परिणाम हुआ शब्द। यह सारंगी का तार है। तुम इस पर अपनी उँगुली चलाते हो, और इससे आवाज़ पैदा होती है। तुम्हारी उँगली ने क्रिया की थी, और तार ने प्रतिक्रिया। अथवा आप कह सकते हैं, कि तार ने क्रिया की और उँगुलियों ने प्रतिक्रिया, तब आवाज़ पैदा हुई। इसी तरह, एक लहर इस तरफ से आई और दूसरी आई उस तरफ से. दोनों लड़ गईं और फेन पैदा हो गया। यहाँ एक

दियासलाई है, और वहाँ बलुआ-कागज़ है। बलुआ-कागज पर लगाओ, दियासलाई की चोट से लपट पैदा हो जायगी। क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों ओर से होती है। यहाँ बिजली का एक धनात्मक स्तम्भ है, और वहाँ ऋणात्मक स्तंभ, एक दूसरे के पास पहुँचते ही हमें बिजली की चिनगारियाँ दिखाई देती हैं, एक आवाज़ सुनाई पड़ती है। इस इंद्रियगोचर दृश्य की उत्पत्ति दोनों ओर की क्रिया और प्रतिक्रिया से होती है।

इस प्रकार वेदान्त के अनुसार, तुम्हारी बुद्धि में वह वस्तु-स्वयं विद्यमान है, जिसे हम आत्मा कहते हैं। सच्ची आत्मा तुम्हारी बुद्धि में विद्यमान रहती है, इस संसार के हर एक पदार्थ में वही वस्तु-स्वयं या वास्तविक आत्मा है। इस पेंसिल में भी असलियत है, अथवा आप कह सकते हैं कि वस्तु स्वयं है, जो किसी प्रकार जानी नहीं जा सकती, जो सब गुणों या धर्मों से परे है। उधर तुम्हारे मस्तिष्क में भी वस्तु-स्वयं या वास्तविक आत्मा है। अब एक ओर बाहर पेंसिल में विद्यमान वस्तु-स्वयं या निर्गुणत्व या ब्रह्म और दूसरी ओर मस्तिष्क में विद्यमान निर्गुणत्व मानों दो हाथ हैं। ज्योंही उनकी परस्पर टक्कर होती है त्योंही पेंसिल के गुणों की स्थापना हो जाती है, वे फेन की तरह प्रकट हो जाते हैं; एक लहर एक ओर से, और दूसरी लहर दूसरी ओर से आकर टकराती है और फेन पैदा हो जाता है, अर्थात् ये गुण प्रकट हो जाते हैं। आप कह सकते हैं कि धनात्मक बुद्धि ध्रुव में है और ऋणात्मक पेंसिल में, ज्योंही दोनों ध्रुव परस्पर समीप आते हैं हमें गुणों के अथवा इस दृश्य रूप जगत् के दर्शन होते हैं। वेदान्त की भाषा में, द्रष्टा

और दृश्य के मिलते ही हमें पदार्थ दिखाई पड़ते हैं। एक ओर द्रष्टा है और दूसरी ओर दृश्य। पेंसिल में भी वास्तविक स्वरूप या आत्मा है, और बुद्धि में भी वास्तविक स्वरूप या आत्मा है, और दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया नाम-रूपात्मक दृश्य का चमत्कार पैदा करती है।

इस प्रकार कल्पनावादियों का या दृष्टि सृष्टि-वादियों का यह कहना ठीक है कि द्रष्टा की क्रियाशीलता के बिना कुछ भी नहीं देखा जा सकता। किन्तु उनका यह कहना अयथार्थ है कि द्रष्टा की यह क्रियाशीलता अकेले ही इस गोचर जगत् की सृष्टि करता है, क्योंकि उनके इस कथन से विज्ञान का एक सबसे अधिक अटल और सुदृढ़ नियम भंग होता है। वह नियम इस प्रकार है—

क्रिया के ठीक बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया के बिना कोई क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। कल्पनावादी जब यह कहते हैं कि इस संपूर्ण संसार की सृष्टि केवल इस क्षुद्र द्रष्टा की क्रियाशीलता से होती है, तब वे इस तथ्य को बिल्कुल भूल जाते हैं कि किसी दूसरी ओर से प्रतिक्रिया हुए बिना कोई कार्य हो नहीं सकता। इसी प्रकार वस्तु-सत्तावादियों का यह कहना ठीक है कि इस संसार में स्वयं अपनी एक सत्ता है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि वह केवल इस क्षुद्र द्रष्टा के आधारपर अवलम्बित है। संसार में स्वयं एक सत्ता है— यहाँ तक तो वे ठीक हैं, किन्तु जब वे कहते हैं कि इस जगत् का नाम रूपात्मक दृश्य स्वयं ही सत्य है, और अपने ही आधार पर ठहरा हुआ है, तब वे भूल करते हैं, क्योंकि यह दृश्य रूप जगत्, इस दुनिया के भेद-भाव और सांसारिक पदार्थों के गुण सभी नाम-रूप द्रष्टा की क्रियाशीलता पर

ठीक उतना ही निर्भर हैं जितना कि वे दृश्य के भीतर विद्यमान वस्तु-स्वयं या वास्तविकता की प्रतिक्रिया पर निर्भर करती हैं।

अब यहाँ एक बड़ी आपत्ति उठती है। तुम क्रिया और प्रतिक्रिया की बात करते हो। भला, अनन्त में क्रिया और प्रतिक्रिया कैसे हो सकती है? अच्छा, देखिये क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा हमने इसलिए की थी कि उसी शब्दावली का प्रयोग किया जाय जिसे साधारणतः लोग समझते हैं। हमने क्रिया-प्रतिक्रिया की चर्चा इसलिए की कि एक ओर हमारा संकेत बुद्धि के संयोग में आये हुए गुणातीत संकल्प या शक्ति और दूसरी ओर पदार्थ के संयोग में आये हुए गुणातीत संकल्प या शक्ति से पदार्थ के संयोग में आई हुई निर्गुण सत्ता मस्तिष्क या बुद्धि के संयोग में आई हुई निर्गुण सत्ता के विपरीत क्रिया अथवा प्रतिक्रिया करती है। एक दृष्टान्त लीजिए। इस पात्र में आकाश है, और उस पात्र में भी आकाश है। वास्तव में आकाश दोनों में एक ही वस्तु हैं, किन्तु आप कह सकते हैं कि आकाश इस वर्तन में प्रकट हो रहा है और उस वर्तन में प्रकट हो रहा है। वास्तव में आकाश अखण्ड है, उसके टुकड़े या विभाग नहीं किये जा सकते। देश या आकाश कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसका व्यवहार तुम इस हाथ के रूमाल की तरह कर सको। आकाश एक और वही एक वस्तु है, आकाश अखंड है। आकाश में विभाग की कल्पना संभव नहीं है, दार्शनिक कैंट के अनुसार आकाश द्रष्टात्मक और दृश्यात्मक दोनों है, वह बाँटा या काटा नहीं जा सकता। इसी प्रकार वास्तविक आत्मा या निर्गुण अनन्त कभी काटा या बाँटा नहीं जा सकता। किन्तु

जब इस दुनिया के पदार्थों के सम्बन्ध में हम उसकी चर्चा करते हैं, तब हमारा यह कहना न्यायसंगत होता है कि वह इस पदार्थ, उस पदार्थ अथवा बुद्धि से संयोग पाता है। और इस या उस पदार्थ के साथ संयुक्त होने पर उसमें क्रिया और प्रतिक्रिया की चर्चा की जाती है। उदाहरण के लिए इस हाथ का आकाश जब इस पात्र के आकाश तक पहुँचता है, तो दोनों एक हो जाते हैं। वास्तव में वे दोनों सदा से एक थे। किन्तु अब तुम्हारे नेत्रों के लिए भी हाथ का आकाश पात्र के आकाश के साथ तदात्म हो गया।

इस प्रकार वेदान्त कहता है कि जब द्रष्टा के आधार में स्थित निर्गुण सत्ता, दृश्य के आधार में स्थित निर्गुण सत्ता से तदात्म हो जाती है तब द्रष्टा और दृश्य में कोई अन्तर नहीं रहता, दोनों एक हो जाते हैं।

क्रिया और प्रतिक्रिया वास्तव में आत्मा में नहीं होती, किन्तु परिच्छिन्न-आत्मा में होती है। उदाहरण के लिए एक ओर से पानी की यह एक लहर आ रही है, दूसरी ओर से दूसरी आ रही है। पहली लहर भी वैसा ही जल है जैसा कि दूसरी लहर, और परस्पर टकराने पर भी दोनों पानी ही रहेंगी। उनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता फिर भी लहरों में क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। यहाँ एक लहर में परिमित जल दूसरी लहर में परिमित जल से टक्कर लेता है, और इस टक्कर से फेन का दृश्य प्रादुर्भूत होता है। इसी तरह जब बुद्धि में परिमित निर्गुण सत्ता जब पदार्थ में परिमित निर्गुण सत्ता से टकराता है, तो इस दुनिया के गुण, धर्म और स्वभाव का दृश्य उत्पन्न हो जाता है, ठीक उस तरह जैसे यह हाथ जब दूसरे हाथ से टकराता है, तो यद्यपि एक

में भी वही शक्ति है जो दूसरे हाथ में है, तो भी वे ध्वनि पैदा करते हैं।

परमतत्व बुद्धि में वही है जो पदार्थ में है। जब बुद्धि या द्रष्टा का पदार्थ के साथ संस्पर्श होता है, तब भी उन दोनों के पीछे वही एक निर्गुण सत्ता या परमतत्व विद्यमान रहता है। यहाँ यह बात साफ समझ में न आई होगी कि दुनिया के सभी पदार्थों के पीछे वही एक परमतत्व है। यह एक कलम है। इस कलम में कुछ गुण या धर्म हैं साथ ही उसके आधार में परमतत्व। आप जान गये हैं कि इस आधारभूत परमतत्व की उपस्थिति के अनुमान का हमारे पास एक काफी अच्छा कारण है, क्योंकि ये गुण आप ही आप उस समय तक प्रकट नहीं हो सकते जबतक बुद्धि पर कोई क्रिया न हो और उस पर बुद्धि अपनी प्रतिक्रिया से गुणों का प्रादुर्भाव न करे। अच्छा, यह एक कलम है। इसमें कुछ गुण हैं जिन्हें हम "क" के नाम से पुकारेंगे, और इसके आधारभूत परमतत्व को हम "त" कहेंगे। कलम उन गुणों का पुंज है जो उसे कलम बनाते हैं। यह एक मेज़ है। मेज़ में वही गुण हैं जो उसे मेज़ बनाते हैं, मान लो उनका नाम "क म" + "त" (परम तत्व) है। यहाँ आप प्रश्न कर सकते हैं कि इस "त" को हम वही पहले वाला "त" क्यों माने लेते हैं। कहा जा सकता है कि इस कलम के गुणों के पीछे स्थित परमतत्व कोई दूसरा होगा, और मेज़ के गुणों के पीछे स्थित परमतत्व कोई दूसरा होगा और भी कहा जा सकता है कि कलम के गुणों का विस्तार होने से पहले किसी तत्व ने हमारी इन्द्रियों पर क्रिया की होगी, और मेज़ के गुणों का विस्तार होने से पहले हमारी इन्द्रियों पर क्रिया करने-

वाला कोई दूसरा परमतत्व होगा उसे हम "त" न कहेंगे। क्योंकि इस "त" को और दूसरे "त" को एक मानने का हमें कोई अधिकार नहीं। अच्छा यह एक वाजा है। हम इसके आधारभूत परमतत्व को "त" १ कहेंगे ताकि वह पहले के "त" ओं से अलग रहे। यह "त" १ उन दोनों से भिन्न हो सकता है जो मेज या कलम के पीछे स्थित थे। उसी प्रकार मनुष्य के आधारभूत परमतत्व को हमें "त" २ कहना होगा।

बस, यहाँ अपनी गलती पर ध्यान दीजिये, यही गलती अब अफलातूँ ने की थी। वह इन आधारभूत परमतत्वों को विभिन्न मानता था जैसा कि वे ऊपरी दृष्टि से दिखाई देते हैं और इसीलिए तुमने भी उन्हें विभिन्न मान रक्खा है। परन्तु इस तर्क में एक भूल है। इसे reductio ow absurdum की आपत्ति कहते हैं। हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि यह अनुमान गलत है। कलम के गुण और स्वभाव, उसका रंग रूप तौल, कोमलता एवं अन्य गुण, आपकी बुद्धि या मन की प्रतिक्रिया के परिणाम थे। तात्पर्य यह कि जितने गुण होते हैं, सभी आपकी बुद्धि की प्रतिक्रियाजनित हैं। क्योंकि ये स्वभाव और गुण प्रतिक्रिया के अनन्तर दृष्टि-गोचर होते हैं, और हम मान चुके हैं कि इस पेंसिल में परम तत्व इन गुणों या धर्मों के विस्तार से पहले ही विद्यमान है। इस तरह वह परम तत्व सारे गुणों, स्वभावों और धर्मों से ऊपर है। "त" १ भी "त" २ भी सारे गुणों या धर्मों से ऊपर हैं।

फिर इन परमतत्वों में भेदों का कारण क्या हो सकता है? तनिक गंभीरतापूर्वक विचार करो। दुनिया में जो भेद-भाव दिखाई देते हैं, वे सब गुणों के कारण से हैं। खरिया

मिट्टी के इस टुकड़े और उस पेंसिल के गुणों का विचार किये बिना क्या आप दोनों में भेद कर सकते हैं ? आप कैसे जानते हैं कि खरिया मिट्टी का यह टुकड़ा पेंसिल से भिन्न है ? केवल उनके गुणों के द्वारा। यह खरिया सफेद है। यह एक गुण है। यह भुरभुरी है। यह भी एक गुण है। भेद मात्र गुणों के कारण होते हैं। अब यदि तुम इस आधारभूत परम-तत्व "त" को उस आधरभूत "त" से भिन्न मानते हो, तुम उनमें भेदों की स्थापना करते हो, उनमें भेदों का विस्तार करते हो तो दूसरे शब्दों में, तुम इस निर्गुण परमतत्व को गुणों के अधीन कर देते हो। आप देखेंगे कि उसको भेदों के अधीन कर देने से, उन्हें एक दूसरे से भिन्न मानने से, वे सब गुणों के अधीन हो जायँगे, और यह बड़ी गलती है। इन परम तत्वों को गुणों से परे मानकर आपने तर्क आरम्भ किया था. और उन्हें फिर गुणों से युक्त मानकर आप अपना तर्क समाप्त करते हैं। यदि आप इन परमतत्वों को विभिन्न और एक दूसरे से पृथक मानेंगे, तो यह आपकी भयंकर भूल होगी। इन्हें आपने गुण स्वभाव से, परे मानकर तर्क प्रारम्भ किया था, और अब उन्हें गुण स्वभाव के क्षेत्र में लाकर आप ही अपना खण्डन करते हुए तर्क समाप्त कर रहे हैं। कैसी गलती है।

आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि इस पेंसिल में आधारभूत परम तत्व खड़िया के उस टुकड़े में आधारभूत परम तत्व से भिन्न है। आपको यह कहने का कोई हक नहीं है कि मन वा द्रष्टा या बुद्धि में आधार-भूत परम तत्व उस परम तत्व से भिन्न है जो एक गऊ या बैल के आधार में है। आपको यह कहने का कोई हक नहीं कि

इस मेज की आधारभूत आत्मा उस आत्मा से भिन्न है। आत्मा एक है, वही अनन्त, निर्गुण और निर्विकार नित्य सत्ता है।

एक दृष्टान्त देने से यह और भी स्पष्ट हो जायगा। यह एक सुन्दर सफेद दीवाल है। आप सब यहाँ बैठे हो। आप में से एक सज्जन उस दीवाल पर सुन्दर रेखा चित्र—रेखा-गणित के त्रिकोण, वृत्त, अंडाकृतियाँ आदि खींच रहे हैं, दूसरे सज्जन उसी दीवाल पर किसी महासमर सम्बन्धी चित्र खींच रहे हैं, तीसरे सज्जन उसी दीवाल पर अपनी स्त्री मित्रों और सम्बन्धियों के चित्र खींच रहे हैं, इसी प्रकार उस पर लोग विभिन्न चित्र खींच रहे हैं। अब इन सब चित्रों के पीछे वही एक ही आधारभूत दीवाल है। इसी तरह जो चीजें आपको इस दुनिया में दिखाई देती हैं, उनके पीछे भी एक ही परम तत्व है। कल्पना करो कि यहाँ आप घोड़ा, गाय, एक कुत्ता, हाथी, और आदमी आदि अनेक चीजें देख रहे हैं। अब ये सारे चित्र उसी एक निर्गुण 'त' पर, दृष्टान्तवाले 'त' पर, उसी सफेद दीवाल पर बनी हुई हैं। इस प्रकार से वही आत्मा, एक ही अनन्त राम, हरएक के पीछे, सबके पीछे विद्यमान है। स्वप्न में आप एक बैल देखते हैं, फिर एक कुत्ता, फिर एक मनुष्य और फिर एक स्त्री। किन्तु आप जानते हैं कि आपके स्वप्नों में बैल, कुत्ता, आदमी, एवं अन्य चीजें एक उसी निर्गुण तत्व, सच्ची आत्मा पर चित्रित होती हैं। जागने पर आप देखते हैं कि घोड़ा, पहाड़, या नदी आदि आपके स्वप्न की किसी चीज़ का पता नहीं चलता।

जिन गुणों से दुनिया बनाई गई है, उनकी बाबत क्या सोचते हो? इन्द्रिय-गोचर जगत् गुणों का पुञ्ज है, और

सभी गुण उस परम तत्व पर निर्भर रहते हैं। यह एक बहुत ही सूक्ष्म बात है जो आप अभी नहीं समझ सकेंगे, किन्तु उसका सुनना अच्छा है बाद के व्याख्यानों में आप शायद पूरी तौर पर उसे समझ लें। ये सारे गुण उस परमतत्व पर निर्भर करते हैं। उसी धुरी पर चक्कर लगाते हैं। अतः इन गुणों के धर्म के अनुसार, उस परमतत्व में भी एक गुण हुआ अर्थात् उसमें भी वह इन गुणों के अवलम्बी, पोषक या आधार होने का गुण है। वह परमतत्व सब गुणों को आश्रय देता है। यदि यह सच है तो वह परमतत्व निर्गुण नहीं रहा क्योंकि उस परमतत्व में इन सब गुणों को आश्रय देने का कम से कम एक गुण तो है। तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि वह परमतत्व निर्गुण है? अनुभव से अब यह बात हम अपने निजी कहते हैं। जिस तरह आप अपने निजी अनुभव के प्रमाण पर इस दुनिया को ठोस या वास्तविक मानते हैं, ठीक उसी तरह हम अपने निजी उच्चतर अनुभव के आधार पर हम कहते हैं कि जब उस परमतत्व का साक्षात् हो जाता है, तब ये सारे गुण, देश और काल गायब हो जाते हैं। क्योंकि उस परमतत्व के दृष्टिविन्दु से इन गुणों का अस्तित्व कभी नहीं हुआ था, किन्तु गुणों के दृष्टि-विन्दु से ही वे उस अधिष्ठान रूप परमतत्व पर निर्भर करते हैं। यह एक बड़ी समस्या है जिसे हल करना होगा। यह माया की गुत्थी कहलाती है। वास्तव में वह परमतत्व निर्गुण है, सब गुणों से परे है, किन्तु ये गुण अपने स्थिति-विन्दु से उस परमतत्व पर निर्भर करते हैं। यह एक प्रमुख समस्या है जिसके सुलझने पर संसार की अन्य गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

यह केवल कल्पना का विषय नहीं है। इन पर केवल बातचीत करने से काम नहीं चलता। यूरोपीय दार्शनिक इन समस्याओं को केवल कल्पना के विषय मानते हैं। किन्तु भारतीय तत्वज्ञानियों का यह ढंग नहीं होता। कोई तर्क-सिद्ध विषय उनके लिए तबतक अर्द्ध सिद्ध ही बना रहता है, जबतक कि वह अनुभव द्वारा प्रमाणित नहीं हो जाता, जबतक प्रयोगों द्वारा भी उसकी सिद्धि नहीं हो जाती। इस विषय की दार्शनिक व्याख्या सुनने में अति मीठी लगती है, किन्तु जब एक बार इसका अनुभव किया जाता है, तब तो यह माधुर्य और आनन्द घन होता है। यह सचमुच अनुभव करने योग्य है। यदि आप इस विचार को जीवन में उतार लो—कि तुम्हीं वही एक अनन्त "त" हो, जो इस विश्व के सभी पदार्थों के पीछे आधार रूप से विद्यमान है, तुम्हीं वह परम तत्व हो—तो तुम देह से परे हो जाते हो, मन से परे होते हो। यह शरीर द्रष्टा नहीं है। यह तो केवल एक पदार्थ मात्र है, जो एक ओर की लहर से दूसरी ओर की लहर के साथ टक्कर होने पर प्रकट होती है। आप केवल देहरूपी फेन नहीं हैं। आप तो परमतत्व हो, जिसमें यह सम्पूर्ण संसार, विश्व का सम्पूर्ण व्यापार, लहरें या भँवर मात्र हैं। इसको अनुभव करो, और परम स्वतन्त्र हो जाओ। क्या यह आश्चर्यों का आश्चर्य नहीं है कि आप जो वास्तविक सत्य, वास्तविक परम स्वरूप हो, इसका अनुभव नहीं करते? ओ, मुक्त हो जाओ, कैसा शुभ संवाद है, कैसा मंगलमय संदेश है कि आप ही वह परमतत्व हो आप ही असली "त" हो। इसे अनुभव करो और स्वतन्त्र हो जाओ।

Let that be your state.

The body dissolved is cast to winds,
While Death, Infinity me enshrine ;
All ears my ears, all eyes my eyes,
All hands my hands, all minds my minds,
I swallowed up death, all difference I drank up,
How sweet and strong and good I find.

तुम्हारी यह दशा हो,

"देह विनष्ट होने पर पवन के हवाले हो गई,
और मैं मृत्यु, अनन्तता का मन्दिर बना हुआ हूँ ;
सब कान मेरे कान, सब नेत्र मेरे नेत्र,
सब हाथ मेरे हाथ, सब मन मेरे मन।
मैंने मौत निगल ली, सब भेद मैं पी गया,
कैसा तरोताजा, अच्छा, और बलवान मैं हो गया।"

वस्तु-सत्तावाद और कल्पनावाद वा दृष्टि-सृष्टिवाद

सोमवार, ४ अप्रैल १९०४ का भाषण

.....जिन लोगों का विश्वास है कि कल्पनायें सत्य हैं, वे कहते हैं कि कल्पनावाद एक तथ्य है, और उनके पास अपना पक्ष-समर्थन के लिए काफी प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए बोधकर्त्ता के बिना दीवाल का बोध कैसे हो सकता है? उनका कथन है कि दीवाल में कोई तथ्य नहीं है, परन्तु कल्पना से दीवाल की सृष्टि होती है। यदि कोई मनुष्य हिप्नोटिज्म (संमोहन विद्या) के द्वारा इससे इतर रूप में मोहित किया जाय तो वह उसी रूप में दीवाल को देखेगा, जिस रूप में वह मोहित किया जायगा. उसी उसी रूप में वह दीवाल को देखने लगेगा। जिस मनुष्य को मैंने सम्मोहित कर लिया है, उससे यदि मैं कहूँ कि यह धरातल झील है, तो वह तुरन्त उसमें मछलियाँ मारने लगेगा। किन्तु यहाँ पर वस्तु-सत्तावादी आक्षेप करता है और कहता है कि दीवाल तुम्हारी कल्पना से स्वतन्त्र बिलकुल असली तथ्य रूप है, तुम इसे देखते हो, तुम इसे बोध करते हो, तुम इसे सुन सकते हो, और यदि तुम्हारी सूँघने की शक्ति तीव्र हो, तो इसे सूँघ भी सकते, और यदि तुम इसे खाओ तो तुम्हारा पेट तुम्हें बतलायगा कि वह जरूर एक वास्तविक तथ्य, ठोस पदार्थ है। इस तरह तुम देख सकते हो कि अपने पक्ष में उसके पास भी प्रचुर प्रमाण हैं। किन्तु राम आपसे कहना चाहता है कि किसी भी पदार्थ को बनाने के लिए संकल्प और वस्तु दोनों की जरूरत होती है। माना कि सम्मोहित मनुष्य के लिए

दीवाल दीवाल से इतर दूसरी वस्तु बन जाती है, फिर भी उसे किसी भी प्रकार का संकेत देने के लिए वहाँ कोई न कोई वस्तु तो अवश्य होनी चाहिए, चाहे हम उसे घोड़ा या झील या किसी और वस्तु का रूप देना चाहें। हर हालत में द्रष्टा और दृश्य इन दोनों की ज़रूरत पड़ती है।

एक वार भारतवर्ष में दो मनुष्य झगड़ रहे थे। वे दरवेश कहलाते थे। एक का नाम था श्रीयुत लकड़ी और दूसरे का नाम था श्रीयुत कुल्हाड़ी। श्रीयुत कुल्हाड़ी ने कुपित होकर श्री लकड़ी से कहा "मैं तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।" श्रीयुत लकड़ी ने उत्तर दिया, "किन्तु, महाशय जी! तुम्हारे पीछे मेरा होना ज़रूरी है, अन्यथा तुम कुछ नहीं कर सकते।" आप जानते हैं कि कुल्हाड़ी का बेंट लकड़ी का होता है। और इसी तरह कल्पनावाद और वस्तु-सत्तावाद साथ-साथ चलते हैं, वे अन्योन्याश्रित हैं।

मैं वलुआ-कागज-पर दियासलाई रगड़ता हूँ, और लौ पैदा होती है। लौ न तो दियासलाई में थी और न वलुआ-कागज में। किन्तु दोनों के संघर्ष से लौ पैदा हुई। मैं अपने हाथ पीटता हूँ, उससे एक आवाज़ पैदा होती है। आवाज़ न तो दाहिने हाथ में है और न वांये हाथ में, किन्तु दोनों के टकराने का परिणाम है। आत्मा दोनों हाथों में वही एक है। यहाँ मैं तुमसे कौवे की बात कहना चाहता हूँ। कहते हैं कौवे के नेत्र-कूप तो दो होते हैं, किन्तु आँख का तारा एक ही होता है, जब उसे दाहिनी ओर देखना होता है तब वह उधर के कूप में पुतली ले जाता है; और जब बांई ओर देखना होता है, तब उधर के कटोरे में पुतली ले जाता है। अब पुतली तो एक है, परन्तु वही विभिन्न स्थानों में घुमाई जाती

है। दो बड़ी लहरों के परस्पर संपर्क से सफेद फेन प्रकट होता है दाहिनी लहर में और बाईं लहर में जल वही एक है, परन्तु जब वे मिलती हैं तब सफेद शिखा हमें दृष्टिगोचर होती है। बच्चा अकेले माता या अकेले पिता से पैदा नहीं होता, माता और पिता दोनों से पैदा होता है।

अब हम आत्म-निष्ठ को द्रष्टा और पदार्थ-निष्ठ को दृश्य कहेंगे। हम सर्वत्र देखते आये हैं कि यही दो परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। और यही दो जब संपर्क में आते हैं तो नाम-रूपात्मक जगत् की सृष्टि करते हैं जो हमें दिखाई देता है। उन दोनों में से कोई अकेला गोचर-जगत् की उत्पत्ति नहीं करता। इस प्रकार यह बात साफ हो जाती है कि गोचर-जगत् की व्याख्या के लिए संकल्पवाद और वस्तु-सत्तावाद दोनों को एकत्र होना पड़ता है, क्योंकि संभवतः कोई भी इसे अकेला सम्पन्न नहीं कर सकता।

भारतवर्ष में कुछ घरों में बहुत से दर्पण होते हैं, वास्तव में दीवालें और छतें दर्पणों से जड़ी रहती हैं। एक बार एक कुत्ता एक ऐसे ही घर में जा घुसा अपने चारो ओर उसे सैकड़ों कुत्ते दिखाई देने लगे। उसने ऊपर की ओर देखा, उसे अपने शिर पर कुत्ते दिखाई दिये, बस, डर के मारे उसने उछलना शुरू किया। तुरन्त ही सैकड़ों कुत्ते उछलने लगे। तब वह भूँकने और इधर-उधर दौड़ने लगा। उन कुत्तों ने भी अपने मुँह फैलाये और दौड़ने लगे। उसका यही ढंग बड़ी देर तक चलता रहा यहाँ तक कि वह थकावट के मारे गिर पड़ा और हताश हो कर शरीर ही छोड़ दिया मकान मालिक ने यह हाल देखा और कुत्ते की लोथ उठवा कर फेंकवा दी। तत्पश्चात् इसी कमरे में एक सुन्दर नह-

युवक युवराज ने प्रवेश किया, और सभी शीशों में अपनी परछाईं देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पहले उसने अपने बालों की तारीफ की, फिर मुख और अन्य आकृतियों की प्रशंसा की, अन्त में अपनी पोशाक की, एवं अन्य बातों की सुन्दरता देखी। वह इन सैकड़ों चित्रों से बहुत खुश हुआ क्योंकि वह जानता था कि ये सैकड़ों चित्र स्वयं उसी के हैं। बस हमें केवल विश्राम मिलता है जब हम यह जान लेते हैं कि आत्मा केवल एक ही है और विभिन्न नामों से हमें जितनी शक्ल-सूरतें दिखाई देती हैं, वे सब हमारी वही वास्तविक आत्मा हैं। अन्यथा उस कुत्ते के समान दशा होती है। हमें हमेशा डर लगा रहता है कि यह हमको धोखा देगा, वह हमारी हानि करेगा, तीसरा हमसे कोई चीज़ न लेगा, और इन्हीं नाम रूपों के विरुद्ध निरन्तर एक झगड़ा चलता रहता है, क्योंकि हम उन्हें अपने से भिन्न समझते हैं। किन्तु एक बार सत्य का अनुभव होते ही हम राजकुमार की नाँई शान्त हो जाते हैं। हम जान जाते हैं कि आत्मा को कोई धोखा नहीं दे सकता: क्योंकि वह निर्विकार और परम स्वतंत्र है। जब तक हम कुत्ते की तरह इधर-उधर उछलते रहते हैं, तब तक हम केवल ऊपरी सतह पर जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु जब हमें आत्मा (अपने स्वरूप) का अनुभव हो जाता है, तब हम सतह के नीचे गोता लगाकर पूर्ण सत्य के साम्राज्य में पहुँच जाते हैं।

कल्पना करो कि स्वप्न में द्रष्टा पहाड़ पर चढ़ा, और वहाँ उसे एक व्याघ्र मिला, जो उसे नोच-नोच कर टुकड़े-टुकड़े करने लगा: अथवा वह ऐसे दलदलों में फँस गया, जिनसे निकलना कठिन था; या वह गङ्गाजी में डूबने लगा।

अब यदि यह द्रष्टा वास्तविक और सत्य होता तो वह अनुभव करता कि ये तो स्वप्न की बातें हैं, और उसे कुछ भी व्यथा न होती। व्याघ्र द्वारा नोचे जाने पर वह कदापि रोता और चिल्लाता नहीं और न दलदल की गहराई को देखकर डरता ही। किन्तु हम जानते हैं कि वह कल्पना मात्र था, असलियत नहीं थी। अच्छा, अब स्वप्न की वस्तुओं को सत्य मान लो। यदि सचमुच ऐसा होता; तो द्रष्टा के सोने के बिछौने पर पानी की बाढ़ आ गई होती, सिंह वस्तुतः द्रष्टा को नष्ट कर देता, इत्यादि। किन्तु हम जानते हैं कि ऐसा कभी होता नहीं, स्वप्न-दृश्य कभी सत्य नहीं होता। द्रष्टा और दृश्य दोनों मिलकर स्वप्न की रचना करते हैं, किन्तु उनमें से सत्य और तथ्य एक भी नहीं हैं।

मेज़	=	"क म"	+	"त"
तख्ता	=	"क च"	+	"त"
गुलाब	=	"क ग"	+	"त"

मेज़ के गुण और आधारभूत अज्ञात = मेज़।

तख्ते के गुण और आधारभूत अव्यक्त = तख्ता गुलाब के गुण और आधारभूत अव्यक्त = गुलाब।

गुलाब का रंग लाल है, उसमें पँखड़ियाँ आदि गुण हैं, इन गुणों और आधारभूत अव्यक्त या अज्ञात के योग से गुलाब दिखाई देता है। अब यह अव्यक्त या अज्ञात सब पदार्थों में वही एक है, और वही उनकी आत्मा है, जो उनकी सच्ची वास्तविकता है।

यहाँ दो समद्विभुज त्रिभुज और एक आयत क्षेत्र है—
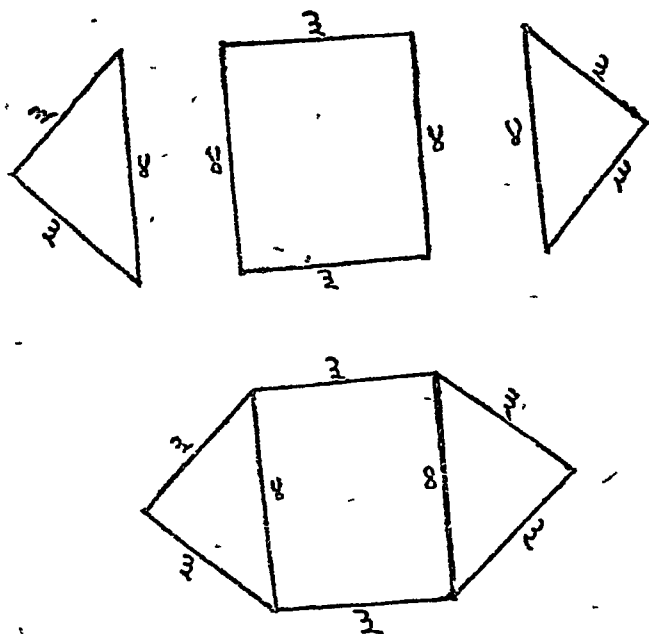
और इन आकारों को एक में मिला देने से एक षट्भुज क्षेत्र बन जाता है, जो उन आकारों से भिन्न होता है, जिनको हमने मिलाया था। इन समद्विभुज त्रिभुजों और आयत में किसी की भुजायें बराबर नहीं थीं किन्तु षट्भुज क्षेत्र की सब भुजायें बराबर हैं। समद्विभुज त्रिभुज में हम न्यून कोणों को बढ़ा सकते थे किन्तु षट्भुज क्षेत्र में ऐसा नहीं कर सकते। यहाँ हमने जिन आकारों को मिलाया है, नया आकार हर बात में उनसे पृथक है।

इसी तरह विज्ञान के फारमूला 'एच २ ओ' पर विचार करें। पानी में दो अंश हाइड्रोजन गैस के और एक अंश

ऑक्सीजन गैस का होता है। अब "आक्सीजन" और "हाइड्रोजन" की साँस लेना सहज है, वे हवा में होते ही हैं परन्तु जब दोनों उक्त परिमाण में मिलकर पानी पैदा करते हैं, तब उनसे साँस कैसे ली जा सकती है. वह बिलकुल भिन्न वस्तु हो गई। "हाइड्रोजन" और "आक्सीजन" अलग अलग जल उठनेवाले द्रव्य हैं, किन्तु जल के सम्बन्ध में यह बात असंगत है।

इन उदाहरणों से व्यक्त जगत्, नामरूपात्मक संसार की व्याख्या होती है, और यह भी सिद्ध होता है कि न तो द्रष्टा ही सत्य है और न दृश्य।

वेदान्त कहता है कि यह सब शब्दों का खेल मात्र है। शब्दों पर झगड़ने से क्या लाभ? वास्तव में एक ही आत्मा है, जो हम हैं, उसके सिवाय कुछ नहीं है, और चूँकि आत्मा से इतर कुछ नहीं है, इसलिए तुम युक्तिपूर्वक नहीं कह सकते कि तुम एक अंश हो। वरन् इससे यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है कि तुम पूर्ण आत्मा-सम्पूर्ण आत्मा हो। सत्य के खण्ड नहीं होते। और इसी कारण तुम वह सत्य हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

—:o:o:o:—

वेदान्त विषयक कुछ प्रश्नों के उत्तर

अकेडेमी आफ साइंसेज में २३ दिसम्बर १६०२ को दिया हुआ व्याख्यान।

आज किसी विशेष विषय पर कोई नियमित व्याख्यान न होगा। तरह तरह के प्रश्न लेकर बहुत से लोग राम के पास आते रहते हैं। कभी-कभी तो ये प्रश्न बड़े विलक्षण होते हैं। उन्हीं में से कुछ प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर आज दिया जायगा। आपमें से किसी को अथवा अमेरिका के किसी भाग के निवासी किसी व्यक्ति को इस विषय पर प्रश्न करना हो, तो कागज के टुकड़े पर अपना प्रश्न लिखकर राम के पास भेज सकता है। इस सभा भवन में अथवा किसी दूसरे स्थान में जहाँ राम को भाषण करने का अवसर मिलेगा, उस व्यक्ति के प्रश्न का उत्तर विस्तारपूर्वक दिया जायगा।

इन प्रश्नों को आरम्भ करने के पहले, उन सभी प्रकार के प्रश्नों के सम्बन्ध में एक सामान्य वक्तव्य देना आवश्यक है, जो लोगों के मन में उठते-रहते हैं। आप जानते होंगे कि भारतीय तत्वज्ञानियों का ढंग यूरोपीय अथवा अमेरिकन तत्वज्ञानियों के ढंग से एकदम भिन्न है। भारतीय तत्वज्ञानी जब किसी विषय को उठाते हैं, तो पहले उसकी व्याख्या करते हैं, फिर उस विषय के सम्बन्ध में उठने वाली सभी संभव शंकाओं और प्रश्नों का समाधान करते हैं। राम को स्वयं इन सब अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ा है। राम के सामने भी वे सभी सवाल थे जो किसी के सामने हो

सकते हैं, ऐसे प्रश्नों और शंकाओं का मानो एक सागर होता है। उनमें से कुछ तो राम के वे प्रश्न हैं जब राम ५ पाँच साल का था। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो राम को १५ पन्द्रह वर्ष की आयु में हैरान करते थे। कुछ ऐसे हैं जिन्होंने २५ वर्ष की आयु में राम का ध्यान आकर्षित किया।

इन प्रश्नों के सम्बन्ध में एक बात और बतलाना है। इन प्रश्नों में से कुछ का संबंध तो दार्शनिक प्रवृत्ति के विकास की अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्थाओं से है। कुछ का सम्बन्ध धार्मिक विकास की माध्यमिक अवस्था से है। शेष का सम्बन्ध दूसरी अवस्थाओं से है। यहाँ एक ऐसा मनुष्य आता है जो तुम से रेखागणित की प्रथम पुस्तक की ४७ वीं प्रमेय समझना चाहता है। अब जो मनुष्य ४६ वीं, ४५ वीं, यहाँ तक कि पहली प्रमेय भी नहीं समझा है, और रेखा-गणित के सूत्रों एवं स्वयंसिद्ध बातों से भी अपरिचित है, उसको यदि आप तुरन्त ४७ वीं प्रमेय समझाना शुरू कर दें तो उसे पूर्णतः सन्तुष्ट कर सकना कैसे आपके लिए संभव है? यदि आप यह काम अपने हाथ में लेकर समझाना शुरू करेंगे, तो आरम्भ में ही आपको ४६ वीं प्रमेय का प्रयोग करना होगा, फिर समचतुष्कोण क्षेत्र की व्याख्या करना पड़ेगी, जिसे वह नहीं जानता, फिर ३२ वीं प्रमेय का प्रयोग करना पड़ेगा, जो वह नहीं जानता। ३२ वीं प्रमेय को सिद्ध करने के लिए आपको १६ वीं, २२ वीं प्रमेयों आदि की सहायता लेनी पड़ेगी। इस प्रकार अन्त में तुम्हें पहली प्रमेय पर आना होगा। इतनी ही नहीं, तुम्हें स्वयंसिद्ध सूत्रों को भी समझाना पड़ेगा। हरेक बात गड़बड़ में पड़ जायगी और कुछ भी सिद्ध नहीं होगा।

ऐसी अस्त-व्यस्त दशा में किसी विज्ञान का अध्ययन नहीं करना चाहिए। विज्ञान का अध्ययन तो नियमबद्ध, युक्तिपूर्ण ढंग से ही करना उचित है। यह वेदान्त-दर्शन, यह वेदान्त-धर्म धर्म भी है और विज्ञान भी। यूरोप में विज्ञान और धर्म में विरोध है, किन्तु यह शिक्षा, जो राम आपको दे रहा है, उन दोनों का समन्वय है। वास्तव में यह विद्या तत्वज्ञान, विज्ञान, और धर्म—इन सबका समन्वय कर देती है।

यह विज्ञानों का विज्ञान है, इसलिए इस पर क्रमपूर्वक, विधि और नियमपूर्वक विचार करना चाहिए। जिन थोड़े से व्याख्यानों को आप लोगों ने सुना है, वे इस तत्वज्ञान के भीतर प्रवेश तक नहीं करते। शुद्ध वेदान्त-दर्शन पर एक भी व्याख्यान अभी तक नहीं दिया गया है। केवल आस-पास के प्रश्नों पर विचार किया गया है। केवल व्याख्यानों में प्रारम्भिक या प्रस्तावनात्मक बातें बतलाई गई हैं। यदि राम को इस अद्भुत विज्ञान और धर्म की स्पष्ट व्याख्या आपके सामने करने का अवसर मिला तो आपके सब संदेह, सारे प्रश्न, आपही आप हल हो जायँगे।

कुछ लोग बहुत ही अधीर होते हैं, वे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। बहुत अच्छा! हम आज उनमें से कुछ प्रश्नों को लेंगे। प्रश्न बड़े ही विचित्र हैं।

कल या परसों की रात एक मनुष्य ने आकर राम से यह प्रश्न किया, "महाशय! आप यह क्या सिखाते हैं" ? "क्या आपके आत्मा है ?" "क्या आप आत्मा के अस्तित्व की शिक्षा देते हैं?" "क्या आप आत्मा में विश्वास करते हैं" राम ने कहा, "नहीं, मेरे पास आत्मा नहीं है।" वह भौंचक्का रह गया।

"अरे, तब तो यह शैतानी धर्म है। उसके आत्मा ही नहीं है।" राम के इस उत्तर का "मेरे आत्मा नहीं है" क्या मतलब है? अमेरिका और यूरोप में धर्म से क्या अभिप्राय है? यहाँ धर्म बैठकों को सजाने की एक वस्तु मात्र है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरे बच्चे, अत्युत्तम भव्य भवन, यह मेरी सम्पति और बैंक में इतने रुपये हैं। यह सब तो मेरे पास हैं, पर फिर भी मुझे कुछ और चाहिए। संचय-वृत्ति के इस भाव से प्रेरित होकर, बटोरने, जमा करने और ग्रहण करने की इच्छा के फेर में पड़कर वह एक वस्तु और संचय करना, ग्रहण करना और बटोरना चाहता है। जैसे सम्बन्धियों के चित्रों के बिना कमरे की सजावट सुन्दर नहीं हो सकती, वैसे ही बिना थोड़े से धर्म के मुझे पूरा संतोष नहीं होता कि मैं पूरा धनाढ्य हूँ। अन्य चीजों के साथ मेरे पास कुछ धर्म भी होना चाहिए, किन्तु पहले और चीजें प्राप्त हो लें और धर्म सबके बाद में आ सकता है।

आप राम को क्षमा करेंगे, यदि उसके मुख से कुछ ऐसे शब्द निकल रहे हैं, जो कुछ लोगों को रुचिकर न हों। राम व्यक्तियों से अधिक सत्य का आदर करता है, और सत्य का आदर करके ही वह आपका वास्तविक आदर करता है, क्योंकि उसके मतानुसार आप सत्य स्वरूप हो, न कि यह मिथ्या आत्मा या शरीर। सत्य ही ऐसा कहने के लिए राम को विवश करता है। इस देश की साधारण प्रार्थनाओं में, ईश्वर का क्या उपयोग किया जाता है? लोग ईश्वर के सामने किस रूप में जाते हैं? जब बच्चा बीमार पड़ता है, अथवा सम्पति को हानि पहुँचने की संभावना होती है, जब शरीर को पीड़ा होती है, तब वे ईश्वर की शरण में पहुँचते,

आँखें मीचते और हाथ ऊपर उठा कर कहते हैं—'ऐ ईश्वर, तुम्हारा निवास स्वर्ग में है, ऐ ईश्वर, तुम आकाश में हो, ऐसे लोगों को ईश्वर पर दया भी नहीं आती कि बादलों में रहने से कहीं उसे सर्दी न लग जाय—"हे ईश्वर! ऐ आकाश-वासी ईश्वर, तू मुझ पर दया कर मेरी सम्पत्ति की रक्षा कर, मेरा शरीर चंगा कर दे, मेरे बच्चे को स्वस्थ कर दे।' क्या यह धर्म है? यहाँ ईश्वर पर केवल इसी अभिप्राय से विश्वास किया जाता है कि जब कभी घर में कोई दिक्कत हो, जब घर कुछ गन्दा हो जाय अथवा टूट-फूट जाय, तब वह बेचारा ईश्वर आकाश से उतरकर आपके घर की बुहारी दे, उसे साफ-सुथरा रखे। क्या ईश्वर का ऐसा उपयोग नहीं किया जाता? क्या यहाँ धर्म केवल तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति के लिए नहीं माना जाता? क्या यही धर्म है? यहाँ मुख्य वस्तु है शरीर, क्षुद्र आत्मा, स्त्री और बच्चे। ईश्वर तो केवल कमरों को साफ-सुथरा करने के निमित्त स्वर्ग से बुलाया जाता है। क्या यह सच्ची बात नहीं है?

सम्पूर्ण भारत में तो नहीं किन्तु कम से कम उन लोगों के लिए, जो धार्मिक वृत्ति के हैं, उनके विषय में मैं कहता हूँ कि इन शिक्षाओं के आधार पर, वेदान्त की शिक्षा के आधार पर—धर्म का यह अर्थ नहीं होता। भारतवर्ष में ईसा की यह शिक्षा—"वैकुण्ठ के साम्राज्य को ढूँढ़ो और अन्य सभी वस्तुयें तुम्हें मिल जायँगी"—जिसे लोग बहुत ही कम सुनते हैं, यह शिक्षा अत्यन्त आग्रहपूर्वक बड़ी ताकीद से सिखाई जाती है। इसका अर्थ है, शरीर, मन, सम्बन्ध, सम्पत्ति, संसार, सब कुछ प्यारे के चरणों में समर्पित कर दो। तब सारा संसार घर बन जाता है, और भलाई करना धर्म।

इस भाँति परम आवश्यक वस्तु, एक मात्र आवश्यक वस्तु (ईश्वर-प्राप्ति) ही हमारा एक मात्र ध्येय होता है। अन्य वस्तुएँ उसी की सहायक या परदेश की चीजें मानी जाती हैं। वहाँ परमेश्वर ही असली घर माना जाता है। ये बाहरी घर तो केवल सरायों या होटलों के तुल्य हैं। इन लोगों को भी अपनी स्त्रियों और बाल-बच्चों की जरूरतों की ओर ध्यान देना पड़ता है। किन्तु वे जीवन में उनका यथोचित स्थान जानते हैं। "तुम्हारे आत्मा है ?" इस प्रश्न पर विचार कीजिये। यह एक अप्रासंगिक प्रश्न है। मेरा एक शरीर है। अब पूछा जाता है, क्या मेरे एक आत्मा भी है ?" राम कहता है "मैं आत्मा हूँ। मैं स्वयं आत्मा हूँ।" "तुम्हारे पास आत्मा है ? यह कहना कितना निरर्थक है, मानों मैं शरीर हूँ, और आत्मा मेरी सम्पति है। मैं आत्मा हूँ। मेरा एक शरीर है, और सारी दुनिया मेरी है।

एक दूसरे मनुष्य ने राम से यह प्रश्न किया था--तुम ईश्वर में विश्वास करते हो ? राम कहता है--मैं ईश्वर को जानता हूँ। विश्वास हम उस वस्तु में करते हैं जिसे हम नहीं जानते होते और जो हम पर बलात् लादी जाती है जिसे हम स्वयं नहीं जानते। ईश्वर में विश्वास करने का अर्थ क्या है ? आप उसके बारे में क्या जानते हैं--ऐसे प्रश्नों का क्या अर्थ हो सकता है ? "मैं परमेश्वर को जानता हूँ। मैं परमेश्वर हूँ, मैं वही हूँ। फिर वह पूछता है, "ईश्वर तुम्हारे अन्दर है।" राम कहता है, देह और दुनिया ईश्वर के भीतर है और वही ईश्वर मैं हूँ। बस, यही राम और उनके दृष्टि-कोण में मौलिक अन्तर है। यहाँ जब कोई मनुष्य मर जाता है, तो लोग कहते हैं, उसने प्रेत त्याग दिया। भारतवासी कहते

हैं, उसने शरीर त्याग दिया। दो विभिन्न दृष्टिविन्दुओं में अन्तर है। यह अच्छा दृष्टान्त है। उसने प्रेत त्याग दिया; मानों उसका वास्तविक आत्मा शरीर था, और आत्मा उस पर ऊपर से टंकी हुई वस्तु थी; मानों उसका आत्मा शरीर था, और आत्मा या प्रेत कोई परदेशी चीज़ थी। हिन्दुस्तानी कहते हैं, मैं आत्मा हूँ, और मैं देह छोड़ता हूँ। जैसे मैं कपड़े बदलता हूँ, ठीक वैसे ही शरीर छोड़ देता हूँ।

एक दूसरा प्रश्न है। "यदि ईश्वर ही सब कुछ है, उसके सिवा कुछ और नहीं, तो संसार में इतना संकट और इतना क्लेश क्यों है?" आप जानते हैं कि वेदान्त की दृष्टि में परमेश्वर ही सब कुछ है, परमेश्वर ही सबमें सब कुछ है, तुम परमेश्वर हो, मैं परमेश्वर हूँ। लोग पूछते हैं क्या तुम ईश्वर के कोई अंश हो? नहीं, नहीं, परमेश्वर के खण्ड नहीं किये जा सकते, परमेश्वर के चीर-चीर कर टुकड़े किये जा सकते। यदि ईश्वर अनन्त है, यदि वह स्वयं अनन्तता है तो तुम परमेश्वर के कोई अंश नहीं हो सकते। तुम तो पूर्ण परमेश्वर हो, न कि परमेश्वर का अंश मात्र।

अब प्रश्न उठता है, यदि ईश्वर सबमें सब कुछ है, तो एक शरीर में वह अपने को क्लेश और कष्ट की दशा में और दूसरे शरीर में गरीबी की दशा में क्यों डालता है? वह भारतवर्ष में महामारी और गरीबी, और अमेरिका में राजनैतिक स्वाधीनता क्यों फैलाता है? परमेश्वर एक मनुष्य को लाखों करोड़ों रुपये का स्वामी और दूसरे को गरीब, भुखमरा, अधपेट रहनेवाला क्यों बनाता है? वह ऐसा क्यों करता है? वह कैसा अन्यायी है? ऐसे प्रश्नकर्ता के समाधान के लिए इस देश में भी और

भारतवर्ष में भी प्रयत्न किये जाते हैं, और अधिकांश मनुष्य कर्मवाद के सिद्धान्त का आश्रय लेते हैं कर्म का सिद्धान्त कार्य-कारण का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का अर्थ है कि मनुष्य आपही अपने भाग्य का विधाता है, प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्थिति और वातावरण की सृष्टि अपनी ही मर्ज़ी से करता है, और इस भाँति ईश्वर सदा न्यायी बना रहता है। लोग स्वयं अपना भाग्य बनाते हैं, अपने प्रारब्ध की सृष्टि आप ही करते हैं। कर्मवाद के सिद्धान्त में प्रवेश करने की ज़रूरत राम को नहीं है। कारण और कार्य का सिद्धान्त भारत से निकला है, और वेदान्त इसे स्वीकार करता है। किन्तु इसका सम्बन्ध केवल व्यावहारिक जगत् से है, इसका सम्बन्ध केवल दृश्य संसार से है। यह वाद प्रश्न की जड़ तक नहीं जाता। कर्मवाद के सिद्धान्तानुसार, जिससे आवागमन के मन्तव्य की व्याख्या होती है, तुम्हारी वर्तमान दशा, वर्तमान परिस्थिति. तुम्हारी भूतकालीन आकांक्षाओं और कर्मों का फल है। इस प्रकार जिस परिस्थिति, जिस वातावरण में तुम हो, जैसा कुछ तुम्हारा भाग्य या प्रारब्ध है, उस सबकी रचना तुम्हारी ही भूतकालीन वासनाओं, इच्छाओं एवं कर्मों के द्वारा हुई है। यदि तुम इस उत्तर की परीक्षा करोगे तो तुम्हें ज्ञात होगा कि यह केवल कठिनाई टाल देता है। उससे प्रश्न का पूरा उत्तर नहीं मिलता। राम इस कर्मवाद का खंडन या विरोध नहीं करेगा। राम इसे पसन्द करता और इसका अनुमोदन करता है। किन्तु वह प्रश्न का दूसरा रुख, दूसरा पहलू सामने लाना चाहता है, जिसकी लोग अमेरिका में नितान्त अवहेला करते हैं, अथवा पूर्ण अवहेला नहीं करते तो उसे पीछे की ओर अवश्य रखते हैं।

कर्म के सिद्धान्त के अनुसार पिछले कर्मों ने तुम्हारी वर्तमान अवस्थाओं में भेद पैदा किया है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि तुम्हारे पूर्व जन्मों में भी, तुम्हारे कर्मों, आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों में अन्तर था। कुछ ऐसे होंगे जो बीमार थे, कुछ धनहीन और कुछ धनी थे। प्रश्न होता है तुम्हारे उस पूर्व जीवन में ऐसे अन्तरों का क्या कारण था? उत्तर यह हो सकता है कि तुम्हारे पूर्व जीवन की अवस्थाओं में भेद उससे भी पूर्ववर्ती जीवन के वैसे ही अन्तरों के कारण होगा। अच्छा, अब इस जीवन से पूर्व पिछले तीसरे जीवन में भेदों का कारण क्या था? उसका कारण होगा, उस जीवन से भी पूर्ववर्ती एक और पहले के जीवन के भेद थे। यह सिद्धान्त तुम्हारी कठिनाई को कई लाख गुना अधिक पेचीदा बना देता है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार, हम देखते हैं कि तुम्हारे पिछले जीवनों में, तुम्हारे पिछले जन्मों में चाहे हम इस कड़ी को अनादिकाल तक पीछे अथवा सृष्टि के आदि तक, यदि ऐसा कोई आदि हो, ले जायँ, फिर भी वहाँ हमें परस्पर भेद मिलेंगे। इस क्रम में सर्वत्र विभिन्नता और विरोध विद्यमान रहता है। अतः प्रश्न का यह कोई ठीक उत्तर न हुआ, प्रश्न केवल अधिक पेचीदा हो जाता है। प्रश्न और भी अधिक प्रबलता से हमारे सामने इस रूप में आता है। क्योंकि परमेश्वर ने अनादि काल से ऐसे भेद कायम रक्खे? यह कैसी बात है कि परमेश्वर अनादि काल से एक स्थान में किसी को धनी और दूसरे स्थान में किसी को निर्धन बनाता आया है? उसने एक स्थान में क्यों किसी को रोगी और दूसरे स्थान में क्यों किसी को स्वस्थ

बनाया ? यह तो बड़ी बात है ! यह भेद कैसे न्याय-संगत माना जा सकता है ? वेदान्त कहता है यह प्रश्न मुझे तुमसे करना चाहिए, न कि तुम्हें वेदान्त से । यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर तुम्हें देना चाहिए । इसे हल करने का उत्तर-दायित्व वेदान्त पर नहीं है । वह एकता में, अभिन्नता में विश्वास करता है, और साथ ही इस व्यावहारिक अनैक्य का भी समाधान करता है ।

उदाहरण के लिए मानो एक अत्याचारी है, और उसके सामने ५ विभिन्न मनुष्य हैं, उससे सर्वथा पृथक् । अब यदि वह मनुष्य ईश्वर के स्थान में हो और वे लोग उसके बनाए हुए जीव, भृत्य, सेवक हों और यदि इस मनुष्य ने अपने एक गुलाम को कारागार में, और दूसरे को एक मनोरम बाग में, और तीसरे को एक भव्य महल में, और चौथे को अपने शृंगार-गृह में, और पाँचवे को हर समय एक भारी बोझ के नीचे दबा रखा तथा उसकी छाती पर विशाल हिमालय जैसा बोझ लाद दिया और उसे हर घड़ी उसी बोझ से दबाये रखा, तो आप ऐसे स्वामी को क्या कहेंगे ? निर्दयी, घोर अन्यायी स्वामी ! यदि परमेश्वर अपने जीवों से भिन्न हो, और एक कौम को बहुत सुखी और दूसरी को बहुत दुखी बनाता हो, और यदि वह एक मनुष्य को बहुत धनी और दूसरे को अति दीन-हीन बनावें, तो आप ऐसे प्रभु को क्या कहेंगे ? निर्दयी घोर निर्दयी, अन्यायी घोर अन्यायी ! यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर उन लोगों को देना है जो परमेश्वर को मानव जाति से भिन्न मानते हैं। वेदान्त परमेश्वर को अपने से बहुत दूर नहीं मानता । ह केवल अपनी आँखें बन्द करके उसे अपने अन्दर देख सकते हैं ।

कल्पना करो कि एक ऐसा स्वामी है जो कभी बाग में जाता है, और कभी महल में जाता है, कभी अँधेरे कारागार में रहता है, और कभी शृंगार-गृह में जाता है, वही स्वयं पाकशाला में जाता है, और स्वयं बोझे के नीचे दबा रहता है। ऐसे स्वामी को आप क्या कहेंगे? क्या वह अन्यायी है? नहीं, नहीं। अन्यायी तो वह तब होता जब वह उन लोगों से भिन्न होता जिनको वह जेलखाने में, बाग में, महल में, या वस्त्रागार में रखता है। किंतु यदि वह खुद ही शृंगार-गृह में जाता है, और स्वयं ही दूसरे स्थानों में जाता है, तो वह अन्यायी नहीं हो सकता। उस पर से सारा दोष हट जाता है।

इस भाँति वेदान्त बतलाता है कि यह प्रत्यक्ष अनेकता, यह ऊपरी विरोध, परमेश्वर के मुख पर एक कलंक होगा, यदि परमेश्वर उन लोगों से भिन्न हो जो कष्ट झेलते हैं और उन लोगों से भिन्न हो जो धनी और गरीब हैं। पर परमेश्वर ही स्वयं सर्व रूप है; स्वयं राम ही है, स्वयं मैं एक स्थान में धनी हूँ, मैं ही स्वयं कारागार में है, स्वयं मैं ही रूपवान हूँ, स्वयं मैं ही कुरूप हूँ, मैं ही बाग में हूँ, और मैं ही निर्जन स्थान में हूँ। फिर आप किसे दोष देंगे? स्वयं दोष लगाने वाला भी मैं हूँ। इस सम्बन्ध में एक बात और कहनी है।

इस देश में वेदान्त का प्रचार करना बड़ा ही कठिन है, जहाँ "मैं" शब्द का व्यवहार शरीर या मन के पक्ष में किया जाता है। इस देश में लोगों को ऐसा कहने की आदत है कि मेरे आत्मा है और इस "मैं" से उन्हें शरीर, मन, बुद्धि, अन्तःकरण या जीव का बोध होता है। परन्तु जिसे वेदान्त का साक्षात् हो गया है, वह इस "मैं" शब्द से देह, मन

अथवा पुनर्जन्म लेने वाले सूक्ष्म शरीर का अर्थ कदापि नहीं ले सकता। 'मैं' यह कुछ नहीं हूँ। मैं यदि हूँ तो परमेश्वर हूँ।

मैं बादशाह हूँ, मैं घोड़े का स्वामी हूँ, मैं सन्यासी हूँ, मैं एक अमेरिकावासी हूँ, मै एक हिन्दू हूँ—ये कथन एक विशेष प्रकार के हैं और "मैं परमेश्वर हूँ" इस कथन से उनकी कोई समता नहीं है। आप इस भेद पर ध्यान दें। "मैं एक बादशाह हूँ" इस कथन में "बादशाह" शब्द मेरी एक उपाधि है। "मैं घोड़े का मालिक हूँ" इस कथन में "घोड़े का स्वामित्व" एक ऐसी पदवी है जिसे मैं पोशाक के रूप में ऊपर से पहन लेता हूँ। जब हम कहते हैं "मैं गरीब हूँ", तब गरीबी एक वस्तु है और 'मैं' कोई दूसरी वस्तु है। गरीबी मानों एक पोशाक है जो ऊपर से धारण कर ली जाती है। किन्तु जब हिन्दू कहता है, "मैं ब्रह्म हूँ"; तब सावधान! ब्रह्म या परमेश्वर शब्द कोई उपाधि नहीं है, कोई गुण नहीं है, कोई पोशाक नहीं है जो तुम अपने आपको वही तुच्छ 'मिथ्या अहं' अहंकार समझते हुए अपने ऊपर धारण कर लेते हो, ब्रह्मत्व या परमेश्वरत्व कपड़े की भाँति नहीं पहना जाता। भारतवासी जब कहता है "मैं ब्रह्म हूँ" तब उसका पदवी जैसा प्रयोजन नहीं होता। यह वक्तव्य ऐसा है जैसा कि यह साँप एक रस्सी है। यह एक मनुष्य है जिसने अन्धकार में रस्सी को साँप समझने की गलती की थी। वहाँ जमीन पर लिपटी हुई एक रस्सी पड़ी थी। इसने उसे साँप समझ लिया और डर कर गिर पड़ा। एक दूसरा व्यक्ति आकर उसे बतलाता है—ए प्यारे भाई! तुम्हारा सर्प तो रस्सी है!" इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि जिसे तुमने भ्रान्ति से साँप समझा था वह साँप नहीं है, रस्सी है। यह कथन उस तरह

का नहीं है जैसा कि मैं सम्राट हूँ। यहाँ रस्सी शब्द कोई गुण नहीं है। यदि तुमने यह कहा होता कि "यह साँप काला है" तो "काला" शब्द 'सर्प' शब्द का गुण होता है। किन्तु जब तुम कहते हो कि साँप रस्सी है, तब रस्सी साँप का गुण नहीं है। कृपया इस पर खूब ध्यान दीजिये। इसे हृदयंगम करना तनिक कठिन जान पड़ता है, किन्तु एक बार इसे समझ लेने पर तुम्हें शंकायें उठाने का कोई अवसर न रह जायगा। इसे ठीक समझिये। "साँप काला है" यह एक प्रकार का कथन है और "साँप रस्सी है" बिलकुल दूसरी तरह का कथन है।

इसी प्रकार "मैं दयालु हूँ", "मैं देवदूत हूँ" एक प्रकार का कथन है, और ज़ब हिन्दू कहता है "मैं परमेश्वर हूँ", तो यह दूसरी तरह का कथन है। जब वह कहता है—"मैं" परमेश्वर हूँ, तो उसका अभिप्राय यह है कि मैं देह नहीं हूँ, जो तुम मुझे समझते हो, मैं वह नहीं हूँ। तुम मुझे भ्रम से मांस और रक्त, हड्डियाँ और नसें समझते हो, किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं हड्डियाँ नहीं हूँ, मैं नसें नहीं हूँ, और न यह साढ़े तीन हाथ का पिंजड़ा हूँ, मैं न मन हूँ, और न बुद्धि। मैं तो आदि स्रोत हूँ, मैं असली शक्ति हूँ, मैं तो स्वयं सतत् हूँ, ब्रह्म हूँ, सच्ची शक्ति हूँ। वही, केवल वही मैं हूँ, उसके सिवा कुछ नहीं।

एक बात और; लोग परमेश्वर को अपने न्यायालय के सामने लाकर पूछना चाहते हैं—'हे परमेश्वर! तू ने ऐसा कार्य क्यों किया, वह मानो उनकी तरह साधारण मनुष्य है जिसे वे साधारण मनुष्य की तरह अपने सामने बुला कर डाँट सकते हैं।

इन सारे सन्देहों और शंकाओं का उद्गम एक कहानी के दृष्टान्त से व्यक्त किया जा सकता है।

भारतवर्ष में एक तेली था। उसके घर में एक अति सुन्दर तोता पला था। एक दिन यह तेली अपनी दुकान से बाहर गया हुआ था। उसका नौकर भी किसी दूसरे काम से चला गया था। केवल तोता दुकान पर था। तेली की अनुपस्थिति में एक बड़ी बिल्ली वहाँ आई। बिल्ली को देख कर तोता डर गया। वह पिंजड़े में था, परन्तु फिर भी वह डर के मारे उछलने लगा। तोते ने अपने पँख फड़फड़ाये, और इधर उधर उछलता रहा, अन्त यह हुआ कि पिंजड़ा, जो दीवाल से टँगा हुआ था, एक बड़े कीमती तेल के मटके पर गिर पड़ा। तेल का मटका टूट गया और तेल बह निकला। कुछ देर के बाद तेली आ गया। अपने मूल्यवान तेल को बहते देख, क्रोध के मारे वह आपे से बाहर हो गया। वह तोते पर खीझ उठा। उसने सोचा कि ज़रूर तोते ने कोई शरारत की है। वह गुस्से से लाल-पीला हो गया। उसका क्रोध शान्त न होता था, क्योंकि तोते ने पिंजड़े को मटके पर गिराकर उसकी प्रायः १००) रु० की हानि कर दी थी। उसने पिंजड़े का दरवाज़ा खोला और तोते के सिर की कलँगी नोच डाली। तोता गंजा हो गया। उसके सिर पर चोटी न रह गई। तोता दो सप्ताह तक चुप रहा, उसने मालिक को रिझाना छोड़ दिया। मालिक अपनी करनी पर बहुत दुखी था। दो सप्ताह के बाद एक ग्राहक तेली की दुकान पर आया। यह ग्राहक उस समय नंगे सिर था, भाग्य से वह गंजा भी था। उसे देखते ही तोता जी खोलकर हँसा। अपना एक साथी देखकर वह बहुत प्रसन्न

हुआ। तब मालिक ने तोते से उस असाधारण उल्लास का कारण पूछा; तू क्यों आनन्द से फूला नहीं समाता? उसने कहा—मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि मैं अकेला ही तेली का नौकर नहीं हूँ। यह मनुष्य भी किसी तेली का नौकर होगा, नहीं तो उसके सिर के बाल कैसे चले जाते, यदि वह किसी तेली का नौकर न होता, तो गंजा कैसे होता?

ठीक इसी तरह के तर्कों का प्रयोग कुछ लोग करते हैं। वे सोचते हैं कि जब हम अपने सारे काम, सारे कर्त्तव्य, हर एक बात किसी न किसी उद्देश्य से अवश्य करते हैं, हमारे हर एक काम में कोई न कोई स्वार्थपूर्ण इच्छा या पूर्व निश्चय रहता ही है तब ईश्वर ने जो इस संसार की सृष्टि की है सो उसने यह काम किसी न किसी प्रयोजन से, किसी न किसी इच्छा से, किसी न किसी पूर्व निश्चय से ही किया होगा। तर्कपूर्ण विचार करने की यह विधि उल्टी है। इस प्रकार हम परमेश्वर को परिमित बना देते हैं। वाह, तुम उसे इधर अनन्त कहते हो और फिर उधर उसे साधारण मनुष्यों की कोटि में खींच लाना चाहते हो। यह ठीक नहीं है!

यही प्रश्न कि ईश्वर ने यह विभिन्नता क्यों पैदा की? एक दूसरे मनुष्य ने दूसरी भाषा में राम से यही पूछा था। "यदि मैं ही सब कुछ हूँ, तो फिर मैं कष्ट क्यों भोगता हूँ?" राम तुमसे केवल इतना पूछता है, "क्या तुम अपने स्वप्नों में अपने आस-पास की हरेक वस्तु नहीं होते?" तुम्हीं हरेक चीज़ होते हो। तुम्हारे स्वप्नों में, पहाड़, नदी, जंगल, और रेगिस्तान, जो दिखाई देते हैं, सब तुम्हारी ही करामात हैं, तुम्हारी ही कारीगरी है, तुम्हारी ही दस्तकारी है, फिर भी

स्वप्नों में जब एक बाघ आता है और तुम्हें खाने दौड़ता है, एक साँप आता है, तुम्हें डसने लगता है, तो तुम उससे डर जाते हो। क्या ऐसा नहीं होता? यद्यपि तुम्हीं सिंह हो, तुम्हीं चीता हो, और तुम्हीं सर्प होते हो।

राम से एक दूसरा प्रश्न पूछा गया था—यदि मैं ईश्वर हूँ, तो मैं हर एक चीज़ को क्यों नहीं जानता। यह तो तुम जानते ही हो कि राम यह उपदेश देता है कि तुम परमेश्वर हो। अच्छा, राम ने उससे पूछा "भाई, यदि तुम परमेश्वर नहीं हो, तो हो क्या? हमें बताओ।" उसने कहा, "मैं यह देह हूँ।" बहुत ठीक! यदि तुम मिथ्या व्यक्तित्व मात्र हो, यदि तुम यह शरीर मात्र हो, तो हमें बताओ कि तुम्हारे सिर पर कितने बाल हैं, क्या सिर तुम्हारा नहीं है? उसने कहा, है, अवश्य है। यदि सिर तुम्हारा है तो कृपया हमें बताइये तुम्हारे सिर पर के बालों की संख्या कितनी है। हमें बताइये कि तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं (यह मनुष्य शरीर-विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता था)। राम ने उससे कहा—तुमने सवेरे भोजन किया ही होगा; हमको बताइये कि सवेरे तुमने जो भोजन किया था, वह कहाँ है? वह आँतों में है? अथवा गुर्दे, पेट, या फेफड़ों में? कहाँ है इस समय वह भोजन? वह कोई उत्तर नहीं दे सका। फिर राम ने कहा—तुम अपने सिर के बालों की संख्या नहीं बता सकते, तथापि बाल तुम्हारे हैं। तुम अपनी हड्डियों और नसों की गिनती चाहे बता सको या न बता सको, किन्तु हड्डियाँ और नसें तुम्हारी हैं। आज सवेरे तुमने जो भोजन किया था वह अभी कहाँ है, यह चाहे तुम बता सको या न बता सको, किन्तु शरीर है तुम्हारा। भोजन तुमने ग्रहण किया था, किसी

दूसरे व्यक्ति ने नहीं खाया था। इसी तरह तुम्हारी बुद्धि आकाश के तारों की संख्या बता सके या न बता सके, तारे सब तुम्हारे हैं। इंग्लैंड में इस समय क्या हो रहा है, तुम्हारी बुद्धि चाहे बता सके या न बता सके, तथापि इङ्गलैंड तुम्हारा है। बुध ग्रह में क्या हो रहा है, चाहे तुम न बता सको, पर बुध ग्रह है तुम्हारा। यदि तुम ये बातें नहीं बता सकते तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वे तुम्हारी नहीं हैं। ये बातें कौन बतलाये? ये बातें बताना उसका काम है जो सान्त हो। तुम बता सकते हो कि वह तसवीर किसकी है (दीवाल की एक तसवीर की ओर इशारा कर), क्योंकि तुम्हें चित्र की उपस्थिति का भान है किन्तु तुम चित्र नहीं हो; अधिष्ठान और वस्तु भिन्न होती हैं। इस चित्र की बातें तुम इसलिए बताते हो कि वह तुमसे भिन्न है। 'तुम' शब्द यहाँ परिच्छिन्न अर्थ में ग्रहण किया जा रहा है। किन्तु यदि तुम वह परम तत्व हो, यदि तुम्हीं हरेक वस्तु हो, यदि तुम्हारे सिवा और कुछ नहीं है, यदि तुम अनन्त हो, यदि ऐसी कोई और वस्तु नहीं है जो तुम्हें परिमित करती, तो तुम्हारे विषय में कौन बतावेगा? देखना और कहना-सुनना वहाँ रुक जाता है। उनकी पहुँच वहाँ तक नहीं होती। शब्द वहाँ नहीं पहुँच सकते।

एक दूसरे मनुष्य ने यह प्रश्न किया, "तुम किस सम्प्रदाय के हो? हिन्दू हो, ब्राह्मण हो?" राम ने उत्तर दिया "नहीं"। "क्या तुम ईसाई हो, यहूदी हो, तुम क्या हो? किस जाति, किस धर्म, किस सम्प्रदाय से तुम संबंध रखते हो?" यदि कोई वस्तु किसी की होती है, तो वह उसकी सम्पत्ति है। किसी जड़-वस्तु या पशु पर किसी का अधिकार

होता है, और ये चीजें उस व्यक्ति की सम्पत्ति मानी जाती हैं, या उसके अधिकार में होती हैं। अरे, क्या राम कोई जड़ वस्तु है? राम किसी सम्पत्ति की तरह नहीं है, जो किसी न किसी की होनी ही चाहिए। वह पशु नहीं है। फिर क्यों वह किसी का हो? सारी दुनिया उसकी है। अमेरिका राम का है। राम तुम्हारी निज आत्मा है। तुम सब मेरे हो, और भारत भी मेरा है। ईसाइयत, मुसलमान धर्म, यहूदी-धर्म, हिन्दू धर्म, वेदान्त, सब के सब राम के हैं।

लघु आत्मायें भले ही अपनी स्वाधीनता बेच दें, परन्तु तुम कदापि ऐसा नहीं करोगे।

लोग कहते हैं कि इस देश में हम स्वाधीन हैं। राजनैतिक स्वाधीनता भले ही उन्हें प्राप्त हो, किन्तु ओह! धार्मिक गुलामी, अमेरिका की सामाजिक गुलामी!! राम तुम्हें बंधन से मुक्त करता है, स्वतंत्रता देता है-विचार और कार्य की स्वतंत्रता प्रदान करता है। जो धर्म राम सिखलाता है, कुछ लोग उसे वेदान्त की उपाधि देते हैं। किन्तु उसे किसी उपाधि की आवश्यकता नहीं। सच्चा वेदान्त केवल वेदों तक परिमित नहीं है। वह तुम्हारे हृदयों में विद्यमान है। इसलिए राम एक बार तुम्हें सदा के लिए बता देना चाहता है कि राम केवल भारतवासी नहीं है। राम अमेरिकन भी है। राम को केवल हिन्दू न मानो, राम ईसाई भी है। राम को इस या उस मत अथवा सम्प्रदाय का गुलाम न समझो। राम आपका अपना आप है, स्वयं स्वाधीनता है।

एक दूसरे मनुष्य ने कहा, "अच्छा, यदि आप परमेश्वर हैं, यदि आप ईसा के समान हैं, तो ईसा ने बड़े-बड़े अद्भुत कार्य किये थे, आप भी कोई अलौकिक कार्य करो, तब हम

तुम पर विश्वास करेंगे।" राम कहता है, "भाई, ईसा ने अलौकिक कार्य किये थे, फिर भी उस पर विश्वास नहीं किया गया था। उसे उत्पीड़ित किया गया, उसे सूली दी गई थी। क्या अलौकिक कार्य तुम्हें विश्वास दिला सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं"।

और अलौकिक कार्य करने का अर्थ क्या है? यह सब है क्या? यदि संसार के सारे चमत्कार यह शरीर कर दिखावे, तो उससे मेरे परमेश्वरत्व, ब्रह्मत्व में रंच मात्र भी वृद्धि न होगी। मैं यह देह नहीं हूँ। मैं तुम्हारी अपनी आत्मा भी हूँ। यदि यह एक देह अद्भुत कार्य करती है, तो क्या हुआ? दूसरी देह अद्भुत काम नहीं करती, किन्तु मैं वह भी हूँ। यदि यह देह तो अद्भुत कार्य सम्पन्न करेगी तो तुम इस देह को परमेश्वर मान लोगे जो एक महान् अनर्थ की बात होगी? ऐसा तुम्हें कदापि नहीं करना चाहिए। राम चाहता है, कि तुम अपने निजात्मा को ही परमेश्वर समझो। केवल इस देह को परमेश्वर मत बनाओ। अद्भुत कार्यों के द्वारा और अपने विशेष व्यक्तित्व की धाक जमा कर राम तुम्हारी स्वाधीनता नहीं हरण करना चाहता। तुम्हें गुलाम बनाना तुम्हारी स्वतंत्रता छीनना राम का काम नहीं, जैसा कि पूर्ववर्त्ती पैगम्बर करते आये हैं।

तुम चाहते हो कि यह देह कोई अलौकिक कार्य करे, किन्तु यह देह मैं नहीं हूँ। मैं तो वही ईश्वर हूँ, जिसने संसार रूपी यह महान् अलौकिक कार्य पहले ही से कर रक्खा है। वही, वही ईश्वर हूँ मैं। यह विशाल विश्व मेरा अलौकिक कार्य है। मैं वही हूँ, यह सम्पूर्ण विश्व जिसकी कारीगरी है।

भारतवर्ष में यह शरीर जिस घर में रहता था, उसमें

एक लड़का भी चाकरी करता था। हर घड़ी राम के संसर्ग में रहने के कारण, एक दिन वह लड़का एक ऊँचे भवन की सबसे ऊँची छत पर चढ़कर उच्च स्वर से पुकारने लगा, "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।" जिस मकान की चोटी से वह चीख़ रहा था उसके अगल बगल के मकानों में जो लोग रहते थे उन्होंने उससे कहा, "यह क्या बक रहे हो, यह क्या कह रहे हो? क्या तुम कहते हो कि तुम ब्रह्म हो? यदि तुम ब्रह्म हो, तो छत से फांद पड़ो और देखें हम कि तुम्हें चोट लगती है या नहीं। यदि तुम्हारे चोट न लगी तो हम तुम्हें ईश्वर मान लेंगे। यदि तुम्हारे चोट लगी तो हम तुम्हें मार डालेंगे, तुम्हें पीड़ा देंगे। तुम ऐसा क्यों बकते हो? ऐसी अधार्मिक बात कहने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

बच्चे में ब्रह्म-भावना की उमंग भरी हुई थी। वह बोला, "ऐ मेरे निजात्मन्! मैं नीचे कूदने के लिए तैयार हूँ, मैं जिस नीचे से नीचे गढ़े को तुम बताओगे उसमें कूदने को तैयार हूँ। मैं जिस समुद्र को तुम बताओ उसमें भी मैं फाँद पड़ूँगा, किन्तु कृपा करके मुझे वह स्थान बताइये, जहाँ मैं पहले ही से विद्यमान न हूँ, क्योंकि फाँदने के लिए ऐसा कोई स्थल भी तो होना चाहिए, जहाँ हम फाँद सकें और जहाँ हम पहले ही से विद्यमान न हों, मुझे ऐसा स्थान बताइये जो मुझसे ख़ाली है, जहाँ मैं अभी विद्यमान नहीं हूँ। मैं तो देवताओं का देवता हूँ। बस, जहाँ मैं पहले ही से विद्यमान नहीं हूँ, ऐसा स्थान मुझे बताइये और मैं फाँद पड़ूँगा। जो पहले ही से सर्वत्र व्याप्त है वह कैसे फाँद सकता है? फाँद तो केवल वही सकता है, जो परिमित हो, एक जगह हो और दूसरी जगह न हो।"

तब वह सज्जन, जिसने लड़के से फाँद पड़ने के लिए कहा था, बोला, "वाह, क्या तुम वह परमेश्वर हो? तुम तो देह हो, देह।" लड़के ने कहा, "यह शरीर तुम्हारी अपनी कल्पना से बना है। मैं यह शरीर नहीं हूँ। तुम्हारे प्रश्न और आपत्तियाँ मुझ तक नहीं पहुँच सकतीं। उनकी पहुँच केवल तुम्हारी कल्पना तक है। इसी तरह, वह कैसे कूद-फाँद सकता है अथवा कैसे ऐसे काम कर सकता है, जो पहले ही से सर्वत्र व्यापक है? एक भी ऐसा स्थल नहीं है, जहाँ वह पहले ही से विद्यमान न हो। मैं तो वही हूँ। यदि मैं केवल इस एक शरीर में मौजूद होऊँ और उस शरीर में, होऊँ तो अवश्य मुझे इस देह द्वारा ऐसे अद्भुत कार्य करने चाहिए ताकि मैं संसार में अपनी परमेश्वरता को सिद्ध करूँ। पर सारे शरीर मेरे हैं। पहले ही से वे मेरे अपने हैं। मुझे केवल अपना अधिकार लेना है। मुझे कुछ बनाना नहीं है; हरेक वस्तु मेरे द्वारा बनी है।"

दूसरा मनुष्य एक और प्रश्न लेकर आया। "वेदों के प्रति आपके भाव क्या है? आपके उनके संबंध में क्या विचार हैं?" राम कहता है. हम वेदों को उसी दृष्टि से देखते हैं जैसे रसायन विद्या को।" "क्या तुम वेदों में विश्वास करते हो?" राम कहता है, "मैं वेदों को जानता हूँ। मैं तुमसे उनके अध्ययन की सिफारिश करता हूँ।" तो क्या हमें वेदों को उसी प्रकार मानना चाहिए जैसा हम इंजिल को मानते हैं?" राम कहता है. तुम इंजील का सत्यानाश कर रहे हो। वेदों को उस ढंग से कदापि न पढ़ो। जिस प्रकार से तुम रसायन विद्या या ज्योतिष की किसी पुस्तक को पढ़ते हो, उसी प्रकार वेदों को भी पढ़ो। अन्ध-विश्वास

के साथ, किसी बात पर पूरी तरह विश्वास मत करो, जैसा कि वेदों के विषय में कुछ हिन्दू करते हैं।" राम कहता है, "जब तुम रसायन विद्या की कोई पुस्तक उठाते हो, तब तुम उसके सिद्धान्तों पर इसलिए नहीं विश्वास कर लेते कि लेवोइसर या लाईबिग ने उन्हें निर्धारित किया है। इन बातों को दूसरों के प्रमाणों पर ग्रहण न करो। जो मत दूसरों के प्रमाणों पर आधारित है वह कोई मत ही नहीं है। स्वयं प्रयोग करो। स्वयं उनकी परीक्षा करो और ठीक वैज्ञानिक ढंग से उन्हें अपनाओ। अपनी स्वाधीनता मत बेचो, अपनी स्वाधीनता सदा बनाये रक्खो। वेदों को इस प्रकार से पढ़ो और केवल तभी तुम वेदों का भाव ग्रहण कर सकोगे, अन्यथा तुम सदा यथार्थ तत्त्व से वंचित रहोगे। वेदों की शिक्षा किसी आलोचना, प्रश्न या शंका से डरती नहीं। आपके सम्पूर्ण पाश्चात्य विज्ञान को उनकी जाँच पड़ताल करने दो, आपका पाश्चात्य प्रकाश (यद्यपि प्रकाश सदा पूर्व से आता है, किन्तु मान लो कि यह पाश्चात्य प्रकाश है) अपनी चकाचौंध करनेवाली किरणों द्वारा प्रकाश की बढ़िया फैलाकर श्रुति के सुंदर मुखमंडल को प्लावित कर दे। किन्तु उसे एक भी काला धब्बा, एक भी काला चिह्न श्रुति के सुन्दर चेहरे पर नहीं मिल सकता। वेदों का विज्ञान से कोई विरोध नहीं। आपके आजकल के आविष्कार और अनुसन्धान तो श्रुति महारानी के केवल चरण धोने के लिए हैं। वे तो अधिकाधिक वेदान्त के पक्ष की पुष्टि कर रहे हैं।

जिन लोगों ने शुद्ध चित्त से वेदों का अध्ययन किया है, उन सब ने मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा की है। शोपनहार वह दार्शनिक है, जो कभी किसी दूसरे दर्शन शास्त्र की तारीफ

नहीं करता था, जो अपने दर्शन को छोड़कर और सब दर्शनों को गाली तक देता था, वेदों के सम्बन्ध में कहता है, "संपूर्ण संसार में उपनिषदों (वेद) के अध्ययन से अधिक हितकर और उन्नायक और कोई अध्ययन नहीं है। जीतेजी उनसे सन्तोप मिला है, और मृत्यु में भी मैं उनसे सन्तोष पाऊँगा।"

शोपेनहार की इस उक्ति पर टीका करता हुआ मैक्स-मूलर लिखता है—

"यदि ऐसे स्वतन्त्र विचार के दार्शनिक के शब्दों को भी किसी प्रकार के समर्थन की आवश्यकता है, तो दुनिया भर के धर्मों और यूरोप के सभी दर्शन शास्त्रों का आजीवन अध्ययन के अनन्तर मैं नम्रतापूर्वक शोपेनहार के अनुभव का अनुमोदन करने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"यदि तत्वज्ञान का उद्देश हो शान्ति और सुखपूर्वक मरने की तैयारी, तो उसके लिए वेदान्त दर्शन अर्थात् वेदों के तत्वज्ञान से बढ़कर मैं किसी और तैयारी को नहीं जानता।"

एक और मनुष्य यह प्रश्न लेकर आया। "इधर देखिये, आपका वेदान्त भारतवर्ष की ही संकीर्ण सीमाओं के भीतर क़ैद है।" ये प्रश्न जिन पर आगे विचार किया जायगा बहुत ही महत्त्वपूर्ण और बहुत ही रोचक हैं। उसका कहना था कि ईसाई धर्म तो सम्पूर्ण संसार में फैल गया है और वेदान्त भारतवर्ष की संकीर्ण सीमाओं में ही बद्ध है, और वह भी केवल शिक्षित वर्गों का धर्म है, जनसाधारण का नहीं। राम कहता है, यदि वास्तव में ईसाइयत कौमों पर शासन करती होती, तो कहीं अच्छा होता। यदि ईसाइयत वास्तव में यूरोप में प्रचलित होती तो राम के लिए बड़े हर्ष की बात होती! किन्तु यूरोप या अमेरिका में जो प्रचलित है

वह ईसाईयत नहीं है, वह तो गिरजाघरपन यानी ईसाइयत का स्वांग मात्र है। चर्चियेनिटी|अर्थात् गिरजाघर की पूजा है।

इसके अतिरिक्त, यदि तुम समझते हो कि असली ईसाईयत ही जनसाधारण में फैली हुई है और यह बात ईसाईयत के पक्ष में बहुत बड़ी दलील है, तो भाई, ऐसे भ्रम में मत पड़ो। शैतान के धर्म के माननेवाले ईसाई धर्म के अनुयायियों से भी कहां अधिक हैं। आप जानते होंगे कि पापाचार, बुरी वासनायें, शत्रुता, विद्वेष, मनोविकार, कामुकता, आदि ही शैतान का धर्म है, और शैतान का धर्म ईसाईयत से कहीं अधिक प्रचलित है।

लंदन के पार्लियामेंट भवन में एक बार एक मनुष्य, जो बड़ा प्रसिद्ध वक्ता था, बीच ही में उखाड़ दिया गया। उसे लोगों ने आगे न बोलने दिया। आप जानते हैं कि बाद में उसने क्या कहा? उसने कहा, "क्या हुआ, यदि बहुमत तुम्हारे पक्ष में है।" उसने दूसरे पक्ष वालों से कहा, रायों को तौलना चाहिए, उनकी गिनती नहीं होनी चाहिए। बहुमत सच्चाई या यथार्थता का कोई प्रमाण नहीं है।

एक समय ऐसा था जब गैलीलियो कोपरनिकस के मत का समर्थन करता था वह कहता था कि पृथिवी। घूमती है, सूर्य नहीं घूमता। वह पूर्ण अल्पमत में था, वास्तव में वह अकेला ही था। और सारा विशाल विश्व उसके विरुद्ध था, सम्पूर्ण बहुमत उसके विरुद्ध था। किन्तु आज सत्य क्या है? अल्पमत की बात सच्ची निकली या बहुमत की? बहुमत और अल्पमत का कुछ महत्व नहीं। एक समय था जब सम्पूर्ण बहुमत रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के पक्ष में था। एक ऐसा समय आया जब वही बहुमत दूसरे पक्ष में हो

गया। एक समय वह था, जब ईसाइयत केवल ग्यारह शिष्यों के ही अल्पमत तक परिमित थी। एक समय ऐसा आया जब कि ईसाइयत, गिरजाघरपन ने देखने-सुनने में बहुमत को अपने पक्ष में कर लिया। बहुमत और अल्पमत कोई महत्व नहीं रखते। हम ठोस शिला पर खड़े हैं, हम सत्य पर स्थित हैं, और सत्य अवश्य विजयी होगा।

दूसरे मनुष्य ने कहा, "देखिये, ईसाई कौमें ही दुनिया में सर्वत्र उन्नति क्यों कर रही हैं? केवल ईसाई राष्ट्रों में ही उन्नति और सभ्यता है"। राम कहता है, "भाई, यदि यूरोप और अमेरिका भारतवर्ष, चीन और जापान से राजनैतिक तथा सामाजिक मामलों में आगे बढ़े हुए हैं तो ईसाईयत उसका कारण नहीं हो सकती। मिथ्या तर्क का उपयोग न करो। यदि सभ्यता और वैज्ञानिक उन्नति का सारा श्रेय ईसाइयत के सिर बाँधा जाता है, तो कृपा करके हमें बतलाइये कि जब गैलीलियो (Galileo) ने वह छोटा सा आविष्कार किया था तब क्यों ईसाईयों ने उसके साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया? ब्रूनो (Bruno) जलाया गया था। किसने उसे जलाया था? ईसाईयत ने ईसाईयत ने! ईसाईयत ने ही हक्सले स्पेंसर और डारविन का घोर विरोध किया। उन्हें अपने आविष्कारों, उन्नति तथा स्वाधीनता के भावों के प्रतिपादन में ईसाईयत द्वारा कभी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। ईसाईयत के विनष्टकारी प्रभावों के होते हुए भी वे आज जीवित हैं। शोपेनहार की क्या गति हुई थी? क्या आप जानते हैं कि उसको कैसे निर्वाह करना पड़ता था? शोपेनहार को उतना ही महान् बलिदान करना पड़ा था जितना कि ईसा ने किया था। ईसा अपने विश्वासों के कारण मर

गया और शोपेनहार अपने विश्वासों के लिए जीवित रहा। और आपको जानना चाहिए कि अपने विश्वासों के पीछे मर जाना उतना कठिन नहीं जितना उनको लेकर जीते रहना। क्या आप जानते हैं कि शोपेनहार के स्वाधीन भाव को रोकने वाला कौन था? उसकी उत्तरकालीन पुस्तकों में वह तेज, वह शक्ति नहीं है जिसके कारण वह अपने पहले लेखों में विख्यात हुआ था। हेगल और कैन्ट के दर्शनों में शिथिलता और कमजोरी कैसे आई—ईसाइयत के कारण! क्या आप जानते हैं कि फिचेट (Fichte) को अपना अध्यापन कार्य क्यों छोड़ना पड़ा था, वह अपने देश से क्यों निकाला गया था? कारण क्या था? ईसाइयत थी। प्रारम्भ से ही ईसाइयत ने उन्नति में कोई सहायता नहीं दी, वरन् ईसाइयत के विरोध में ही उसे आगे बढ़ना पड़ा। कृपया तथ्यों पर अविचार मत करो।

एक भारतप्रवासी अंग्रेज, जो कुछ दिनों भारतवर्ष में रह चुका था, इंग्लैंड लौटने पर अपनी स्त्री से अपनी शक्ति और बल का दर्प करने लगा। वे अपने देहाती घर में रहते थे। एक मौके पर एक भालू आ पहुँचा। वह भारतप्रवासी अंग्रेज तुरन्त पास के पेड़ की चोटी पर चढ़ गया। उसकी स्त्री ने एक हथियार उठा कर उस भालू को मार डाला। तब वह भी पेड़ से उतरा। थोड़ी देर में वहाँ कुछ दूसरे लोग आ गये। उन्होंने पूछा, भालू किसने मारा? उसने कहा, "मैंने और मेरी स्त्री ने भालू का वध किया है।" किन्तु बात ऐसी नहीं थी। काम पूरा हो जाने पर जिस तरह उस अंग्रेज का यह कहना ठीक न था कि मैंने भालू मारा है, उसी तरह तुम्हारी ईसाइयत का हाल है।

विज्ञान की सारी उन्नति, यूरोप और अमेरिका की सम्पूर्ण दार्शनिक उन्नति, उनके आविष्कार और अनुसंधान कैसे सम्पन्न हुए? वेदान्त वृत्ति को अमल में लाने से। वेदान्त का अर्थ है स्वाधीनता, स्वतंत्रता। इस वैज्ञानिक उन्नति का कारण क्या है? स्वाधीनता की भावना, स्वतंत्रता की प्रवृत्ति, बन्धन-मुक्ति की भावना, शारीरिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति लापरवाही का भाव। यही समस्त उन्नति का कारण है और यही है वेदान्त का अज्ञात रूप से व्यवहार लाना। तुम इसे सच्ची ईसाईयत भी कह सकते हो। सच्ची ईसाइयत वेदान्त से भिन्न नहीं है, यदि तुम उसे ठीक-ठीक समझो। लोग कहते हैं कि हमने भूमण्डल से गुलामी प्रथा उठा दी है, और हमने और भी बहुत से सुधार किये हैं। राम कहता है, "भाइयो! क्या गुलामी सचमुच हटा दी गई? अरे, राम तो बहुत चाहता है, कि गुलामी हट गई होती! यदि हम यह कथन भी मान लें कि गुलामी का अन्त हो चुका है, तो उसके दूर होने का कारण ईसाइयत कदापि नहीं है। यदि ईसाइयत में गुलामी को हटा सकने वाली कोई चीज होती तो गत सत्रह सौ साल में ईसाइयत ने गुलामी क्यों नहीं दूर कर दी? तथ्य कुछ दूसरा है। लोग अमेरिका को आये थे। यूरोपीय राष्ट्र स्थानान्तर हो रहे थे, दूसरी कौमों से उनका संसर्ग हो रहा था, और उनको शिक्षा दी जा रही थी, उनके हृदय विशाल हो रहे थे। यह असली, व्यावहारिक वेदान्त है। गुलामी दूर होने का यही कारण था; न कि ईसाइयत। राजनैतिक और सामाजिक अवस्थायें लोगों के हृदय और अन्तःकरण को आन्दोलित कर रही थीं। यदि अच्छी बातों का श्रेय तम ईसाइयत

को देना चाहते हो तो फिर नास्तिकों को दण्ड देना, जादूगरनियों को जलाना, सिर काटने का चक्र चलाना और आप जानते होंगे कि नास्तिकों के लिए न्याय-व्यवस्था क्या वस्तु थी. एक समय सैन फ्रांसिस्को में भी उसका बोलबाला था, कैसा दारुण ! कैसी भीषण !! छाती से खून निकालना. अरे राम को इनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं—ये सब बातें किसके सिर थोपोगे ?

राम अब बहुतेरे प्रश्नों और उत्तरों को छोड़ देता है। उन पर हम फिर कभी विचार करेंगे।

एक प्रश्न और, "भारतवर्ष राजनैतिक दृष्टि से क्यों इतना गिरा हुआ है ?" लोग कहते हैं कि वेदान्त भारत के पतन का कारण है। यह बिलकुल ग़लत है। भारत की दुर्दशा का कारण वेदान्त का अभाव है। आप जानते हैं कि राम अपने को हरेक देश का कहता है। राम यहाँ एक भारतवासी की, एक हिन्दू की, एक वेदान्ती की हैसियत से नहीं आया है। राम तो राम के रूप में आता है, जिसका अर्थ है सर्वव्यापक राम। राम न आपकी चापलूसी करना चाहता है और न भारतवासियों की। राम भारतवर्ष, अमेरिका या अन्य किसी वस्तु पर नहीं खड़ा है। राम का आधार है सत्य. पूर्ण सत्य, सत्य के सिवा और कुछ नहीं। राम सदा इसी आधार पर, इसी दृष्टिकोण से बात करता है राम न भारत की चापलूसी करना चाहता है और न अमेरिका की। सत्य बात यह है कि जब तक वेदान्त भारत की जनता में प्रचलित था. तब तक वह अपनी महिमा के उच्चतम शिखर पर था. तब उसका चक्रवर्ती राज्य था. वह समृद्धिशाली था। फिर एक ऐसा समय आया जब कि यह वेदान्त एक

विशेष श्रेणी के लोगों के हाथों में रह गया। भारत की जनता वेदान्त से वंचित कर दी गई और बस भारत का पतन होने लगा। जनता से वेदान्त का प्रचार जाता रहा। भारतीय जनता एक ऐसे धर्म में विश्वास करने लगी जिसमें 'मैं गुलाम हूँ, मैं गुलाम हूँ, ऐ परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूँ सिखलाया जाता था। यह धर्म यूरोप से भारत में पहुँचा था। यह एक ऐसा कथन है जिसे सुनकर ऐतिहासिक और दार्शनिक कहे जानेवाले लोग चकित होंगे, जो यूरोपियनों को आश्चर्य में डाल देगा, किन्तु राम ने बिना समझे बूझे यह बात नहीं कही है। यह एक ऐसा कथन है, जो सिद्ध हो सकता है, जैसे गणित में दो और दो चार। जो धर्म यह चाहता है कि हम अपने आपको अपनी आत्मा को हेय समझें, उसकी निन्दा करें और अपने को कीड़े मकोड़े, अभागे, गुलाम, पापी कहें, वह धर्म भारतवर्ष में बाहर से आया था, और जब जन-साधारण ने उसे अपना लिया तभी भारत का अधःपात शुरू हुआ। यहाँ आप पूछेंगे फिर यूरोपियनों तथा अमेरिकनों का अधःपतन क्यों नहीं हुआ? यूरोपियन भी तो गुलामी में विश्वास करते हैं—"ऐ परमेश्वर! हम तेरे गुलाम हैं।" राज-नैतिक और सामाजिक दृष्टियों से उनका भी भारतवासियों का सा पतन क्यों नहीं हुआ? इसके लिए दृष्टान्त रूप से एक कहानी कही जायगी, जिसका जिक्र प्रकृतिवादी और विकासवादी लेखक प्रायः किया करते हैं। उनका कहना है कि कभी कभी कमजोरी भी बचाव और जीवन का कारण हो जाती है। सदा योग्यतम ही जीवित नहीं रहते।

टिड्डियों की बहुत बड़ी संख्या एक ओर उड़ी जा रही थी। मार्ग में कुछ टिड्डियों के पंख जाते रहे और वे नीचे गिर

पड़ीं। शेष स्वस्थ टिड्डियाँ उड़ती गईं। किन्तु जब वे एक पहाड़ी पर पहुँचीं जिसमें आग लगी हुई थी, तो सबकी सब नष्ट हो गईं। इस उदाहरण में दुर्बल बचे और योग्यतम नष्ट हुए।

भारतवासी जब कोई बात कहते हैं तो मन से कहते हैं। वे सच्चे हैं और धर्म को अपना सर्वस्व मानते हैं। जब उन्होंने ऐसी प्रार्थना की, "ऐ परमेश्वर! मैं तेरा गुलाम हूँ; ऐ परमेश्वर! मैं तेरा अधम सेवक हूँ; ऐ परमेश्वर! मैं पापी हूँ।" तब वे भीतर और बाहर एकसाँ थे। जब भारतवर्ष की जनता इस तरह प्रार्थना करती थी, तब उसका हृदय शुद्ध था। बस कर्म के अटल और निष्ठुर नियम के अनुसार उन्हें अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण होते देखना पड़ा, और उनकी कामनायें और इच्छायें सफल हुईं। वे गुलाम बना दिये गये। किसके द्वारा? आप पूछेंगे—क्या उन्हें परमेश्वर ने गुलाम बनाया। क्या परमेश्वर की कोई सूरत है, क्या परमेश्वर की कोई आकृति है? परमेश्वर अपने निराकार रूप से तो उन पर शासन कर नहीं सकता था। परमेश्वर आया। कौन परमेश्वर? प्रकाशों का प्रकाश, श्वेतरूप में। वह श्वेत रूप आगमन् अंग्रेजों के स्वच्छ चमड़े के भेष में आया और उन्हें गुलाम बना दिया। यही सारा रहस्य है। इस प्रकार वास्तव में भ्रान्त ईसाईयत अथवा भ्रान्त ईसाई आडम्बर ने (गिरजाघरपन) ही भारत को पतन के गर्त में ढकेला है।

जाओ और भारतवर्ष की वर्तमान दशा देखो, और राम की बात का तुम्हें विश्वास हो जायगा। भारत के दूसरे स्वामी या साधू जो कुछ कहते-सुनते हैं, यदि आप केवल उस पर

विश्वास करेंगे तो धोखा खायँगे। भारत-पतन का कारण एकमात्र केवल वेदान्त का अभाव है। अब, गुलामी की उसी भावना के कारण यूरोपियन क्यों नहीं गुलाम बन गये? यूरोपीय लोग धर्म की अपेक्षा धन की चिन्ता अधिक करते हैं। उनकी प्रार्थनाओं में, उनके धार्मिक कृत्यों में, जैसा कि पहले आपको बताया जा चुका है, ईश्वर केवल एक फालतू चीज़ है, उसे उनके कमरे झाड़-बुहार कर साफ करने पड़ते हैं। उनका धर्म केवल तसवीरों, चित्रों की तरह बैठक को सजाने के लिए है। जो प्रार्थनायें उनके हृदय और सच्ची अन्तरात्मा से निकलती थीं, वे धन-सम्पत्ति और सांसारिक लाभ के लिए होती थीं, भगवान् की गुलामी के लिए नहीं। इसीलिए उनका उत्थान हुआ। यह ठीक कर्म के नियम के अनुसार है। इतिहास हमें बतलाता है कि जब तक भारत के जन साधारण में वेदान्त का प्रचार रहा, तब तक भारत समृद्धिशाली था।

किसी समय में फिनीशिया के रहनेवाले बड़े शक्तिशाली थे किन्तु वे कभी भारत पर चढ़ाई करके विजय नहीं कर सके। मिस्री भी एक समय बड़ी उन्नति पर थे, किन्तु वे भी भारत पर अपना राज्य नहीं जमा सके। एक दिन ईरान का सितारा बुलन्दी पर था, परन्तु कभी उन्हें भारत पर दुश्मनी की नज़र डालने का साहस नहीं हुआ। रोमन सम्राट्, जिनकी गिद्ध-दृष्टि सारे संसार पर पड़ती थी, सम्पूर्ण ज्ञात पृथ्वी पर जिनका शासनाधिकार था, भारत को कभी अपने शासन में लाने का साहस नहीं कर सके—यूनानी जब शक्तिशाली थे तब सदियों तक एक भी बुरी दृष्टि भारत पर नहीं डाल सके। सिकन्दर नाम का एक सम्राट् वहाँ पहुँचा

था जो भूल से महान् सिकन्दर कहलाता है। उन दिनों भी वेदान्त की भावना जनता में प्रचलित थी, वे उससे वंचित नहीं किये गये थे। भारतवर्ष पहुँचने से पहले सिकन्दर ने सारा ज्ञात संसार जीत लिया था। ऐसा बड़ा शक्तिशाली सिकन्दर, जिसका बल बढ़ाने के लिए विपुल ईरानी सेना उसके साथ थी, सम्पूर्ण मिस्री सेना का जो अध्यक्ष था, भारतवर्ष आता है, और एक छोटा-सा भारतीय राजा पुरु उसका सामना करता है और उसे भयभीत कर देता है। इस भारतीय राजा ने उस 'महान्' सिकन्दर को नीचा दिखाया, और उसकी सारी सेनाओं को लौटा दिया। उसकी सेनायें पस्त हो गईं और महान् सिकन्दर लौटने को बाध्य हुआ। यह सब कैसे हुआ था? उन दिनों भारत की जनता में वेदान्त प्रचलित था। तुम इसका प्रमाण चाहते हो? प्रमाण के लिए भारत का वह वृत्तान्त पढ़िये, जो उन दिनों के यूनानी छोड़ गये हैं, इतिहास में तत्कालीन यूनानियों, सिकन्दर के साथियों, का लिखा हुआ भारत का हाल पढ़िये। तुम देखोगे कि उस समय जन-साधारण में असली वेदान्त का प्रचार था और लोग बलिष्ट थे। इसीलिए महान् सिकन्दर को लौटना पड़ा था।

फिर एक ऐसा समय आया जब एक साधारण डाकू महमूद गज़नवी ने सत्रह बार भारतवर्ष को लूटा। सत्रह बार भारत से वह धन-दौलत ले गया जो उसके हाथ पड़ गई। उन दिनों की जनता का वृत्तान्त पढ़िये, और आप देखेंगे कि उस समय जन साधारण का धर्म वेदान्त के ठीक उल्टा हो गया था, जैसे उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव! उस समय भी वेदान्त प्रचलित था, किन्तु केवल कुछ चुने

हुए लोगों में। जनता उसे त्याग चुकी थी और इस प्रकार भारत का पतन हुआ था।

लोग कहते हैं कि राम त्याग का प्रचार करता है और त्याग तो हमें ग़रीब बना देगा। प्यारे, यह बात ठीक नहीं है। यह सच है कि वेदान्त सीखने के लिए तुम्हें वनों की शरण लेनी पड़ती है, हिमालय के जंगलों में अगम्य एकान्त स्थानों में जाना पड़ता है। किन्तु वेदान्त ऐसा उपदेश कदापि नहीं देता, कि तुम्हें सदा फ़क़ीरी की ज़िन्दगी बसर करना चाहिए। कभी नहीं, कभी नहीं। वनों में जाकर निवास करना तो ठीक उसी तरह है जिस तरह विद्यार्थियों को महाविद्यालय जाना पड़ता है। क्या यह सच नहीं है कि कोई भी विज्ञान या तत्वज्ञान सीखने के लिए तुम्हें एकान्त में रहना चाहिए, ऐसे स्थान में तुम्हें रहना चाहिए, जहाँ परेशानियाँ न हों? तुम्हें ऐसे स्थान में रहना चाहिए जहाँ तुम शान्तिपूर्वक बिना किसी गुलगपाड़े के अपना अध्ययन चला सको। इसी प्रकार यदि भारतवासी जंगल में जाकर रहता है, यदि वह वनों में निवास करता है, तो वह केवल अपने को ऐसे स्थान में रखने के लिए जाता है, जहाँ वह विज्ञानों के विज्ञान का पूर्ण ज्ञाता बन सके, जहाँ वह वेदान्त के सच्चे भाव का पूर्ण साक्षात् कर सके। आप जानते हैं कि वेदान्त रसायन विद्या की तरह एक प्रयोगात्मक विज्ञान है। रसायन विद्या में तब तक आप कोई उन्नति नहीं कर सकते जब तक आप उसके अनुरूप प्रयोग न करें। इसी भाँति वह मनुष्य वेदान्त के बारे में कुछ नहीं जान सकता है जो अपनी बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करता। इन्हीं आध्यात्मिक प्रयोगों के लिए एवं इसी बौद्धिक ज्ञान को प्राप्त

करने के लिए लोगों को वनों में जाकर रहना पड़ता है। वन तो विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के तुल्य हैं। ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर वे संसार में आकर उसका प्रचार करते हैं, नित्य के जीवन में उसे घटाते हैं और लोगों को बतलाते हैं कि वे तत्वज्ञान की इस पद्धति को कैसे व्यवहार में ला सकते हैं। आप जानते होंगे कि प्रत्येक ब्राह्मण या हिन्दू को जो पाँच वर्ष वन में बिताने पड़ते थे उनमें वह इसी ज्ञान को प्राप्त करता था और इसे प्राप्त कर उसे दुनिया में आकर काम करना पड़ता था। उनमें से कुछ तो साधारण गृहस्थी के कर्त्तव्यों का भी पालन करते थे। वेदान्त का पूर्ण ज्ञान होने के अनन्तर प्रत्येक व्यक्ति को साधू नहीं बनना पड़ता। यह ठीक ऐसी बात है जैसे कि बहुत से विद्यार्थी साहित्य-शास्त्री या विज्ञान शास्त्री की उपाधि तो प्राप्त करते हैं परन्तु उन सबसे अध्यापक या आचार्य बनने की आशा नहीं की जाती। कुछ मेजिस्ट्रेट होते हैं, कुछ बड़े व्यापारी और कुछ अध्यापक भी हो जाते हैं।

इसी तरह वेदान्त की उपलब्धि, पूरी तरह से वेदान्त के साक्षात् अनुभव का अर्थ है कि आप उस अवस्था को प्राप्त हों, जिसमे सारा संसार आपके लिए स्वर्ग, एक उद्यान समान बन जाय, जिसमें सम्पूर्ण विश्व आपके लिए वैकुण्ठ बन जाय, ताकि जीवन सचमुच जीने के योग्य हो जाय—वे लोग वेदान्त का गलत वर्णन करते हैं जो कहते हैं कि वेदान्त हरेक मनुष्य को फ़कीर बनाना चाहता है। नहीं, नहीं। साधुओं का बाहरी भेष ग्रहण करना ऐसा है जैसे कोई विज्ञान-शास्त्र की परीक्षा पास करने के बाद अध्यापन का व्यवसाय करे।

इसके साथ हमें यह भी ज्ञात है कि इस वेदान्त का

प्रचार उन लोगों ने भी किया है, जो आजीवन सांसारिक कार्यों में लगे रहते थे। वेदान्त निराशावाद नहीं है। जो इस धर्म को निराशावाद बतलाते हैं वे ग़लत कहते हैं। वेदान्त और निराशावाद में बड़ा अन्तर है। वेदान्त तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर है।

वेदान्त कहता है कि यदि तुम अपने शरीर को इस भव-सागर में छोड़ दो और तुम्हारे पास पतवार या डाँड़ पाल या बादबान, भाप या बिजली कुछ न हो तो अवश्य ही तुम्हारी जीवन नौका टूट फूटकर डूब जायगी। ऐसी स्थिति में आप अपनी नौका को पवन और तूफ़ान की मर्ज़ी पर छोड़ देते हैं। वेदान्त कहता है कि संसार क्लेश और दुर्भाग्य से भरा हुआ है केवल अज्ञान के कारण। अज्ञान ही पाप है। अज्ञान ही तुम्हारे-सारे दुर्भाग्यों का कारण है। जब तक तुम अज्ञानी हो तभी तक तुम पीड़ित हो। वेदान्त कहता है—यदि तुम इस अज्ञान को हटा दो, यदि तुम पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर लो, यदि तुम सच्ची आत्मा को जान लो, तो संसार के कारागार तुम्हारे लिए स्वर्ग बन जायंगे। जीवन जीने योग्य बन जायगा, कभी परेशानी न होगी; कभी किसी बात से हैरानी न होगी, कभी चित्त अस्थिर न होगा, मन को कभी उद्विग्नता, उदासी, विषण्णता और मनोवेदना का सामना न करना पड़ेगा। कौन इसे नहीं चाहेगा? क्या यही यथार्थ सच्चाई नहीं है? वेदान्त निराशावाद नहीं है। वेदान्त घोषणा करता है--ऐ दुनिया के लोगो! तुम क्यों इस दुनिया को एकदम नरक बना रहे हो। ज्ञान प्राप्त करो, ज्ञान प्राप्त करो" यही वेदान्त की स्थिति है। वेदान्त में निराशा-वाद का नाम तक नहीं।

यहाँ आपको जानना चाहिए कि ऐसे वेदान्त का प्रचार दुनियादार लोगों ने किया है, उन लोगों ने किया है जिन्हें हम विरक्त किसी प्रकार नहीं कह सकते किन्तु ये लोग त्यागी अवश्य थे।

एक महान् भारतीय राजा अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को त्याग कर वन-गमन करनेवाला था। उसके गुरु ने, (इस शरीर के पूर्व पुरुष ने), उसे इसी वेदान्त की शिक्षा दी। फिर उसने वेदान्त के रहस्य से परिचित हो और सच्चा त्यागी बनकर एक शक्तिशाली सम्राट की भाँति जीवन-यापन किया।

वह बड़ा योद्धा, अर्जुन, जो कुरुक्षेत्र के महासमर का नायक था, अपने सांसारिक कर्म को छोड़ने ही वाला था। उसका कर्तव्य कहता था कि वह युद्ध करे. किन्तु वह उसे त्याग देना चाहता था, साथ ही उससे विमुख होकर साधु होने वाला था. कि इतने ही में कृष्ण उसके सामने उपस्थित हुए। उन्होंने अर्जुन को वेदान्त की शिक्षा दी, और ठीक तरह से समझे हुए इसी वेदान्त ने अर्जुन को साहस बंधाया, अर्जुन में तेज और बल का संचार किया, उसमें कर्मण्यता और जीवन-स्फूर्ति भर दी और लो, फिर वही अर्जुन एक शक्तिशाली सिंह की तरह गरजकर महासमर का अतिपराक्रमी नायक बन गया।

वेदान्त तुम्हें सशक्त और तेज बनाता है, न कि दुर्बल। वेदों में एक वचन है जो बतलाता है कि यह आत्मा, यह सत्य बलहीन मनुष्य के द्वारा कभी, कदापि नहीं प्राप्त किया जा सकती। आत्म-अनुभव दुर्बलों के लिए नहीं है। दुर्बल चित्त, दुर्बल शरीर, दुर्बल वृत्ति इसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकते।

एक महाराजा अपना राज्य-पाट छोड़कर वन में चला

गया। वहाँ उसने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया और सत्य का ज्ञान लाभ करने के बाद उसने फिर राजसिंहासन पर अधिकार किया। पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर उसकी उपस्थिति से सिंहासन की शोभा द्विगुणित हो गई, और पहले वह शोभा कहाँ थी।

यदि त्याग से फकीरी अभिप्रेत नहीं है, तो फिर त्याग का क्या अर्थ है? यह एक उत्कृष्ट विषय है। राम इसे किसी दूसरे समय उठायगा।

यहाँ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का एक वचन है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू मांस इसलिए नहीं खाते, कि वे ईश्वर को सब कहीं उपस्थित मानते हैं। हिन्दू मांस नहीं खाते, वेदान्ती मांस नहीं खाते, यह सत्य है, किन्तु कारण यह नहीं है। कारण कुछ और ही है। किन्तु अब इसकी आलोचना करने के लिए समय नहीं रहा।

कठ ❀ उपनिषद् में एक वचन है।

"If he that slayeth thinks 'I slay'; if he
Whom he doth slay, thinks 'I am slain,' then both
Know not aright! That which was life in each
Cannot be slain, nor slay!"

"यदि वध करने वाला समझता है कि मैं वध करता हूँ,

❀ हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
कठ प्रथम अध्याय द्वितीय वल्ली

यदि वध होने वाला समझता है कि 'मेरा वध होता है,
तो दोनों,
ठीक नहीं जानते ! वह जो दोनों में जीवन रूप है
न मार सकता है और न मारा जा सकता है !

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

माया

अथवा

दुनिया कब और क्यों ?

जनवरी १६०३ में, गोल्डेन गेट हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ एक व्याख्यान ।

❀ ॐ ❀

महिलाओं और सज्जनों के रूप में ऐ माया के शासक, नियामक और अधिनायक आत्मन् !

आज के व्याख्यान का विषय 'माया' है। यह एक ऐसा विषय है जिसे ऊपरी या मोटी दृष्टि वाले समालोचक वेदान्त दर्शन का सबसे अधिक निर्बल पहलू समझते हैं। आज हम इसी निर्बलतम पहलू को उठाते हैं। जिन विद्वानों और दार्शनिकों ने वेदान्त का अध्ययन किया है, वे सभी एकमत से कहते हैं कि यदि इस माया का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण हो सके तो वेदान्त की और सब बातें मान्य होनी चाहिए। वेदान्त की अन्य हरेक बात अत्यन्त स्वाभाविक, स्पष्ट और स्वच्छ, हितकर और उपयोगी है। वेदान्त के विद्यार्थियों के रास्ते में यह 'माया' एक बड़ा अटकाव, एक बड़ा भारी रोड़ा है। यह एक बहुत बड़ा विषय है। इसकी पूर्ण विवेचना के लिए केवल इसी विषय पर कम से कम दस व्याख्यान होने चाहिए और तब कहीं यह विषय इतने स्पष्ट और सरल रूप में उपस्थित किया जा सकता है कि सूर्य तले या पृथ्वी पर एतद्विषयक कोई शंका, सन्देह, या प्रश्न बिना संतोषजनक

समाधान के न रह जायगा। प्रत्येक बात साफ़ समझाई जा सकती है, परन्तु उसके लिए समय चाहिए। जल्दबाज़ पाठकों और जल्दबाज़ श्रोताओं से आशा नहीं की जा सकती कि इसे पूरी तरह समझ लें।

प्रश्न है, 'यह दुनिया क्यों हुई, यह दुनिया कहाँ से हुई?' अथवा वेदान्त की भाषा में यों कह सकते हैं, 'विश्व में यह अविद्या क्यों?' आप जानते हैं कि वेदान्त की शिक्षा में यह विश्व 'मिथ्या' केवल देखने मात्र माना गया है। अविद्या नित्य नहीं है। ये सब दृश्य सत्य अथवा नित्य नहीं हैं। प्रश्न यह उठता है, "ऐसी अविद्या ही क्यों होनी चाहिए थी?" यह अविद्या जो इस दृश्य जगत् का मूल कारण है, अथवा यह माया जो इस सम्पूर्ण 'मैं और तुम' रूपी भेद, अनैक्य और पार्थक्य की जड़ है, यह अविद्या. यह माया शुद्ध स्वरूप आत्मा को क्यों वशीभूत कर लेती है? यह माया या अविद्या परमेश्वर से अधिक शक्तिशालिनी क्यों हो जाती है। यही मुख्य प्रश्न है।

साधारण बोल-चाल में, अन्य दार्शनिकों और धर्मवेत्ताओं की भाषा में प्रश्न है, "इस संसार का अस्तित्व ही क्यों हुआ?" "परमेश्वर ने इस संसार को क्यों रचा?" वेदान्त कहता है, "नहीं, भाई! तुम्हें ऐसा प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है।" वेदान्त साफ़ साफ़ कहता है कि इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है। वह कहता है कि प्रयोगात्मक अनुभव से, प्रत्यक्ष साक्षात्-द्वारा सिद्ध करके हम तुम्हें दिखा सकते हैं कि यह संसार जो तुम देखते हो, वास्तव में परमेश्वर के सिवा कुछ नहीं है, प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा निर्विवाद रूप से हम तुम्हें दिखा

सकते हैं कि सत्य की साधना में जब तुम यथेष्ट ऊँचे चढ़ जाते हो तो यह दुनिया तुम्हारे लिए लोप हो जाती है। किन्तु इस दुनिया का अस्तित्व ही क्यों हुआ था? इस प्रश्न का उत्तर देने से हम विरत रहना चाहते हैं। यह प्रश्न उठाने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। वेदान्त स्पष्ट घोषणा करता है कि वह इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ है, और बस, यहीं पर अन्य धर्मवेत्ता, अन्य मतावलम्बी और सभी चर्मचक्षु वाले दार्शनिक आगे बढ़कर चिल्लाते हैं—"अरे, अरे, वेदान्त-दर्शन अपूर्ण, सर्वथा अपूर्ण है, वह संसार का 'क्यों' 'कहाँ से' नहीं बतला सकता। वेदान्त कहता है—"भाई, इस प्रश्न के, संसार आदि के कारण और आदि स्थान के विषय में जो उत्तर तुम स्वयं देते हो उनकी जाँच पड़ताल करो, खूब सावधानी से उनकी परीक्षा करो तो तुमको मालूम हो जायगा कि तुम्हारे उत्तर कोई उत्तर नहीं हैं। इस प्रश्न पर विचार करना व्यर्थ है, समय को नष्ट करना है, एकदम समय और श्रम का अपव्यय है। यह काम ऐसा है जैसे झाड़ी की दो चिड़ियों की खोज में अपने हाथ की चिड़िया को छोड़ देना। झाड़ी की चिड़ियों तक पहुँचने के पहले वे उड़ जायँगी और अपने हाथ की चिड़िया अपने हाथ से खो दोगे। वह भी उड़ जायगी। वेदान्त कहता है कि दर्शन और विज्ञान मात्र की गति ज्ञात से अज्ञात की ओर होनी चाहिए। घोड़े के आगे गाड़ी को न रक्खो। अज्ञात से आरम्भ करके ज्ञात पर आने का क्या अर्थ होता है!

एक नदी बह रही थी। उसके तट पर खड़े हुए कुछ लोग उसके उद्गम के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क कर रहे थे। उनमें से एक ने कहा, "यह नदी शिलाओं, चट्टानों, पहाड़ियों

से निकली है। पहाड़ियों से जल उमड़ कर सोता बनता है, और वही नदी का कारण बनता है।" दूसरे ने कहा, "अरे, भाई, यह असम्भव है। पत्थर इतने कठोर, इतने नीरस और इतने सुदृढ़ होते हैं और जल कितना सरस तथा कोमल है। भला, कड़े पत्थरों से ऐसा कोमल जल कैसे निकल सकता है? असंभव! असंभव! बुद्धि इस बात को नहीं मान सकती कि कड़े पत्थरों से कोमल पानी बाहर निकल सकता है। यदि पत्थर पानी देता हो तो मैं पत्थर का यह टुकड़ा उठा कर उसे निचोड़ता हूँ। देखो, इससे तो बिलकुल पानी नहीं बहता। अतः तुम्हारा यह कथन निराधार है कि नदी उन पहाड़ों से निकली है। मैं एक सुन्दर कल्पना तुम्हें बताता हूँ। कहीं कोई दीर्घकाय पहलवान होगा और उसी के पसीने से यह नदी बहती होगी। हम नित्य देखते हैं कि जब कोई मनुष्य पसीजता है, तो उसके शरीर से पानी बहने लगता है। यहाँ पानी बह रहा है। अवश्य ही यह किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर से निकला है जो जोर से पसीज रहा है। यह बात युक्तिसंगत मालूम होती है। हमारी बुद्धि इसे स्वीकार कर सकती है। यह बात कुछ यथार्थ सी जान पड़ती है, यही बिलकुल ठीक होगी।" तीसरे ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा भी हो सकता है—कहीं कोई व्यक्ति खड़ा हुआ थूक रहा हो, और यह नदी उसी का थूक है।" इसी प्रकार चौथे और पाँचवें ने अपनी अपनी कल्पनायें उपस्थित कीं।

अब इन लोगों ने कहा, देखो, देखो, हम लोगों की ये कल्पनायें तो युक्तिसंगत मानी जा सकती हैं, क्योंकि पानी के मूल संबंधी ये युक्तियाँ व्यावहारिक हैं। प्रति दिन हम ऐसी घटनायें देखते हैं। यद्यपि नदी के मूल के संबंध में उनकी सारी

कल्पनायें बहुत ही मान्य, उत्तम और स्वीकार योग्य जान पड़ती हैं, किन्तु पत्थरों से जल बहने वाली युक्ति ही जिसे उस मनुष्य की साधारण बुद्धि कभी न मानेगी जिसने पत्थरों से जल उमड़ते कभी नहीं देखा है, जो कभी पहाड़ों पर नहीं गया है, वास्तव में सत्य है। अब इस युक्ति की परम सत्यता का आधार क्या है?' अनुभव, स्वयं परीक्षा, प्रत्यक्ष-अवलोकन।

इसी प्रकार, दुनिया के आदि स्रोत को इस संसार का 'क्यों और कहाँ' का, संसार की सरिता के मूल को, जीवन नदी के उद्गम को विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। उस प्रकार की बुद्धि के लोगों के अनुसार, जिन्होंने नदी का मूल स्रोत थूक अथवा पसीना बताया था, संसार के आदि स्रोत की भी व्याख्या बहुत कुछ उसी प्रकार की होती है जैसी वे प्रतिदिन अपने चारों ओर देखते रहते हैं। वे कहते हैं, 'देखो, यह एक जूता बनानेवाला है जूता बिना किसी मनुष्य और उसकी इच्छा या नमूने के कदापि नहीं बन सकता। एक मनुष्य घड़ी बना रहा है। यदि वह मनुष्य घड़ी बनाने का इरादा और युक्ति न करे तो कैसे घड़ी बन सकती है। यह एक मकान है। किसी मनुष्य द्वारा नक्शा और ढाँचा तैयार किये बिना मकान नहीं बन सकता है। प्रतिदिन ये बातें वे देखते रहते हैं और तभी वे कहा करते हैं, "यह विशाल विश्व हमारे सामने है।" चमार, घड़ीसाज़, कारीगर सरीखा कोई विशेष प्रकार का व्यक्ति हुए बिना यह कैसे बन सकता था इसलिए दुनिया का बनानेवाला कोई न कोई होना ही चाहिए, वही इस संसार को बनाता है। इस प्रकार वे कल्पना करते हैं कि मेघों के

ऊपर एक साकार, सगुण परमेश्वर अवश्य होगा। उस बिचारे पर उन्हें दया भी नहीं आती कि कहीं उसे सर्दी न लग जाय। उनका कहना है कि किसी साकार परमेश्वर ने ही अवश्यमेव इस संसार की रचना की होगी।

उनका तर्क बहुत कुछ स्वीकार योग्य, यथार्थ सा, युक्ति-संगत मालूम होता है। वह उसी प्रकार का तर्क जान पड़ता है, जिस प्रकार उन लोगों ने तर्क किया था कि नदी किसी के पसीने से अथवा शरीर के किसी अन्य अंग से वह निकलती है अतः दुनिया भी उनकी दृष्टि में किसी व्यक्ति द्वारा ही निर्मित हुई होगी।

वेदान्त इस तरह की कोई कल्पना पेश नहीं करना चाहता। उसकी कोई आवश्यकता नहीं। वेदान्त कहता है निरीक्षण करो, प्रयोग करो और प्रत्यक्ष अनुभव से तुम देखोगे कि दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी नहीं है। सो क्यो ? वेदान्त कहता है, यहाँ तक तो मैं तुम्हें समझा सकता हूँ कि पानी उन पत्थरों से फूट कर निकल रहा है। पत्थरों से पानी कैसे और क्यों निकलता है, यह चाहे मैं तुम्हें न बता सकूँ, परन्तु मैं जानता हूँ कि पानी पत्थरों से फूट निकलता है। मेरे साथ उस स्थान तक चलो और तुम स्वयं पत्थरों से पानी उमड़ते हुए देखोगे। यदि मैं यह नहीं बता सकता कि पानी पत्थरों से क्यों और कैसे निकलता है तो मुझे दोष मत दो, क्योंकि वह तथ्य है, तुम स्वयं उसे देख सकते हो !

इसी भाँति वेदान्त कहता है, मैं चाहे तुम्हें बता सकूँ या न बता सकूँ कि यह माया या अविद्या क्यों आई, किन्तु माया का होना है एक तथ्य। वह क्यों आई, मैं तुम्हें शायद यह न बता सकूँ। पर यह एक तथ्य है, अनुभवसिद्ध तथ्य

है। वेदान्तिक ढंग एकदम वैज्ञानिक और प्रयोगात्मक है। वह कोई अनुमान नहीं स्थापित करता, कोई कल्पना (theory) नहीं पेश करता। वह संसार के आदिस्रोत को समझाने की योग्यता का दावा नहीं करता। क्योंकि वह समझ या बुद्धि के प्रदेश से परे की बात है। यह है वेदान्त का पक्ष! यही माया कहलाती है। दुनिया क्यों प्रकट होती है? वेदान्त कहता है, क्योंकि तुम उसे देखते हो। संसार क्यों प्रकट हुआ है? वेदान्त का सीधा साधा उत्तर है, चूँकि तुम उसे देखते हो। यदि तुम न देखो, तो दुनिया कहाँ है। तुम कैसे जानते हो कि दुनिया है? जब तुम उसे देखते हो और देखो न, तो दुनिया कहाँ है? आँखें बन्द कर लो, दुनिया का पाँचवाँ भाग समाप्त, दुनिया का वह अंश-जिसे तुम अपने नेत्रों द्वारा बोध करते हो न रह जायगा। कान बन्द करो, पाँचवाँ हिस्सा और गायब। नाक बन्द करो, एक पाँचवाँ हिस्सा और लुप्त। अपनी किसी इन्द्रिय से काम न लो तो कहीं कोई दुनिया न रह जायगी। दुनिया को तुम देखते हो, इसलिए तुम्हें ही समझना चाहिए कि दुनिया क्यों है। तुम ही उसे बनाते हो। तुम्हें स्वयं उत्तर देना चाहिए। तुम मुझसे क्यों प्रश्न करते हो। तुम ही दुनिया की रचना करते हो।

एक बच्चा था। उसने दर्पण में एक छोटे बच्चे की प्रतिमा, स्वयं अपनी प्रतिमा देखी। किसी ने बच्चे से कहा कि शीशे में एक बहुत ही सुन्दर, प्यारा छोटा बच्चा बैठा है, और जब उसने शीशे में देखा तो उसे एक प्यारा नन्हा लड़का दिखाई भी दिया। बच्चा यह नहीं जानता था कि यह तो स्वयं उसका प्रतिबिम्ब है। उसने प्रतिबिम्ब को शीशे के

अन्दर एक दूसरा अपरिचित लड़का समझा। बाद में बच्चे की माँ ने उसे समझाना चाहा कि शीशे के अन्दर का लड़का उसी का प्रतिबिम्ब मात्र है, असली लड़का नहीं है, तो बच्चे को विश्वास न हुआ। वह समझ ही नहीं सका कि दर्पण में वस्तुतः दूसरा बालक नहीं है। जब माता ने कहा, "इधर देखो, यह शीशा है, इसमें कोई लड़का नहीं है," तब बच्चे ने शीशे में झाँक कर कहा, "ऐ माँ, ऐ माँ, लड़का कैसे नहीं है," । जब लड़का यह कह रहा था कि 'यह लड़का है' तब 'यह लड़का है' कहते ही तुरंत उसने अपना प्रतिबिम्ब शीशे में डाल दिया। माता ने फिर उसे समझाना चाहा कि शीशे में सच्चा लड़का नहीं है। लड़के ने फिर प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण माँगा। लड़का फिर दर्पण के पास गया और बोला, "यह देखो, यह लड़का बैठा है।" शीशे में कोई वस्तु है या नहीं—यह सिद्ध करते समय लड़का शीशे में अपना प्रतिबिम्ब डाल देता था।

ठीक इसी तरह जब तुम मुझसे कहते हो, "दुनिया क्यों हुई, दुनिया कहाँ से हुई, दुनिया कैसे हुई।" ज्योंही तुम दुनिया के आदि स्रोत और उत्पत्ति का कारण तथा देश-काल का अनुसन्धान करने लगते हो, उसी क्षण तुम अपने सामने दुनिया की सृष्टि कर लेते हो। भला, इस प्रकार कैसे तुम दुनिया का मूल और उत्पत्ति-स्थान जान सकते हो? हम कैसे उसका मूल कारण जान सकते हैं? हमें उससे परे का ज्ञान कैसे हो सकता है? हम उसका अतिक्रमण कैसे कर सकते हैं? यह बात और भी स्पष्ट समझ लेना चाहिए, लौकिक और आध्यात्मिक दोनों पहलुओं से। कुछ लोग कहते हैं कि जगदीश्वर ने जगत् को रचा है और वह रचयिता कहाँ

अलग खड़ा हुआ है। यदि वे कोई घर देखते हैं तो वे सोचते हैं कि किसी ने उसे बनाया होगा। इसीलिए वे कहते हैं कि यह दुनिया भी किसी व्यक्ति के द्वारा रची गई होगी। अब प्रश्न यह है कि दुनिया की सृष्टि करने के लिए यह सृष्टि-कर्त्ता कहीं खड़ा अवश्य हुआ होगा। वह कहाँ खड़ा हुआ होगा? यदि वह कहीं खड़ा हुआ था, यदि उसके ठहरने के लिए कोई जगह थी, तो दुनिया उसकी सृष्टि से पहले ही से विद्यमान थी, क्योंकि ठहरने की जगह कहीं दुनिया में ही होना चाहिए। इस प्रकार मानो आप कहते हैं कि दुनिया दुनिया की रचना से पहले ही मौजूद थी। जब तुम इस प्रश्न पर विचार करने लगते हो कि दुनिया का प्रारम्भ कब हुआ, तब तुम दो कल्पनाओं को पृथक पृथक करना चाहते हो—'कब, कैसे और कहाँ से' की कल्पना को एक ओर, और दुनिया की कल्पना को दूसरी ओर। किन्तु क्या "क्या, कब और कहाँ से" ये शब्द, अथवा देश-काल वस्तु की कल्पनायें दुनिया का अंश नहीं हैं? है, अवश्य है। अब आप खूब ध्यान दीजिये, आप सम्पूर्ण विश्व का 'मूल', 'क्यों' और 'कहाँ-से' जानना चाहते हैं। काल, देश और कारण भी दुनिया में हैं, दुनिया से परे नहीं हैं, काल तुम्हारे संसार के बाहर नहीं है। ज्यों ही तुम यह कहना शुरू करते हो कि दुनिया कब शुरू हुई, उसी क्षण दुनिया एक ओर हो जाती है और 'कब' की कल्पना दूसरी ओर। मानो तुम दुनिया को दुनिया से पहले रख लेते हो। यह विषय बहुत ही सूक्ष्म और बहुत ही कठिन है। अब आप कृपया बहुत ध्यान देकर, अत्यन्त सावधानी से सुनें।

दुनिया प्रारम्भ हुई, कब से? इस कथन के द्वारा तुम

जगत् को जगत् ही से पृथक् कर लेना चाहते हो। तुम 'कब' की कल्पना को जगत् से अलग करना चाहते हो, तुम जगत् को 'कब' और 'कैसे' से नापना चाहते हो। किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि 'कब' और 'क्यों' स्वयं जगत् हैं। तुम जगत् से ऊपर उठना, जगत् से परे जाना चाहते हो, तुम जगत् से बाहर कूदना चाहते हो और इस क्रिया के द्वारा स्वयं जगत् का निर्माण कर लेते हो।

एक बार एक इंस्पेक्टर एक स्कूल में आया और लड़कों से यह प्रश्न पूछा, "यदि खरिया का एक टुकड़ा हवा में छोड़ दिया जाय तो वह कब पृथ्वी पर गिरेगा?" एक लड़के ने उत्तर दिया, "इतने सेकिंड में।" "यदि पत्थर का एक टुकड़ा उतनी ही ऊँचाई से नीचे गिराया जाय तो वह कितनी देर में गिरेगा?" लड़के ने उत्तर दिया, "इतने समय में।" तब इंस्पेक्टर ने कहा, "यदि यह वस्तु गिरने दी जाय तो इसे कितनी देर लगेगी?" लड़के ने ठीक उत्तर दे दिया। फिर परीक्षक ने पहेली पूछी, "अच्छा, यदि पृथ्वी गिरे तो उसे गिरने में कितनी देर लगेगी?" लड़के चकराकर रह गये। एक तेज़ लड़के ने उत्तर दिया, "पहले मुझे यह बताइये कि पृथ्वी गिरेगी कहाँ?"

इसी तरह हम यह तो पूछ सकते हैं कि यह दीपक कब जलाया गया था, यह घर कब बनाया गया था, फर्श कब बिछाया गया था,-इत्यादि। किन्तु जब हम यह प्रश्न करते हैं कि पृथ्वी की सृष्टि कब हुई थी, संसार की सृष्टि कब हुई थी, तब यह पहेली भी उसी तरह की है जैसे "पृथ्वी को गिरने में कितना समय लगेगा।" पर पृथ्वी कहाँ गिरेगी? वास्तव में "क्यों, कब और कहाँ से," ये स्वयं जगत् के

अंश हैं, और जब हम सम्पूर्ण संसार के संबंध में इस क्यों, कब, और कहाँ से की चर्चा करते हैं तब मानों एक चक्करदार पहेली बुझाते हैं, जो तर्क-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है। क्या तुम अपने आपसे बाहर कूद सकते हो? नहा। इसी तरह 'क्यों, कब और कहाँ से' स्वयं जगत् के अंग होने के कारण, जगत् के भाग हैं। वे जगत् की, सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या नहीं कर सकते। यही उत्तर है जो वेदान्त ऐसे प्रश्नों का देता है।

अब यही बात दूसरी तरह समझायी जायगी।

यहाँ एक मनुष्य सोया हुआ है। और स्वप्न में सभी प्रकार की वस्तुयें देख रहा है। वही स्वयं द्रष्टा और दृश्य है; एक ओर स्वप्न का द्रष्टा, अथवा यों कहो कि स्वप्न का आश्चर्य-चकित द्रष्टा और दूसरी ओर जंगल, नदियाँ, पहाड़, तथा अन्य वस्तुयें। स्वप्न में स्वप्न की वस्तुयें और स्वप्न का द्रष्टा साथ ही साथ आविर्भूत होते हैं, जैसा कि उस दिन बतलाया गया था। क्या स्वप्न का द्रष्टा, स्वप्न का यात्री बतला सकता है कि ये नदियाँ, पहाड़, झीलें तथा अन्य भूभाग कब, किस समय अस्तित्व में आये? जब तक तुम स्वप्न देखते रहते हो, तब तक क्या तुम कह सकते हो कि ये वस्तुयें कब आविर्भूत हुई थीं? नहीं, कदापि नहीं। जब तुम स्वप्न देखते हो, तब नदियाँ, घाटियाँ, पहाड़ और सुन्दर सुन्दर दृश्य तुम्हें नित्य जान पड़ते हैं, तुम्हें वे सब प्राकृतिक जान पड़ते हैं, मानों सदा से उनका अस्तित्व हो। स्वप्नदर्शी द्रष्टा की हैसियत से तुम कभी यह कल्पना नहीं करते कि तुमने कभी अपना स्वप्न शुरू किया था, तुम उसे सत्य समझते हो और वे सब घाटियाँ, नदियाँ, भूभाग नित्य प्रतीत

होते हैं। तुम कभी उनका मूल कारण नहीं जान सकते। जब तक तुम स्वप्न देखते रहोगे तब तक तुम स्वप्न का 'क्यों, कब और कहाँ से' कदापि नहीं जान सकते। जाग उठो और सारा खेल समाप्त, जागो और सब लोप हो जाता है।

इसी तरह इस दुनिया में तुम्हें सब प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। वे असली जान पड़ते हैं, उनका क्रम अनन्त प्रतीत होता है, जैसे कि स्वप्न में भी सब अनन्त मालूम होता था। तुम स्पष्टतः यह नहीं जान सकते कि स्वप्न कब शुरू हुआ था। क्या आप बतला सकते हैं कि काल-चक्र कब आरम्भ हुआ था ? बुद्धि व्यवस्था के इस आन्तरिक विरोध को कैन्ट ने भी दर्शाया है। काल कब शुरू हुआ था ? जब तुम कहते हो कि काल अमुक समय शुरू हुआ था, तब तुम काल को पहले ही स्थापित कर लेते हो। यह प्रश्न ही सम्भव नहीं। देश कहाँ से शुरू हुआ था ? यह प्रश्न भी असम्भव है। देश से बाहर जहाँ से देश शुरू हुआ हो, तुम एक ऐसे बिन्दु की कल्पना करना चाहते हो जहाँ से देश शुरू हुआ हो। किन्तु देश का प्रारंभ 'कहाँ' की कल्पना से और 'कहाँ' की कल्पना देश की कल्पना से घिरी हुई है। अतः प्रश्न असम्भव है। कार्य-कारण की शृंखला कहाँ से शुरू हुई ? यह प्रश्न असम्भव है। कार्य-कारण की शृंखला क्यों शुरू हुई ? यह प्रश्न भी असम्भव है। अरे यदि तुम कार्य कारण शृंखला का कोई प्रारम्भ मानते हो, तो तुम यह भी देखोगे कि 'क्यों' की कल्पना ही स्वयं कार्य कारण का संबंध है। वह तुमसे परे निकल जाती है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका कोई उत्तर नहीं। देश, काल, वस्तु अथवा कार्य-कारण का इधर या उधर कहीं कोई अन्त नहीं होता। शोपेनहार ने इसे सिद्ध किया

है। हर्बर्टस्पेंसर ने इसे सिद्ध किया है। प्रत्येक विचारवान् तुम्हें बतायेगा कि इनका कोई अन्त नहीं होता। स्वप्न में भी उस विशेष प्रकार के समय का जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई अन्त नहीं होता, चाहे अपने से पहले, चाहे अपने से पश्चात्। स्वप्न में भी उस श्रेणी विशेष के देश की, जिसे तुम स्वप्न में बोध करते हो, कोई सीमा नहीं होती। स्वप्न में उस विशेष श्रेणी की कार्य-कारण-परम्परा का भी कोई अन्त नहीं होता जिसे तुम स्वप्न में देखते हो।

जागृत अवस्था में भी ठीक ऐसा ही है। वे लोग जो प्रत्यक्ष प्रमाण से इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न करते हैं, राह में भटक जाते हैं और एक चक्र में तर्क करते करते अपने को हैरान परेशान करते हैं। तात्पर्य यह, प्रश्न के प्रत्यक्ष प्रमाणों पर आधारित उत्तर असम्भव हैं। स्वप्नदर्शी द्रष्टा जब जागता है, तब सारी समस्या स्वतः हल हो जाती है। और जागने पर स्वप्नदर्शी द्रष्टा कहता है; 'अरे, वह तो स्वप्न था, उसमें कहीं भी कोई सचाई नहीं थी।' इसी भाँति सत्य के साक्षात्कार में जागने पर, मुक्ति की वह पूर्ण अवस्था प्राप्त होने पर, वेदान्त जिसके द्वार सब के लिए खोलता है तुम देख सकोगे कि यह दुनिया एकदम तमाशा थी, केवल क्रीड़ावस्तु, कोरा भ्रम थी और कुछ नहीं।

माया का वही प्रश्न इस तरह भी किया जाता है:—"यदि मनुष्य परमेश्वर है, तो वह अपने असली स्वभाव को क्यों भूल जाता है?" वेदान्त का उत्तर है:—'तुममें जो असली परमेश्वर है वह अपने वास्तविक स्वरूप को कभी नहीं भूलता। तुममें जो वास्तविक परमेश्वर है, वह यदि अपने सच्चे स्वभाव को भूल गया होता, तो फिर निरन्तर

इस विश्व का शासन और नियन्त्रण कैसे करता। फिर भूला ही कौन है? कोई नहीं, कोई नहीं भूला है। ठीक स्वप्न की सी अवस्था है। स्वप्न में, जब तुम विभिन्न प्रकार के पदार्थ देखते हो, वास्तव में वह तुम नहीं होते जो उन पदार्थों को देखता है। वह स्वप्न का द्रष्टा है, जिसकी सृष्टि स्वप्न की अन्य वस्तुओं के साथ ही होती है, वह उन सब पदार्थों को विषय करता है, उन सब दृश्यों को देखता है, तथा उन कंदराओं, पहाड़ों और नदियों में रहता है। असली स्वरूप, आत्मा, सच्चा परमेश्वर कदापि कुछ नहीं भूला है। यह मिथ्याहंकार का ख्याल स्वयं माया की रचना है, या उसी प्रकार का भ्रम है जैसे अन्य पदार्थ। शुद्ध स्वरूप कुछ भी नहीं भूला है। जब तुम कहते हो, परमेश्वर आदमी के जामे में क्षुद्र अहंकारी आत्मा होकर, अपने को भूल क्यों गया, तब वेदान्त कहता है—तुम्हारे इस प्रश्न में वही भूल है जिसे तर्कशास्त्री एक ही चक्र में तर्क करने की भूल कहते हैं। अच्छा, यह प्रश्न तुम किससे कर रहे हो? यह प्रश्न तुम स्वप्नदर्शी द्रष्टा से कर रहे हो या जाग्रत द्रष्टा से? स्वप्नदर्शी द्रष्टा से तुम्हें यह प्रश्न नहीं करना चाहिए क्योंकि वह कुछ नहीं भूला है। वह तो स्वयं भी वैसी ही रची हुई वस्तु है जैसी कि दूसरे पदार्थ जिनको वह देखता है। और जाग्रत अवस्था के असली द्रष्टा से तुम प्रश्न कर नहीं सकते। प्रश्न कौन करेगा? तुम जानते हो कि स्वप्न में प्रश्न करने वाले को स्वयं स्वप्न में होना चाहिए, और जब स्वप्नदर्शी द्रष्टा ही जाता रहा, तब प्रश्न कौन किससे करेगा? प्रश्न करने और उत्तर देने का द्वैत-चक्र केवल तभी तक संभव है जब तक माया का स्वप्न चलता है। तुम केवल स्वप्नदर्शी द्रष्टा

से प्रश्न कर सकते हो और स्वप्नदर्शी द्रष्टा उसके लिए उत्तर-दायी नहीं है। स्वप्नदर्शी द्रष्टा को हटा दो, और फिर सम्पूर्ण दृश्य-संसार, सम्पूर्ण स्वप्न ही लोप हो जायगा। प्रश्न करने के लिए ही कोई कहीं न रह जायगा। कौन किससे प्रश्न करेगा?

यह एक सुन्दर नौका का चित्र है, और यह उस नाविक का चित्र है जो नौका को नदी के आर-पार ले जाता है। मल्लाह बड़ा भला आदमी है, वह नाव का मालिक है, किन्तु केवल तभी तक, जब तक चित्र-स्थिति वास्तविक समझी जाती है। नौका का स्वामी उसी अर्थ में नौका का स्वमी है जिस अर्थ में नौका एक नौका है। वास्तव में न कहीं नौका है, और न कहीं नौका का स्वामी। दोनों ही मिथ्या हैं। किन्तु जब हम किसी बच्चे से कहते हैं, "इधर आओ, इधर आओ, देखो, यह नौका का स्वामी कैसा सुन्दर है", तब नौका का स्वामी और नौका दोनों एक ही तरह के होते हैं। नौका के स्वामी को स्वयं नाव से अधिक वास्तविक कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह वेदान्त के अनुसार, संसार का नियामक, शासक, स्वामी, परमेश्वर या परमेश्वर की कल्पना का सम्बन्ध इस संसार से वैसा ही है, जैसे कि उस चित्र में नाविक का सम्बन्ध नाव से है। जब तक नौका है, तभी तक मल्लाह भी है। जब तुम्हें नौका की अयथार्थता का अनुभव हो जाता है, तब मल्लाह भी लोप हो जाता है।

इसी प्रकार नियामक, शासक, रचयिता, निर्माता तभी तक तुम्हारे लिए सच्चा है, जब तक दुनिया तुमको सच्ची जान पड़ती है। दुनिया को मिट जाने दो, वह कल्पना भी

स्वतः चली जायगी। सृष्टिकर्त्ता की कल्पना में सृष्टि की "क्यों, कब, और कहाँ से" सब निहित है। दुनिया की "कब, क्यों, और कहाँ से," का प्रश्न इस दुनिया से उसी तरह सम्बन्धित है जिस प्रकार मल्लाह नौका से। वे दोनों एक सम्पूर्ण चित्र के भाग हैं। वे दोनों एक ही कोटि के हैं, दोनों ही भ्रम हैं। 'क्यों, कब, और कहाँ-से' का प्रश्न भी भ्रम है। कब, क्यों और कहाँ-से का यह प्रश्न इस दुनिया का सारथी, मल्लाह, या नेता है। जब तुम जागते हो और सत्य का अनुभव करते हो, तब सम्पूर्ण संसार तुम्हारे लिए पट पर चित्रित नौका के समान हो जाता है, और क्यों, कब, कहाँ-से का प्रश्न, जो सारथी या मल्लाह के समान था, लुप्त हो जाता है। वास्तव में परम सत्य में जो काल से परे है, देश से परे है, वस्तु से परे है, क्यों, कब और कहाँ-से का कोई चिह्न नहीं है। लोग कहते हैं कि संसार का कारण एक सगुण, साकार सृष्टिकर्त्ता है। वेदान्त कहता है, नहीं, न इति, यह नेति शब्द संस्कृत में प्रायः आता है, और अमेरिकनों ने इसे बिगाड़ कर 'नट', यह नहीं, बना लिया है। प्रश्न वास्तव में असम्भव, उत्तर के सर्वथा अयोग्य है।

एक दूसरा मनुष्य आकर राम से कहता है, "परमेश्वर स्वयं अपने आप पर मोहित हो गया और उसने यह संसार बनाया, उसने शीशमहल की तरह यह संसार बनाया, और अपने आपको ही इन सब रूपों में देखना चाहा, अतएव उसने यह संसार बनाया है।" वेदान्त कहता है, 'नेति' 'निट,' यह नहीं। तुम्हें ऐसा अनुमान करने का कोई अधिकार नहीं है।

एक और मनुष्य आकर कहता है—इस संसार की रचना

हुए इतने साल बीते। वेदान्त कहता है, 'नेति,' 'निट,' यह नहीं। 'नेति' का ठीक अर्थ है माया। 'मा' का अर्थ है नहीं और 'या' का अर्थ है यह, इस प्रकार माया का अर्थ है यह नहीं। प्रश्न ही ऐसा है जिसका तुम प्रतिपादन नहीं कर सकते। अब प्रश्न होता है, क्या संसार सत्य है? वेदान्त कहता है 'नेति,' 'माया' यह नहीं, 'निट'। तुम इसे सत्य नहीं कह सकते। क्यों नहीं? क्योंकि सत्यता का अर्थ है वह वस्तु जो नित्य है, जो कल, आज और सदा एक सी रहती है। वही सत्यता है। अब क्या संसार सदा बना रहता है? वह सदा नहीं बना रहता। इसलिए वह सत्यता का परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता। प्रगाढ़ निद्रा, सुषुप्ति में वह गायब हो जाता है। आत्मसाक्षात्कार, पूर्णता अथवा मुक्ति की दशा में वह तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार वह सदा विद्यमान नहीं रहता। फलतः उसे सत्य कहने का तुम्हें कोई हक नहीं। क्या संसार असत्य है? वेदान्त कहता है नेति, यह नहीं, माया, निट। यह बड़ी विचित्र बात है। संसार असत्य नहीं है। वेदान्त कहता है, "नहीं, यह असत्य भी नहीं है, क्योंकि असत्य का अर्थ है वह वस्तु जो वेदान्त के कथन के अनुसार कभी नहीं हो, जैसे मनुष्य के सींग। क्या मनुष्य के कभी गौ के समान सींग थे? कभी नहीं। इसलिए यह असत्य है, किन्तु संसार असत्य नहीं है क्योंकि इसी समय वह तुम्हें वर्त्तमान प्रतीत हो रहा है। वह तुम्हें विद्यमान जान पड़ता है, इसलिए तुम्हें उसे असत्य कहने का कोई अधिकार नहीं है। क्या संसार सत्य है? नेति, निट। क्या संसार अंशतः सत्य और अंशतः असत्य है? वेदान्त कहता है माया, नेति, निट।

यह भी नहीं। असत्य और सत्य एक साथ नहीं चल सकते। इन प्रश्नों के यही उत्तर वेदान्त का मायावाद है। इन प्रश्नों के ऐसे उत्तरों का दूसरा नाम मिथ्या है, यह शब्द तुम्हारे अंग्रेजी 'माइथालोजी' शब्द का सगोत्रिय है। इसका अर्थ है वह वस्तु जिसे हम न सत्य कह सकते हैं, असत्य कह सकते हैं और न जिसे हम सत्य तथा असत्य दोनों कह सकते हैं। ऐसी यह तुम्हारी दुनिया है।

नास्तिक कहते हैं कि परमेश्वर कहीं कोई नहीं है। वेदान्त कहता है, नेति, निट, माया। वे गलती पर हैं, क्योंकि उनके पास ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि परमेश्वर नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि एक साकार, सगुण परमेश्वर है। वेदान्त कहता है नेति निट यह नहीं। ऐसी बात कहने का तुम्हें कोई हक नहीं है। वेदान्त कहता है—इस क्षेत्र में तुम्हें पैर नहीं रखना चाहिए, इस क्षेत्र में तुम्हारी बुद्धि काम नहीं दे सकती। संसार में ही तुम्हारी बुद्धि के लिए यथेष्ट काम है उसे वहीं काम करने दो। सीजर (सम्राट्) की जो चीज हो वह सीजर को दो, और परमेश्वर का जो कुछ है वह परमेश्वर को दो।" तुम्हारी बुद्धि के लिए भौतिक लोक में ही, प्रत्यक्ष व्यावहारिक जगत् में ही यथेष्ट काम है आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने के लिए तुम्हें केवल एक राह से आना होगा, केवल एक ही राह से और वह मार्ग है, अनुभव का। वह मार्ग है प्रेम का, भावना का, श्रद्धा का, वरन् ज्ञान का। एक अद्भुत प्रकार का ज्ञान अद्भुत प्रकार का ब्रह्मभाव। यदि तुम इस क्षेत्र में ठीक मार्ग से प्रवेश करते हो, तो कोई प्रश्न न उठेगा, सब समस्यायें अपने आप

हल हो जायँगी। सामवेद के केन उपनिषद में एक वचन * है।

"मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे जानता हूँ, मैं नहीं कह सकता कि मैं उसे नहीं जानता हूँ।

जानने और न जानने से वह परे है।"

ठीक यही बात आधुनिक विद्वान् कहते हैं। हर्बट स्पेंसर अपने फर्स्ट प्रिंसिपल्स (प्रथम सिद्धान्त के प्रथम भाग "दी अननोयेबिल" (अज्ञात) में उसी परिणाम पर पहुँचता है जिस पर वेदान्त पहुँचा है। उसने जो कुछ कहा है उसे तुम्हें पढ़कर सुनाने की जरूरत राम को नहीं मालूम होती है, किन्तु एक छोटा वचन पढ़ा जा सकता है।

"There must exist some principle which being the basis of Science cannot be established by Science. All reasoned out conclusions whatever must rest on some postulate. There must be a place where we meet the region of the Unknowable, where intellect ought not to venture, cannot venture to go."

"ऐसा कोई चीज (परम तत्व) होना ही चाहिए जो विज्ञानो का आधार होते हुए भी विज्ञान के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता। तर्कसिद्ध सभी परिणामों के आश्रय के लिए कोई (निर्विवाद आधार) होना ही चाहिए। यह निर्विवाद आधार एक ऐसा प्रदेश है जो अज्ञात की सीमा को छूता है, जहाँ बुद्धि का प्रवेश नहीं होना चाहिए, जहाँ जाने का साहस बुद्धि कर ही नहीं सकती।"

---

* नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। यो नस्तद वेद तद वेद नो न वेदेति वेद च ॥ २ ॥ (केन खण्ड २)

सभी तत्वज्ञानियों ने इस विषय में प्रायः ऐसा ही मन्तव्य प्रकट किया है। तनिक ध्यान दीजिये। लोग कितनी भूल करते हैं, जब वे परमेश्वर पर किसी प्रयोजन का आरोप करते हैं, जब वे कहते हैं कि परमेश्वर ने ऐसा अवश्य किया होगा। परमेश्वर में दया अवश्य होना चाहिए: परमेश्वर में प्रेम जरूर होना चाहिए, परमेश्वर में भलाई होना चाहिए, परमेश्वर में यह या वह गुण होना ही चाहिए। ऐसे लोग कितनी गलती करते हैं, क्योंकि किसी भी प्रकार का श्रेणी-विभाग करना ससीम बना देना है। तुम एक ही साँस में परमेश्वर को अनन्त और सान्त कहते हो। एक ओर तो तुम कहते हो कि ईश्वर अनन्त है और दूसरी ओर तुम कहते हो 'अरे! उसमें यह गुण है और उसमें वह गुण है।" जब तुम कहते हो, वह अच्छा है तो वह बुरा नहीं है, और वह परिमित हो जाता है। जहां कहीं बुराई होगी, वहां अच्छाई नहीं हो सकती। जब तुम कहते हो कि वह ब्रह्म है, तो वह जीव नहीं है, तुम उसे परिच्छिन्न कर देते हो। तब तुम एक ऐसे स्थान का निर्देश करते हो जहां वह नहीं है। वह तो सब कुछ है। पुनः जब तुम कहते हो कि परमेश्वर ने इस या उस उद्देश्य से संसार की रचना की होगी, तो तुम परमेश्वर को कोई ऐसा व्यक्ति बना देते हो जो तुम्हारे सामने आकर अपनी करतूतों का उसी तरह उत्तर दे सकता है जिस तरह कोई मनुष्य किसी मेजिस्ट्रेट के सामने अपने कृत्यों का विवरण देता है। इसी तरह जब तुम परमेश्वर को किसी बात के लिए उत्तरदायी ठहराते हो अथवा उस पर किसी अभिप्राय उद्देश्य या आदर्श का आरोप करते हो, तब असली तौर पर तुम अपने को तो मेजिस्ट्रेट या न्यायाधीश बनाते हो और

परमेश्वर को अपराधी जैसा--जिसने कि कुछ ऐसे काम किये हैं जिनका हिसाब देने के लिए वह तुम्हारे समक्ष हाजिर हुआ है। यों क्या तुम उसे परिमित नहीं करते। वेदान्त कहता है कि तुम्हें परमेश्वर को अपनी अदालत के सामने लाने का कोई हक नहीं है। यह प्रश्न छोड़ दो, यह वैधानिक, युक्तिसंगत नहीं है।

वेदान्त शब्द का अर्थ है 'किसी भी व्यक्ति की गुलामी न करना। मुसलमान शब्द मुहम्मद के नाम पर निर्भर है। जो कुछ मुहम्मद साहब ने किया या कहा है, उस पर हमें विश्वास करना चाहिए। ईसाईयत शब्द ईसा के नाम की गुलामी है। बौद्धमत एक विशेष नाम--बुद्ध भगवान् की गुलामी है। जोराआस्टर-धर्म (पारसियों का धर्म) एक विशेष नाम, जोराआस्टर की गुलामी है। वेदान्त शब्द किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तित्व की गुलामी नहीं है। वेदान्त का शब्दार्थ है ज्ञान का अन्त या लक्ष्य। वेदान्त शब्द का अर्थ है सत्य, और इस प्रकार इसमें साम्प्रदायिकता की गंध तक नहीं है। वह सार्वभौमिक है। आप इस नाम से अपरिचित हैं, इसलिए उससे विद्वेष न कीजिये। तुम उसे सत्य का नाम दे सकते हो जैसा कि हिन्दुओं ने उसे समझा और प्रचारित किया है। तुम जानते हो सत्य, उसका पता चाहे जहाँ लगा हो जर्मनी में या अमेरिका में, कहीं भी उसका अनुसन्धान हुआ हो, उसका परिणाम सदा एक ही होता है। कहीं भी मनुष्य सूर्य की ओर देखे वह उसे उज्ज्वल और प्रभापूर्ण दिखाई देगा। जो कोई अपने पक्षपातों को दूर हटा देगा, उनसे पूर्णतः मुक्त हो जायगा, वह वेदान्त के सिद्धान्तों से सहमत हुए बिना न रहेगा। ये तुम्हारे अपने सिद्धान्त बन

जायँगे, । ये तुम्हारे अपने तर्क और निष्कर्ष बन जायँगे यदि तुम राग-द्वेषों, अपने पूर्वार्जित धारणाओं और पूर्वार्जित अनुरक्तियों को त्याग कर, खुले दिल से, उदारता-पूर्वक उन पर विचार करो।

राम अब माया की समस्या को तुम्हें हिन्दुओं की उस पद्धति से समझायेगा जिस प्रकार उन्होंने उसे अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों में दर्शाया और समझाया है। वे उसे व्यवहारतः श्लेषात्मक ढंग से समझते हैं। वे माया को अनिर्वचनीय कहते हैं। उसका परिमित अर्थ भ्रांति मात्र है, परन्तु व्याख्या रूप से माया उसे कहते हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जो न सत्य कही जा सकती है और न असत्य कही जा सकती है, तथा जो सत्य और असत्य का मिश्रण भी नहीं है। यह सम्पूर्ण संसार माया या भ्रांति है, और यह भ्रांति दो प्रकार की होती है। एक को हम बाह्य और दूसरी को आन्तरिक भ्रान्ति कह सकते हैं।

मान लो कि अंधेरे में तुम्हें एक सर्प दिखाई दिया। मारे डर के तुम्हारे प्राण निकल गये तुम गिर पड़े और चोट खा गये। वह साँप क्या था? क्या साँप सच्चा साँप था? वेदान्त कहता है कि सर्प सच्चा नहीं था, क्योंकि बाद में जब तुम साँप के स्थान पर गये तब वहाँ साँप न था। तो क्या सर्प झूठा है? वेदान्त कहता है, नहीं, नहीं। तुम्हें सर्प को झूठा कहने का क्या अधिकार! यदि साँप झूठा होता तो तुम्हें चोट ही क्यों लगती। सर्प भ्रान्ति मात्र था, और भ्रांति न सत्य होती है, और न असत्य, क्योंकि असत्य का अर्थ है कोई ऐसी वस्तु जिसका अस्तित्व कभी प्रतीत ही न हुआ हो। तुम इन्द्रधनुष देखते हो। क्या इन्द्रधनुष सत्य है? इन्द्रधनुष

सत्य नहीं है, क्योंकि यदि हम उस स्थान पर पहुँचें तो हम उसे नहीं पायँगे, और यदि हम अपनी स्थिति बदल दें, तो इन्द्रधनुष की स्थिति भी बदली हुई पायँगे। क्या वह असत्य है? नहीं, नहीं, क्योंकि हमें उसका अस्तित्व प्रतीत होता है, उसका हम पर कुछ प्रभाव भी पड़ता है। फिर वह असत्य कैसा! वह एक भ्रान्ति है।

दर्पण में तुम अपनी तस्वीर देखते हो। क्या तुम्हारी यह तसवीर असत्य है? वेदान्त कहता है--नहीं, वह असत्य नहीं है, क्योंकि वह तुम पर एक असर पैदा करती है, वह तुम्हें दिखाई देती है। क्या वह सत्य है? नहीं, वह सत्य भी नहीं है। तुम उधर मुँह फेरो और वह गायब। यह भी एक भ्रान्ति है। अच्छा, भ्रान्ति दो प्रकार की बताई गई है, भीतरी और बाहरी। भीतरी भ्रान्ति वह है जैसे रस्सी में सर्प दिखाई पड़ना। आन्तरिक भ्रान्ति की एक विशेषता यह है कि जब तक भ्रान्त वस्तु रहती है, तब तक असली वस्तु नहीं दिखाई पड़ती, और जब असली वस्तु दिखाई पड़ती है, तब भ्रान्त वस्तु का लोप हो जाता है। दोनों साथ-साथ नहीं चल सकतीं। आन्तरिक भ्रान्ति में वास्तविकता और भ्रान्ति साथ साथ नहीं रह सकते। भ्रान्ति से दिखाई देनेवाले सर्प को, और उसके पीछे आधारभूत असली वस्तु रस्सी को हम एक साथ नहीं देख सकते। यदि सर्प है तो रस्सी नहीं है। और यदि रस्सी है तो साँप नहीं है। दो में से एक को मिटना ही होगा। दो में से एक की उपस्थिति ही संभव है।

किन्तु बाहरी भ्रान्ति में दोनों साथ-साथ चलते हैं, असलियत भी और भ्रान्ति भी। दोनों एक साथ रह सकते हैं, जैसे कि शीशे में। शीशे में अन्दर दिखाई देनेवाला प्रतिबिंब

असत्य है, जिसे वैज्ञानिकों की भाषा में, दृग्गोचर प्रतिबिम्ब कहते हैं, असत्य प्रतिमूर्ति है, भ्रान्ति है। चेहरा असली वस्तु है। यहाँ मुख और उसका प्रतिबिम्ब साथ साथ चलते हैं। भ्रान्ति से दिखाई देनेवाला प्रतिबिम्ब और असली वस्तु, मुख साथ साथ चलते हैं। यही बाहरी भ्रान्ति की विशेषता है। बाहरी भ्रान्ति के संबंध में एक बात और उल्लेखनीय है, इसमें एक माध्यम होता है, जैसे शीशा। यहाँ दर्पण माध्यम है, और दिखाई देने वाली भ्रान्त वस्तु प्रतिबिम्ब है, और वास्तविक वस्तु मुख है। इस प्रकार वास्तव में बाहरी भ्रान्ति में, तीन चीजें एक साथ चलती हैं; और भीतरी भ्रान्ति में एक ही वस्तु एक समय में उपस्थित रहती है।

"हन्ता, यदि समझे कभी मैं हन्ता का मूल,
हन्त समझ ले. मृतक मैं खाकर घातक शूल।
दोनों को ही है नहीं, सच्चा आत्मिक ज्ञान,
अजर अमर है आत्मा और अनन्त महान।
अक्षय जीवन स्रोत, नहीं आत्मा है मरता,
निर्विकार निर्लेप, नहीं आत्मा है हन्ता।"

वेदान्तियों के अनुभव और प्रयोग जो आपके सामने सम्पूर्ण विश्व की एकता सिद्ध करते हैं, आगे चलकर आपको बताये जायँगे। उनके प्रयोगों, अनुभवों धार्मिक विकास तथा सत्य के अनुभवों से सिद्ध होता है कि यह संसार भीतरी और बाहरी—दोनों प्रकारों की भ्रान्तियों से बना हुआ है। जब कोई व्यक्ति धार्मिक जीवन और अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव करना शुरू करता है तब वह केवल बाहरी भ्रान्ति पर विजय प्राप्त करता है। पृथ्वीतल के अन्य धर्मों

ईसाईमत, मुसलमान, बौद्ध, पारसी आदि सभी धर्मों ने, वेदान्त के बिना ही बाहरी भ्रान्ति को जीतने में बड़ा काम किया है जहाँ तक वे बाहरी भ्रान्ति को जीतने में सहायक होते हैं, वहाँ तक वेदान्त कहता है, वे बहुत ठीक हैं। किन्तु वेदान्त एक पग और आगे बढ़ता है। वह आन्तरिक भ्रान्ति को भी जीतता है, जिसके सामने दूसरे धर्म प्रायः ठिठक कर पीछे रह जाते हैं और कहने लगते हैं कि वेदान्त हमारे विरुद्ध है। किन्तु नहीं, वह उनके विरुद्ध नहीं है। वह केवल उसी बात की पूर्ति करता है जिसे उन्होंने शुरू किया था। वह उनकी पूर्णता में सहायक होता है। वह उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं है, वह उनका विरोधी नहीं है। किन्तु आप कहेंगे कि यह तो हमसे संस्कृत में बोलना है, ऐसी भाषा में बोलना है जिसे हम समझते नहीं। इन बातों से आपका प्रयोजन क्या है?

अब राम एक अत्यन्त सूक्ष्म बात कहने वाला है। इसलिए बड़ी सावधानी से ध्यान दीजिये। रस्सी भ्रमवश साँप या भुजंग समझ ली जाती है। रस्सी में साँप प्रकट हो जाता है। किस प्रकार की भ्रान्ति के कारण सर्प का उदय हुआ? सर्प उपर्युक्त भीतरी या आन्तरिक भ्रान्ति के कारण पैदा हुआ। आप जानते हैं कि यदि साँप है, तो रस्सी वहाँ नहीं हो सकती, यदि रस्सी है तो साँप नहीं हो सकता। एक समय में केवल एक ही चीज़ दिखाई पड़ती है। यह भीतरी भ्रान्ति कहलाता है, खूब समझिये। यह सर्प या भुजंग जो हमारे सामने प्रकट हुआ एक भ्रान्तिमूलक पदार्थ है जिसका आविर्भाव आन्तरिक भ्रान्ति के कारण प्रतीत होता है। यह साँप अपने आधारभूत रस्सी के लिए वही काम देता है जो

शीशा उस समय करता है, जब कि हम उसमें देखते हैं। यह तुम्हारे सामने अभी सिद्ध करना है। तुम जानते हो कि शीशा तुम्हारे लिए एक माध्यम का काम करता है। शीशे के माध्यम से, तुम शीशे में एक भ्रान्तिमूलक पदार्थ—अथवा यों कहिए कि एक प्रतिबिम्ब देखते हो। शीशे में प्रतिबिम्बित चित्र के विषय में पहले बताया जा चुका है कि वह बाहरी भ्रान्ति के कारण होता है। अब आपको यह बतलाया जायगा कि रस्सी में साँप आन्तरिक भ्रान्ति के कारण प्रकट होता है। यह साँप अपनी आधारभूत वास्तविकता अर्थात् रस्सी को प्रकट करने के लिए माध्यम अथवा शीशे का काम देगा, और भीतरी भ्रान्ति के इसी स्थल पर हमें बाहरी भ्रान्ति का उदाहरण मिल जायगा।

तुम्हारा लड़का तुम्हारे पास आकर कहता है, "पिताजी, पिताजी, मुझे डर लगता है, वहाँ साँप है।" तुम पूछते हो "बच्चे! साँप कितना लम्बा है?" लड़का कहता है "साँप लगभग दो गज लम्बा होगा।" । अच्छा, साँप मोटा कितना है? बच्चा कहता है, "बहुत मोटा है। वह उस तार जितना मोटा है जो मैंने कल उस जहाज पर देखा था जो सनफ्रांसिस्को से जाने वाला था"। तुम फिर पूछते हो "अच्छा, साँप क्या कर रहा है? वह कहता है "साँप ने गेंडरी मार रखी है"। तुम जानते हो कि साँप वहाँ वास्तव में नहीं है। साँप मिथ्या है, एक रस्सी वहाँ पड़ी हुई है। रस्सी करीब दो गज लम्बी है, और उतनी ही मोटी जितना कि वह तार जो उसने सनफ्रांसिस्को से रवाना होने वाले जहाज पर देखा था। रस्सी धरती में लिपटी पड़ी हुई थी, अब यहाँ मानो रस्सी के गुणों ने—उसकी मोटाई, लम्बाई, और

स्थिति आदि ने अपने आपको उस भ्रान्तिमूलक साँप में प्रतिबिम्बित कर दिया है। रस्सी अपनी मोटाई, अपनी लम्बाई, अपनी स्थिति उस भ्रान्तिमूलक साँप में आरोपित कर देती है। साँप उतना लम्बा नहीं था, वह लम्बाई तो सिर्फ रस्सी की थी। साँप उतना मोटा नहीं था, वह मोटाई तो केवल रस्सी की थी। साँप उस स्थिति में नहीं था, वह स्थिति तो केवल रस्सी की थी। अतः आप खूब ध्यान दें कि प्रारम्भ में भीतरी भ्रान्ति के कारण हमें साँप दिखाई दिया, और बाद में सर्प में हमने दूसरी भ्रान्ति की सृष्टि की, जिसे हम बाहरी भ्रान्ति कह सकते हैं। क्योंकि यहाँ एक के गुणों का आरोप दूसरे पर होता है।

यह दूसरे प्रकार की भ्रान्ति है। अब इन भ्रान्तियों को हटाने के लिए कौन सा साधन अँगीकार किया जाय? हम पहले एक भ्रान्ति को हटायेंगे, और फिर दूसरी को। पहले, बाहरी भ्रान्ति हटाई जायगी, और तब भीतरी भ्रान्ति।

वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण विश्व वास्तव में केवल एक अखण्ड अनिर्वचनीय (सत्ता) के सिवा और कुछ भी नहीं है, जिसे हम सत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि वह वाणी से परे है, देश काल-वस्तु से परे है, सबसे परे है। वास्तविक सत्ता की इस रस्सी में, इस अन्तःस्थित आधार में, तत्त्व में, अथवा चाहे जो नाम तुम इसे दो, उसमें नाम, रूप, और भेद-भावों का प्रादुर्भाव होता है, तुम इस प्रादुर्भाव को जीवन-शक्ति, क्रियाशीलता, स्फुरण आदि कोई नाम दे सकते हो। ये सब नाम-रूप सर्प के तुल्य हैं। इससे आगे हम देखते हैं कि इस भीतरी भ्रान्ति के पूर्ण होने पर बाहरी भ्रान्ति का उदय होता है, और इस बाहरी भ्रान्ति

के कारण हम इन नाम और रूपों, इन व्यक्तियों और प्राणियों में स्वयं एक वास्तविकता का विद्यमान होना मानने लगते हैं, मानों ये सब नामरूपादि स्वतः स्थित हों, अपनी स्थिति के लिए परमुखापेक्षी न हों, वरन् स्वयं अपने बल पर ही स्थिर और जीवित हों—यही दूसरी या बाहरी भ्रान्ति का आविर्भाव है। अब हम (इन भ्रान्तियों के निवारणार्थ) इस क्रम को उलटेंगे, तब यह बात और भी ठीक समझ में आयगी।

हमारे धर्मों ने हमारे लिए क्या किया है? ओह प्यारी ईसाईयत, मुसलमानियत, तुम्हें हमारा इतना धन्यवाद है, संसार के सभी धर्मों को हमारा इतना धन्यवाद है कि उन्होंने बाहरी भ्रान्ति को दूर करने में हाथ बटाया है। इन्होंने मानवजाति को दिखला दिया है कि यदि हम शुद्ध जीवन निर्वाह करें; यदि हमारा जीवन सार्वभौम प्रेम, दैवी आनन्द का जीवन हो, यदि मनुष्य आशा, श्रद्धा, और उदारता का जीवन व्यतीत करे, यदि वह असीम प्रेम चारों ओर फैलाकर समस्त विश्व को परमेश्वर-भाव से प्लावित कर दे; तो हमें हरेक वस्तु में परमेश्वर के दर्शन होने लगें। ज़रा ध्यान दीजिये। सच्चा साधु या सन्त, सच्चा ईसाई, प्यारा ईसाई, नामों में भी परमेश्वर को देखता है। वह शत्रु से घृणा नहीं करता, वह शत्रु को प्यार करता है।

"भाइयो! अपने शत्रु को आत्मवत् प्यार करो।" ईसा की इस शिक्षा को धन्य है! फूलों में भी उन्हें उसी परमेश्वर के दर्शन होते हैं। कभी तुमने भी उस अवस्था का अनुभव किया है? सच्चे धार्मिक लोगों ने ऐसा अनुभव किया है। फूल तुमसे बोलते हैं, और पत्थर तुम्हें धर्मोपदेश देते हैं, बहते हुए नदी-नालों में तुम्हें पुस्तकों की शिक्षा मिलती है, तारा-

गण तुमसे वार्तालाप करते हैं, और परमेश्वर हर एक मनुष्य के चेहरे के द्वारा तुम्हें अवलोकन करता है। क्या परमेश्वर को किसी बौद्धिक प्रमाण की जरूरत है? नहीं, वह स्वयं अपना प्रमाण है। वह उस प्रमाण पर स्थित है, जो सम्पूर्ण लौकिक तर्कशास्त्रों और लौकिक तत्वज्ञानों से परे है। जो व्यक्ति सर्वत्र परमेश्वर का अनुभव करता है, जो परमेश्वर में ही रहता सहता, चलता-फिरता और परमेश्वर में ही अपनी सत्ता रखता है, वह स्वयं परमेश्वर है। इस प्रकार के धार्मिक जीवन, अभ्यास और अनुभव तथा प्रयोगों द्वारा, साधक बाहरी भ्रान्ति को जीत लेता है। यह कैसे? तुम जानते हो, तुम्हारा कहना है कि परमेश्वर ही इन सब नाम-रूपों में है, परमेश्वर इन सब अवस्थाओं, आकारों और भेद-भावों में विद्यमान है। ये सब साँप के समान आरोपित पदार्थ हैं। यदि तुम उनके पीछे, नीचे देखोगे तो उनके आधार में तुम्हें साँप के नीचे, अधोस्थित रस्सी के समान 'परम तत्व' दिखाई पड़ेगा। लम्बाई-चौड़ाई और गोलाई का आरोप तुम सर्प पर नहीं करते हो, वरन् अधोस्थित रस्सी पर करते हो। यहाँ पर तुम केवल एक प्रकार की भ्रान्ति को हटाते हो। तुम हरेक वस्तु के पीछे परमेश्वर को देखते हो, और जब तुम धार्मिक जीवन की इस अवस्था में पहुँचते हो, तब तुम अपने मित्रों या शत्रुओं पर कारणों या प्रयोजनों का आरोप नहीं करते, तुम उन सबमें परमेश्वर को देखते हो, तुम हर एक बात में परमेश्वर को, जगन्नियन्ता के संकेत को देखते हो, और कहते हो कि एक ही परमेश्वर, एक ही सर्वात्मा, जो परमेश्वर रूप है, सारे काम कर रहा है। मुझे अपने मित्रों या शत्रुओं पर स्वार्थपूर्ण

अभिलाषाओं का आरोप न करना चाहिए। इस प्रकार हम भ्रान्ति, बाहरी भ्रान्ति को जीत लेते हैं। यह तुम्हारी उन्नति की पहली सीढ़ी है। "भाई, यदि तुम केवल इतना मानते हो कि परमेश्वर इन सारी वस्तुओं में है, तो यह पूर्ण सत्य नहीं है, इससे और आगे बढ़ो।" इन सब नाम-रूपों में और इन समस्त प्रतिमाओं में इन भेदों और प्रभेदों में स्वयं परमेश्वर समाया हुआ है किन्तु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखिये कि ये सब विभिन्न नाम और रूप और प्रतिमायें मिथ्या हैं, जैसे रस्सी में साँप मिथ्या होता है। इस भ्रान्ति से आगे बढ़ो, और तुम उस अवस्था को प्राप्त होगे, जो इन सबसे परे है, जो सम्पूर्ण कल्पना से परे है, और सम्पूर्ण शब्दों से परे है। वह बाह्य और आन्तरिक दोनों भ्रान्तियों से परे है। बस, इस प्रकार तुम देख सकते हो कि वेदान्त सब धर्मों की पूर्ति करता है। वह संसार के किसी धर्म का खण्डन नहीं करता।

अब यह दिखाया जायगा कि "यह संसार इस परमेश्वर ने, या उस परमेश्वर ने, अवश्य ही रचा होगा" ऐसा कहना क्यों अनावश्यक है। यह सिद्ध किया जायगा कि ये नाम-रूप ये विभिन्न आकृतियां और स्थितियाँ ही सारी दुनिया है, इससे इतर यह कुछ नहीं है। देखिये—

ये दो त्रिभुज हैं, और एक आयत। ये दोनों त्रिभुज समद्विभुज हैं, इनकी दो भुजायें बराबर हैं। दोनों समान भुजायें अंक ३ से चिह्नित हैं, और तीसरी भुजायें ४ से। आयत में छोटे पार्श्व ३ से चिह्नित हैं और लम्बे पार्श्व ४ से। ये आकृतियाँ कागज, दफ्ती या किसी ऐसी ही वस्तु से काटी गई हैं। इनको इस प्रकार रखो कि एक संयुक्त आकृति हो

जाय, यानी त्रिभुजों का आधार आयत के लम्बे पार्श्व से
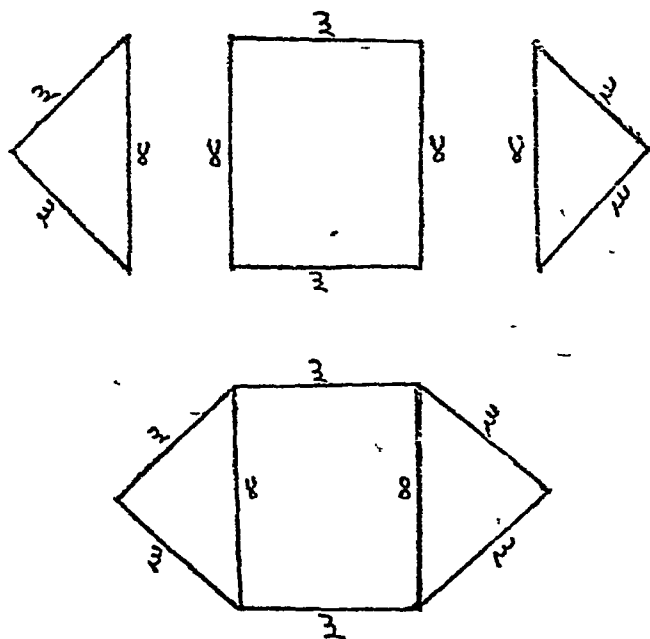
जुड़ जाय। अब यह कौन सी आकृति हुई? यह एक षट्भुज क्षेत्र बन गया जिसकी हर एक भुजा ३ से चिह्नित है। ४ अंकित पार्श्व आकृति के भीतर आ गये और अब वे नये क्षेत्र में पार्श्व के स्थान में नहीं हैं। यह षट्भुज क्षेत्र कैसे बना? यह क्षेत्र उन और त्रिभुजों और आयत की एक भिन्न स्थिति अथवा भिन्न प्रकार के सम्मेलन से बना है। अब इन आकृतियों और इनसे बनने वाली नवीन आकृति के गुणों को ध्यान से देखिये! परिणामभूत नवीन आकृति के गुण उसमें सम्मिलित आकृतियों के गुणों से बिलकुल भिन्न हैं। अंगभूत आकृतियों में न्यून कोण हैं, परिणामभूत नवीन

आकृति में न्यून कोण बिलकुल नहीं है। एक अंगभूत आकृति (आयत) में समकोण हैं. और परिणामभूत नवीन आकृति में एक भी समकोण नहीं है।

अंगभूत आकृतियों में ४ से चिह्नित लम्बे पार्श्व थे; परिणामभूत नवीन आकृति में उतनी लम्बाई का कोई पार्श्व नहीं है। अंगभूत आकृतियों में से कोई भी समभुज नहीं थी। उनके संयोग से बनने वाली नवीन आकृति समभुज है और उसके सब कोण बराबर हैं, यद्यपि किसी भी अंगभूत आकृति के कोण बराबर नहीं थे। तात्पर्य यह. यहां हम एक ऐसी सृष्टि देख रहे हैं, जिसके सब गुण पहले बिलकुल अज्ञात थे। ये बिलकुल नये गुण कहाँ से आ गये? तनिक ध्यान दीजिये। क्या इन एकदम नये गुणों की सृष्टि किसी सृष्टिकर्ता ने की है? नहीं। क्या ये बिलकुल नये गुण अंगभूत क्षेत्रों के परिणाम हैं? नहीं, उनके भी नहीं। वे तो उस नवीन रूप का परिणाम हैं, वे तो उस नवीन स्थिति, नवीन आकार का परिणाम हैं, जिसे वेदान्त में माया कहते हैं। माया का अर्थ है नाम और रूप। ये गुण नाम और रूप का परिणाम हैं, यह बात खूब समझ लीजिये।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। इन दोनों त्रिभुजों में से हर एक को एच यानी हाइड्रोजन गैस मानो और आयत को ओ यानी ओक्सीजन गैस मानो। तुम जानते हो कि हाइड्रोजन के दो अंश साथ एक अंश-ओक्सीजन मिलाने से जल की प्राप्ति होती है। इन दो मूल तत्वों, हाइड्रोजन और ओक्सीजन गैसों में अपने अपने निजी गुण हैं किन्तु परिणामभूत चीज़ एकदम नवीन वस्तु है। हाइड्रोजन और और ओक्सीजन के संयोग से हमें जल मिलता है। देखो,

हाइड्रोजन भभक उठने वाला पदार्थ है, वह जल ऐसा नहीं है। जल में एक ऐसा गुण है जिसका हाइड्रोजेन में पूर्ण अभाव है। ओक्सीजन ज्वलन का सहायक है, किन्तु पानी ऐसी सहायता नहीं कर सकता। उसमें अपना एक निजी गुण है, बिलकुल नया। फिर हम देखते हैं कि हाइड्रोजन बहुत हलका है, किन्तु जल में वैसा हलकापन नहीं है। हाइड्रोजन गुब्बारों में भरा जाता है और हमें ऊपर आकाश में चढ़ा ले जाता है; किन्तु उनका परिणामभूत योग, जल ऐसा नहीं कर सकता। तात्पर्य यह कि अवयवरूप तत्वों के गुण परिणामभूत योग से बिलकुल पृथक होते हैं। परिणामभूत योग को अपने इन गुणों की प्राप्ति कहाँ से हुई? उसको ये गुण अपने रचयिता से मिले अथवा अवयवों से? नहीं, ये गुण तो नये रूप से, नवीन स्थिति से, नवीन आकार से आये। यही बात वेदान्त हमें बतलाता है। वेदान्त तुम्हें बताता है कि जो कुछ तुम इस संसार में देखते हो, वह केवल नाम और रूप का परिणाम है। तुमको इस गुण अथवा उस गुण के लिए किसी सृष्टिकर्त्ता को मानने की जरूरत नहीं, क्योंकि वे नाम और रूप का परिणाम हैं।

तुम्हारे सामने यह तो कोयले का एक टुकड़ा है और वह एक चमकीला, अत्यन्त चमकीला हीरा है। अब कोयले के टुकड़े के गुण और हैं और हीरे के बिलकुल और। हीरा इतना कठोर है कि लोहे को काट सकता है। कोयला इतना कोमल है कि कागज़ पर रगड़ने से कागज़ के टुकड़े पर ही उसका निशान बन जाता है। हीरा इतना अमूल्य, इतना बहुमूल्य और प्रभापूर्ण है; और कोयले का टुकड़ा कितना सस्ता, कुरुप, और काला है। दोनों के भेद पर ही ध्यान दीजिए

तथापि वास्तव में वे दोनों एक, एक ही वस्तु हैं। विज्ञान से यह बात सिद्ध है। "अजी" आप कहेंगे, "यह बात बुद्धि में नहीं समा सकती।" आप चाहे इसे माने या न माने—पर यह एक तथ्य है। बस, इसी तरह वेदान्त आप से कहता है कि यह एक बुरी वस्तु है, और यह एक अच्छी वस्तु है। हीरा अच्छा है और कोयला खराब है। यह एक वस्तु है जिसे तुम खराब कहते हो, और वह एक वस्तु है जिसे तुम अच्छा कहते हो। यह एक वस्तु है जिसे तुम मित्र कहते हो और यह एक वस्तु है जिसे तुम शत्रु समझते हो। किन्तु वास्तव में उनके नीचे एकदम एक,' एक ही वस्तु स्थित है, ठीक ऐसे जैसे कि कार्बन ही कोयले के रूप में प्रकट होता है और वही कार्बन हीरे में। जो वास्तव में एक और एक ही ईश्वर है, जो दोनों स्थानों में प्रकट होता है। नाम और रूप में भेद है, और किसी बात में नहीं। वैज्ञानिक तुम्हें बतलायेंगे कि कार्बन के कण कोयले में जिस प्रकार से स्थित होते हैं, उससे एक भिन्न प्रकार से वे हीरे में, हीरे के अणुओं में विद्यमान रहते हैं। हीरे और कोयले में भेद नाम और रूप के कारण से है, इसी को हिन्दू माया कहते हैं। ये सारे भेद-भाव नाम और रूप के कारण हैं।

इसी तरह अच्छे और बुरे के भेद का कारण भी माया, नाम और रूप है, और कुछ नहीं; और ये नाम और रूप सत्य नहीं हैं क्योंकि अनित्य हैं। वे मिथ्या इसलिए हैं कि वे एक समय तो दिखाई देते हैं और दूसरे समय नहीं दिखाई देते। यह दृश्य जगत् नाम और रूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; नाम-रूप के विभेदों, परिवर्तनों और संयोगों के सिवा कुछ नहीं है। अब इन विभिन्न परिवर्तनों तथा संयोगों का

कारण क्या है ? उनका कारण है आन्तरिक भ्रान्ति । आन्तरिक भ्रान्ति से उत्पन्न इन नाम-रूपों में एक ही ब्रह्म अपने को प्रकट कर रहा है । संसार के नामों और रूपों में, जो माया मात्र हैं, परमेश्वर स्वयं आविर्भूत होता है । इसका कारण है भीतरी भ्रान्ति । इससे ऊपर उठो और तुम सब कुछ हो । वास्तव में देखता वही है जो सबमें एक जैसा देखता है । उसी मनुष्य की आँखें खुली हुई हैं जो सबमें एक, एक समान, एक परमेश्वर को देखता है ।

गीता के कुछ श्लोक इस भाव को और स्पष्ट करते हैं—

"I am the Sacrifice ! I am the Prayer !
I am of all this boundless Universe
The Father, Mother, Ancestor and God !
The end of Learning ! That which purifies
In lustral water ! I am Om ! I am
Rig, Sama and Yajur. I am
The way, The Fosterer, the Lord, the Judge,
The Witness; the Abode, the Refuge-house,

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥
पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक साम यजुरेव च ॥
गतिर्भर्ता, प्रभु साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥

The friend, the Fountain and the Sea of Life,
Which sends, and swallows up seed and seed-
sower,
Whence endless harvests spring! Sun's heat
is mine,
Heaven's rain is mine to grant or to withhold;
Death am I and Jmmortal Life I am!"

"मैं यज्ञ हूँ; मैं हूँ प्रार्थना!
इस असीम विश्व का मैं हूं
जनक, जननी, पूर्व पुरुष और परमेश्वर,
ज्ञान की पराकाष्ठा हूं मैं. वह जो।
शुचिकर जल में है! पवित्रकारी ॐ वह ॐ मैं हूं।
मैं ऋक्, साम और यजुर हूं।
मैं हूं मार्ग, प्रतिपालक, प्रभु, न्यायाधीश,
साक्षी, निवासस्थान, शरण-निकेत मैं,
मित्र, जीवन का मूल स्रोत और समुद्र.
जो बीज और बीज-बोनेवाले को भेजता और जाता
है निगल।
जहाँ से अनन्त फसलें पैदा होती हैं! सूर्य का ताप भी
मेरा,
आकाश की वर्षा मेरी है, चाहे दूँ या रोकूँ;
मृत्यु मैं हूं, और अमर जीवन मैं ही!"

The melodious song of the Ganges,
the music of the waving pine,
The echoes of the Ocean's war.
the lowing of the kine,

The liquid drops of dew,
The heavy lowering cloud,
The patter of the tiny feet,
The laughter of the crowd,
The golden beam of the Sun,
The twinkle of the silent star,
The shimmering light of the silvery moon
shedding lustre near and far
The flash of the flaming sword,
the sparkle of jewels bright,
The gleam of the light-house-beacon light
in the dark and foggy night,
The apple-bosomed Earth
and Heaven's glorious wealth,
The Soundless sound, the flameless light,
The darkless dark, the wingless flight,
The mindless thought, the eyeless sight,
The mouthless talk, the handless grasp
so tight,

Am I, am I, am I.

गंगा का मधुर गान,
लहराते हुए देवदारु का संगीत,
सागर - समर की प्रतिध्वनियाँ,
गायों का रंभाना,
ओस के तरल बूँद,
भारी अधोगामी मेघ,

नन्हे नन्हे पैरों की पटक,
समूहों की हास्यध्वनि,
सूर्य की सुनहली किरण,
मौन नक्षत्रों की चमक,
रुपहले चन्द्र का कँपता हुआ प्रकाश।
निकट और दूर जिसका उजियाला है।
लपलपाती तलवार की दमक,
चमकीले रत्नों की छटा,
अँधेरी और कोहरेभरी रात में,
प्रकाश-गृह के मार्ग-प्रदर्शक ज्योति
गर्भ में सेप धारण करने वाली भूमि
और वैकुण्ठ की उज्ज्वल धन-सम्पत्ति।
निश्शब्द शब्द, लौ-हीन प्रकाश,
अन्धकार रहित अन्धकार, और
पंखहीन उड़ान,
मनहीन विचार, नेत्रहीन दृष्टि,
मुखहीन बातचीत, हस्तहीन पकड़
अति दृढ़, अति दृढ़
हूँ, मैं मैं ही, मैं ही।

संसार का प्रारम्भ कब हुआ ?

बुधवार, ६ अप्रैल १९०४ का भाषण।

महिलाओं और सज्जनों के रूप में प्यारे आत्मन्!

यह पूछा जाता है, दुनिया कब शुरू हुई थी? 'कब' का अर्थ है किस समय पर। अतः प्रश्न बनता है—किस समय पर दुनिया प्रारम्भ हुई थी? जब कि समय स्वयं दुनिया का एक अंग, अंश मात्र है, तब वही प्रश्न इस रूप में हो जाता है कि समय किस समय पर प्रारम्भ हुआ था? दुनिया कहाँ शुरू हुई थी? 'स्थान' या 'देश' कहाँ शुरू हुआ था? एक यह भी प्रश्न है, 'दुनिया कैसे शुरू हुई थी?' कुछ कुशाग्र-बुद्धि सम्भव है, इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करें। किन्तु राम यह काम उन्हीं के लिए छोड़ देगा। राम अपने को ऐसे कामों में नहीं लगा सकता। कुछ लोग ऐसे हैं जो शौक़ से इन प्रश्नों के हल करने में अपना समय वितावेंगे। किन्तु इससे होता ही क्या है! कुछ दूर बढ़ने पर उनको बरबश रुक जाना पड़ेगा, मानो वज्र जैसी कठोर पत्थर की दीवार उनका मार्ग रोके खड़ी है।

देखिये, यह एक चिमटा है। चिमटा इस चीज़ को, उस चीज़ को तथा अन्य चीज़ों को दबा कर उठा सकता है, किन्तु क्या पलट कर वह उस हाथ को दबाच सकता है जो उसे पकड़े हुए है, उसे परिचालित करता है। इसी तरह देश, काल और वस्तु की यह त्रिमूर्ति संसार भर के दृश्य पदार्थों को आयत्त कर सकती है, किन्तु जो आत्मा उसके पीछे,

उसके आधार में है, उस आत्मा को वह आयत्त नहीं कर सकती।

एक बार चार मनुष्य अस्पताल में भेजे गये थे, क्योंकि उनकी आँखों में मोतियाबिन्द था। उन्हें आशा थी कि अस्पताल में नश्तर द्वारा उनकी आँख बना दी जायगी। मोतियाबिन्द से पीड़ित होने के कारण प्रकृत्या ये लोग बज्र अन्धे थे, और उनकी केवल चार ही इन्द्रियाँ शेष रह गई थीं। एक दिन वे खिड़की के काँच के रंग के सम्बन्ध में विवाद करने लगे। एक ने कहा, "मेरा लड़का विश्वविद्यालय का छात्र है, एक दिन यहाँ आया था और मुझसे कहता था कि 'काँच पीला है।' अतः वह अवश्य पीला होगा।" दूसरे ने कहा, "मेरा चाचा, जो म्युनीसिपल कमिश्नर है, उस दिन यहाँ आया था और मुझसे कहता था कि 'काँच लाल है।' वह बड़ा चतुर है और उसे सब बातें मालूम हैं।" तब तीसरे ने कहा कि "मेरा एक चचेरा भाई, विश्वविद्यालय में अध्यापक है, वह मुझे देखने आया था और उसने मुझसे कहा था कि 'काँच हरा है'। अतः अवश्य ही ठीक कहता होगा"। इसी तरह वे काँच के रंग के सम्बन्ध में परस्पर झगड़ते रहे। तदुपरान्त उन्होंने स्वयं उसे जानने का प्रयत्न शुरू किया कि आखिर शीशा किस रंग का है। पहले उन्होंने उस पर अपनी जीभ चलाई, और स्वाद लेने का प्रयत्न किया। किन्तु रंग इस उपाय से नहीं जाना जा सकता था। तब उन्होंने उसे थपथपाया और उसकी आवाज सुनी। किन्तु रंग का पता इस ढंग से भी न लगा। उन्होंने उसे सूँघने का यत्न किया और फिर उसे टटोला, किन्तु खेद! छूने, सूँघने, सुनने और चखने की इन्द्रियाँ

उन्हें यह न बता सकीं कि काँच किस रंग का है। इसी प्रकार 'अनन्त' को हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं जान सकते। तनिक सोचिये तो—यह कैसी असम्भव बात होगी: यदि 'अनन्त' को आप इन्द्रियों के द्वारा जान लें। तब तो 'अनन्त' को 'सान्त' से अवश्य ही छोटा होना पड़ेगा। महानर्थ! 'अनन्त' को तो हम केवल विश्व-भावना, विश्वानुभूति अथवा ब्रह्म-भावना के द्वारा ही जान सकते हैं। यह दियासलाई मेरे हाथ में है। दियासलाई उस हाथ से छोटी है जो उसे पकड़े है। इसी प्रकार आप समझ सकते हैं कि 'सान्त' क्योंकर 'अनन्त' को ग्रहण नहीं कर सकता? इन्द्रियाँ उसे कैसे जान सकती हैं, जो उनसे परे है। आत्मा के ज्ञान के लिए अपने से बाहर किसी वस्तु का सहारा मत लो, अन्यथा उन अंधों का सा हाल होगा जिन्हें दूसरों ने काँच का रंग बताया था, किन्तु वे खुद नहीं जानते थे कि वास्तव में काँच किस रंग का है, जिन्होंने भाई या लड़के के कहने से उसे लाल, पीला मान रक्खा था। मुझसे कहा जाता है कि दो हिस्सा हाईड्रोजन और एक हिस्सा आक्सीजन मिल कर पानी पैदा करता है। मैं सचमुच क्या इसे जानता हूँ? नहीं, यद्यपि सभी रासायनिक मुझे ऐसा बताते हैं कि यह बात सत्य है। किन्तु मैं केवल तभी जानूँगा जब मैं स्वयं प्रयोगशाला में जाकर प्रयोग कर चुकूँगा। तभी यह मेरे लिए वास्तविक तथ्य हो जायगा चाहे कृष्ण, ईसा, या बुद्ध कोई भी हो आप अपने से बाहर के किसी प्रमाण पर भरोसा नहीं कर सकते। उसे जानने के लिए तुम्हें स्वयं उसे जानना-बूझना होगा। तुम्हें चाहे किसी अच्छे प्रामाणिक सूत्र से मालूम हुआ हो, उदाहरणार्थ किसी अध्यापक से, कि काँच

ज्ञात है, किन्तु इसे जानने के लिए तुम्हें स्वयं उसे देखना होगा। यदि कोई युवक कहे—"मेरे पिता की पाचन क्रिया बड़ी अच्छी है, वह मेरे बदले मेरा भोजन पचा देगा" तो क्या वह ऐसा कर सकता है? नहीं, लड़के को आप ही अपना भोजन पचाना पड़ेगा। मैं उन महान् आत्माओं को प्रणाम करता हूँ जो संसार-विख्यात हैं, किन्तु वे मेरे बदले मेरा भोजन नहीं पचा सकते। उसे तो स्वयं मुझे ही पचाना होगा। परमेश्वर के साथ अभिन्नता का निश्चय वे महात्मा मुझे नहीं दिला सकते, मुझे स्वयं अपने लिए यह निश्चय करना होगा। सत्य को हम केवल विश्व-भावना, विश्वानुभूति के द्वारा ही जान सकते हैं। इसके बारे में मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा।

नास्तिक और स्वच्छन्द विचारक—दोनों कहते हैं, "मैं स्वयं अनुसंधान करूँगा" आइये, देखें वे कहाँ तक पहुँचते हैं। एक कहता है कि उजियाला इस दियासलाई में है। पर उसका पता कैसे लगायें? इसके लिए वह दियासलाई के टुकड़े टुकड़े कर डालता है, किन्तु प्रकाश नहीं मिलता। फिर वह दियासलाई की बुकनी बना डालता है, फिर भी रोशनी नहीं मिलती। वह जानता है कि इस शरीर में प्राण है, इसलिए शरीर लेकर उसके खंड-खंड कर देता है, पर प्राण नहीं मिलता। वह हड्डियों को चूर चूर कर डालता है, परन्तु वहाँ भी प्राण नहीं मिलता। अन्त में वह कहता है कि यदि कोई "वास्तविकता" है, तो वह 'मैं ही' हूँ, परन्तु यह है अज्ञेय। जहाँ तक वह पहुँचा है, वहाँ तक ठीक है! किन्तु अभी तक उसने विश्वभावना विकसित नहीं की है, उसने 'अनन्त' को जानने के लिए केवल अपनी परिच्छिन्न

भावना अथवा ज्ञान से ही काम लिया है। और यह स्पष्ट है कि इस तरह से वह उसे कदापि नहीं जान सकता। देखिये, बुद्धि से हम 'अनन्त' तक पहुँच सकते हैं, और जान सकते हैं कि 'अनन्त' है, परन्तु हम नहीं बता सकते कि वह है क्या। यह बात इस तरह है जैसे पीछे से आकर कोई मनुष्य मेरी आँखें मीच ले। अब मैं यह तो जानता हूँ कि पीछे कोई है, और अवश्य ही वह कोई मित्र होगा, क्योंकि कोई अपरिचित ऐसा करने की धृष्टता न करेगा, परन्तु मैं नहीं कह सकता कि वह कौन है। अथवा वह दीवाल पर गेंद फेंकने के समान है। गेंद दीवाल पर पहुँचेगी तो, पर उलटी उछल आवेगी। बुद्धि 'अनन्त' में प्रवेश नहीं करती। यदि 'अनन्त' जाना जा सकता तो तुरन्त अद्वैत के स्थान में द्वैत स्थापित हो जाता, और न तो ज्ञाता ही अनन्त न रह जाता और न ज्ञेय ही 'अनन्त' रहता। हाँ, विश्वभावना से हम सार्वभौमिकता स्थापित करते हैं।

अब, इस ब्रह्मभावना के विकास के विषय में सुनिये। पहले राम तुमसे बच्चे के विषय में कुछ कहेगा। बच्चे में न तो विश्व का ज्ञान होता है, न उसमें अपनी परिच्छिन्नता का ही ज्ञान होता है। यह एक छोटा सा नन्हा बच्चा है। वह क्या जानता है? कुछ नहीं! तो क्या हम उससे तब तक बातचीत नहीं करते जब तक वह अपने सम्बन्ध में कुछ ज्ञान नहीं लेता, तब तक क्या हम उसके जानने की राह देखा करते हैं, नहीं। जिन वस्तुओं से वह घिरा रहता है, उनका ज्ञान जब तक बच्चे को नहीं हो जाता, तब तक क्या हम रुके रहते हैं और उनकी चर्चा बच्चे से नहीं करते? नहीं! जब बच्चा बहुत ही छोटा है, तभी उसका नामकरण

हो जाता है। हम उसे मुनुआ कहेंगे। माता-पिता बच्चे को अब इसी नाम से पुकारने लगते हैं। वे उससे बातचीत करते हैं। और उससे विभिन्न वस्तुओं की चर्चा करते हैं। कहते हैं, तू बड़ा सुहावना है, बड़ा सुन्दर है, बड़ा प्यारा है। लोग उससे माता और पिता की बात करते हैं। बच्चा अब तनिक बड़ा होता है और अपने आप इधर-उधर खेलने लगता है. तब वह ऐसे शब्द करता है जो समझ में तो नहीं आते, किन्तु बार बार अम्मा और दादा की भनक कान में पड़ने से वह भी उन ध्वनियों की नकल करता है। जब बच्चा 'दा' कहता है, तब माता पिता से कहती है कि बच्चा तुम्हें पुकारता है। पिता बच्चे से कहता है, "यहां आओ,"। क्या बच्चा इसका अर्थ जानता है? नहीं। केवल पिता के फैले हुए हाथों और पुचकारने से बच्चे पर इस बात का संस्कार पड़ता है कि यह सब इशारा पिता के पास जाने के लिए है। इसी तरह हम देखते हैं कि बच्चे में अपनी परिच्छिन्नता के बोध का विकास उन लोगों की संगति से होने लगता है, जिनमें वह रहता है। इसी तरह विश्व-भावना का बोध उन लोगों की संगति से उन्नति करता है जिनमें वह होती है, और जो अपने ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व का अनुभव करते हैं। यदि तुम खिन्नता का अनुभव करना चाहते हो, तो तुम्हें उन लोगों के साथ रहिए-सहिए जो सदा मुँह लटकाये रहते हैं। यदि प्रसन्नता का अनुभव करना है तो उनका संग कीजिये, जो जीवन और उल्लास से परिपूर्ण हैं। तात्पर्य यह कि केवल संगति से इस प्रकार की भावना प्रज्ज्वलित होती है। चाहे प्रकृति की संगति से हो, चाहे ज्ञानवान् महात्माओं की और चाहे गुरु ज्ञानवान् महात्माओं के लेखों की संगति से हो, किन्तु

संगति, केवल सद्संगति ही ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करती है। माता-पिता पुकारते हैं 'मुनुआ', और बच्चा मुनुआ हो जाता है। वह इसी तरह रजुआ भी हो सकता था। क्या ऐसा नहीं होता? मानो तीन या चार बच्चे एक कमरे में सो रहे हैं। मुनुआ पुकारा जाता है। अकेला मुनुआ ही जवाब देता है, रजुआ नहीं। जोर से पुकार होने पर भी रजुआ नहीं जागता। क्योंकि वह पुकारा नहीं गया था।

जिस मनुष्य ने आत्मा से अपनी अभिन्नता का अनुभव कर लिया है उससे अज्ञानवश ही ऐसा कहा जा सकता है कि तुम घास की एक पत्ती ही बना दो तो जाने! प्रश्नकर्त्ता कहते रहते हैं:—"अच्छा देखिये, आप तो अपने को परमेश्वर कहते हैं, आप क्या कर सकते हैं? परमेश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की और आप घास की एक पत्ती तक नहीं बना सकते। फिर भी आप अपने को परमेश्वर कहते हैं! मुझे दिखाइये आप क्या कर सकते हैं?" क्या ईसा को भी इसी तरह का प्रलोभन नहीं दिया गया था? उसने शैतान के तानों की परवाह नहीं की, शैतान ने उससे पहाड़ से फाँदने का आग्रह किया था। किन्तु ईसा ने उसे दुत्कार दिया, "तू पीछे हट जा।" सारी शक्तियां उसके पास थीं, किन्तु अविश्वासी को वह क्यों करामात करके दिखावे। अनगिनती करामातें भी संशयशील को विश्वासी नहीं बना सकतीं। उसे आत्मानुभव तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसमें भी विश्व के साथ तदात्म होने की भावना उदय नहीं होती। जब मैं कहता हूँ, "मैं परमेश्वर हूँ" तब मेरा क्या आशय है? क्या इस क्षुद्र व्यक्तित्व से? नहीं, कदापि नहीं? इस मन से? नहीं, कदापि नहीं! इस प्रकार

समझिये। मान लो, एक मनुष्य शास्त्री है, उसने यह उपाधि प्राप्त की है, मान लो, एक मनुष्य राजा है, और राजा उसकी पदवी है। अब यह उपाधियाँ, पदवियाँ व्यक्तित्व के लिए बाहरी वस्तु हैं, जैसे कोई वस्तु ऊपर से उसपर टाँक दी गई हो। इसी तरह, जब तुम कहते हो कि साँप काला है, तो यह कालापन साँप नहीं हुआ, यह तो साँप से बाहर की वस्तु है, साँप का एक गुण है। किन्तु जब तुम कहते हो कि साँप रस्सी है, तब यह कथन एक पूर्णतया भिन्न कथन बन जाता है। मैं सम्राट हूँ। सम्राट एक उपाधि, एक पदवी है। किन्तु जब तुम कहते हो कि मैं परमेश्वर हूँ तब इसका अभिप्राय यह तुच्छ अहं नहीं है, जो हम देखते हैं, उसका अभिप्राय ऐसा है जैसे रस्सी साँप है। रस्सी का साँप होना एक भ्रान्ति थी। अज्ञानवश तुमने रस्सी को साँप समझा था, किन्तु यह सत्य नहीं था, वह तो वास्तव में रस्सी थी। इसी तरह यह व्यक्तित्व भी एक भ्रान्ति है। मैं ब्रह्म हूं और केवल ब्रह्म, नित्य, एक और सर्व! मेरा कोई भी प्रतिद्वंद्वी नहीं।

इसे तनिक और दूर तक समझाने के उद्देश्य से—देखिये ये दो लहरें हैं। एक लहर में जैसा पानी है, दूसरी में क्या उससे कुछ भिन्न पानी है? नहीं, जल ठीक एक जैसा है! सम्पूर्ण सागर में जल ठीक एक जैसा है। यहाँ एक रूप दिखाई देता है और वहां दूसरा। क्या इनमें आत्मा कोई और है और उसमें कोई और? नहीं। केवल एक ही आत्मा सर्वरूप है, वही अद्वितीय है। ये शरीर सारे के सारे आत्मा के शरीर हैं। ये सब मेरे शरीर हैं। कोई भेद नहीं है। विभिन्न भाषाओं में 'प्रकाश' को हम विभिन्न नामों से पुकारते हैं। अँग्रेजी में उसे 'लाइट' (light) कहते हैं, जर्मनी में 'लिख्ट'

(lioht) इत्यादि। प्रकाश तो हर एक नाम में एक ही है। क्या ऐसा नहीं है ? प्रकाश तो सर्वत्र वही एक है, यद्यपि हम उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। नामों से आत्मा में कोई भेद नहीं पड़ता, वह निःसन्देह सर्वरूप है, (सर्वं खल्विदं ब्रह्म)।

शरीर एक सर्वांगपूर्ण इकाई है। यदि हाथ स्वतंत्र रूप से रहने की ठाने और कहे कि मैं तो रोटी कमाने वाला हूँ, मैं ही सारी कमाई विलसूंगा, तो यह कैसे निभे ? यदि वह जिद करे कि भोजन मुख से न खाया जाय, और पेट से न पचाया जाय और सबमें उसका वितरण न किया जाय, वरन् पिचकारी द्वारा हाथ में पेवस्त किया जाय तो बताओ क्या हाल होगा ? है हंसी की बात कि नहीं ? यदि रुपये हाथ से चिपका दिये जांय, यदि एक पीली बरैया हाथ में काट खाय तो हाथ फूल जायगा और दर्द करेगा। यदि हाथ काट दिया जाय तो निरन्तर पीड़ा और क्लेश रहेगा, क्योंकि हाथ समग्र देह का अंग है। इसी से जब भोजन उदर द्वारा पचाया जाता है, तब हाथ भी पोषण का उचित अंश पाता है। सर्वांग एक साथ काम करता है। ठीक इसी प्रकार जब हम समग्र विश्व से अपने आप को काट कर अलग कर लेते हैं; तब हम क्लेश पाते हैं, और बराबर क्लेश पाते रहते हैं, जब तक हमें अपनी विश्वव्यापकता का अनुभव नहीं होता। इस अभिनय में विश्राम के लिए कोई स्थान नहीं। जब विश्व के साथ तद्रात्म होने की भावना जाग्रत होती है। तब हमारी समझ में आता है कि ये सारे शरीर अन्योन्याश्रित हैं, ये सब मेरे शरीर हैं. कहीं कोई द्वन्द्व नहीं है।

एक बार एक स्वामी किसी सुनार के पास जाकर कहने

लगा—"अपनी सर्वोत्तम अंगूठी निकालो और परमेश्वर की अंगुली में पहना दो।" तदुपरान्त उसने जूते वाले से जाकर कहा—"अपना सबसे बढ़िया जोड़ा निकालो और परमेश्वर के पैरों में पहना दो।" इन सब बातों से उसका अभिप्राय बराबर अपनी देह से था। जब लोगों ने यह सुना, तो उसे नास्तिक और पाखण्डी कहने लगे और बोले,—इसे कारागार में डाल दो। पकड़े जाने पर स्वामी ने कहा—पहले मेरी विनय सुन लें। जेल में जाने से पहले मैं आप लोगों से कुछ कहना चाहता हूँ। उसने लोगों से पूछा "यह संसार किसका है?" उन्होंने उत्तर दिया, "परमेश्वर का"। 'तारागण और सूर्य किसके हैं?' 'परमेश्वर के।' 'खेत और जो कुछ उनमें होता है किसके हैं?' "परमेश्वर के।" क्या तुम ऐसा विश्वास करते हो? उन्होंने उत्तर दिया, "क्यों नहीं, यह तो सत्य है।" तब उसने पूछा—यह शरीर किसका है? उन्होंने कहा—परमेश्वर का। पैर किसके हैं? परमेश्वर के। अँगुलियाँ किसकी हैं? परमेश्वर की। सचमुच यह सब परमेश्वर का है। चूँकि उन्हीं के तर्क से उसने उन्हें दिखा दिया कि उसने जो कुछ कहा था ठीक था, इसलिए उसे कैसे कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था! वे अज्ञानी थे, उनकी दृष्टि स्वामी जितनी गहरी नहीं थी।

भारत में जब कोई आदमी मरने लगता है, तब लोग कहते हैं कि वह शरीर छोड़ रहा है। यहां लोग कहते हैं कि यह प्रेत को छोड़ रहा है। यहां जिस कथन का व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा वहां का कथन अधिक युक्तिसंगत है, क्योंकि वहां की बोली सूचित करती है कि शरीर से बाहर प्रेत कोई अन्य वस्तु है। वहां ऐसा कहते हैं—"उसके प्राण निकल गये।"

एक वार तीन मनुष्य एक साथ बैठे हुए शराव पी रहे थे। खूब नशा चढ़ा हुआ था। उनमें से एक ने प्रस्ताव किया, "कुछ खाया-पिया जाय।" इस पर उन्होंने अपने एक साथी को गोश्त और अन्य भोजन-सामग्री लाने को भेज दिया ताकि वे भर पेट खा सकें। जब वह बाहर गया हुआ था तब शेष दो में से एक को बेचैनी मालूम हुई। उसने अपने साथी से कहा, "मेरा तो प्राण निकलने वाला है।" दूसरे ने कहा, नहीं, भाई नहीं, तुम्हारे प्राण नहीं निकल सकते और यह कह कर उस व्यथित मनुष्य की नाक दवा ली, ताकि दम न निकल सके। उसने उसके कान और मुँह भी बन्द कर दिये। उसने सोचा कि इस तरह से सांस शरीर में ही रह जायगी। किन्तु हम भली भाँति जानते हैं कि उसके इस कृत्य का परिणाम क्या हुआ होगा! उसे इस व्यावहारिक वात का ज्ञान न था, उसने इस कार्य की निरर्थकता नहीं समझी थी।

श्रीकृष्ण एक दावत देनेवाले थे। सभी मंत्री आमंत्रित किये गये थे, किन्तु अपनी प्रियतमा राधा को उन्होंने निमंत्रण नहीं दिया था। प्रधान मंत्री ने कृष्ण से राधा को निमंत्रण भेजने का आग्रह किया। किन्तु उन्होंने मंत्री की वात पर कोई ध्यान नहीं दिया और कहा "नहीं।" महामंत्री ने भी कृष्ण की वात सुनी-अनसुनी करके राधा से जाकर कहा—कृष्ण दावत देनेवाले हैं। राधा ने मंत्री को समझाया, जब आप कोई उत्सव करते हैं, तब आप अपने मित्रों का तो आमंत्रित करते हैं, किन्तु क्या खुद अपने को भी नेवता भेजते हैं? मैं जानती हूँ कि कृष्ण दावत देनेवाले हैं. हम दोनों एक हैं। फिर मुझे नेवता कैसा?

एक दिन मजनू की माशूका ने कहा कि मेरी तवियत

ठीक नहीं है, और कोई दवा भी फ़ायदा करती मालूम नहीं होती। इसलिए वैद्य बुलाया गया। पुरानी रीति के अनुसार वह तुरन्त ही लैली की फस्त खोलने के लिए आगे बढ़ा। हाथ में एक छोटा सा घाव कर दिया ताकि खराब खून निकल जाय। किन्तु लैली के बदन से खून निकला ही नहीं। हाँ, मजनू के बदन से खून की धार वह निकली। इन प्रेमियों की एकता ऐसी ही थी।

खून रगे-मजनूं से निकला, फस्त लैला की जो ली।
इश्क में तासीर है, पर जज्बे-कामिल चाहिए॥

संसार।

मैं ने इस संसार को देखा, मनन किया, और जाना,
इस पहली पोथो ने मेरा अच्छा वर्णन किया था,
उस के अक्षर नक्शी खिलौने थे,
विभिन्न ढंगों से उसने खोद खोद कर मुझे अंकित किया—
उस दिन की यह अति विचित्र वर्णमाला,
मैं रद्दी कागज़ की टोकरी के हवाले करता हूँ।
मैं इस संसार रूपी पुस्तिका के पन्ने
अपनी प्यारी चिलम सुलगाने के लिए जलाता हूँ।
और अपने मुँह द्वारा इसे पीता और फूँक देता हूँ।
तब देखता हूँ लच्छेदार धूम्र को बाहर जाते हुए।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्मोहन विद्या और वेदान्त।

१. इमरसन का कहना है कि किसी को चोर कहो और वह चोरी करने लगेगा। दूसरे शब्दों में किसी तरह का सुझाव करो और तुम्हें प्रत्यक्ष उसके अनुरूप परिणाम दिखाई देगा। यह कथन कुछ उदाहरणों में ठीक उतरता है, किन्तु सर्वव्यापी रूप से नहीं। कुछ उदाहरणों में सूचना प्रत्यक्ष फल पैदा कर सकती है, किन्तु दूसरे स्थानों में उसका बिलकुल विपरीत परिणाम भी हो सकता है। सूचना सीधा प्रभाव उत्पन्न करती है—जो लोग इस बात पर अनुचित जोर देते हैं वे केवल आधे सत्य से ही परिचित हैं। वेदान्त के अनुसार, सूचनायें अपना प्रभाव उसी तरह पैदा करती हैं, जैसे बिजली—एक अपवाह द्वारा और दूसरा प्रवाहन के द्वारा। उन मामलों में परिणाम सीधा और सूचना-अनुरूप होता है जहाँ हमारी सूचना सीधे विषय को छूती है, किन्तु जहां पर हमारी सूचना सीधे हमारे विषय या रोगी तक नहीं पहुँच सकती, अर्थात् जहाँ रोगी की बुद्धि सूचना देनेवाले व्यक्ति से द्वेष रखती है और बीच में बाधक बनकर सूचना को उसके कारण शरीर से सीधा स्पर्श नहीं होने देती, वहाँ परिणाम सोचे हुए परिणाम से बिलकुल उलटा होता है। ऐसा परिणाम सम्मोहन की अपवाह क्रिया कहलाती है। और पहला सीधा परिणाम सम्मोहन की प्रवाहन क्रिया है।

'कारण' शरीर मनुष्य के सम्पूर्ण मानसिक संस्कारों और

सुप्त शक्तियों का चेतना से नीचे स्तर पर स्थित भंडार है। हमारे सारे काम-काज, चेष्टायें और चाल-ढाल बर्ताव और दशायें इसी 'कारण' शरीर में निहित सामग्री का फैलाव मात्र है, उसके अनुकूल परिणाम का होना अनिवार्य है। 'कारण' शरीर मनुष्य का हृदय, केन्द्र, स्वामी है अथवा तुम उसे कर्तृत्वप्रधान अधिकरणनिष्ठ मन भी कह सकते हो।
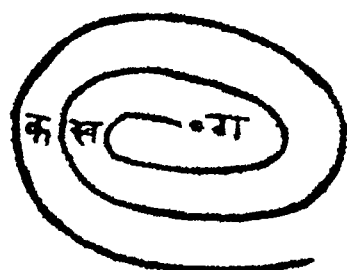
ग—कारण शरीर।

ख—सूक्ष्म शरीर या मानसिक क्षेत्र, अन्तःकरण।

क—स्थूल शरीर।

स्थूल शरीर द्वारा किया हुआ कोई भी काम तुरन्त मानसिक शक्ति अथवा विचार के रूप में परिणत हो जाता है, और कुछ दिनों तक सूक्ष्म शरीर में जो साथ के चक्र में 'ख' से दर्शाया गया है—रहने के बाद, कारण शरीर में, जो 'ग' से दर्शाया गया है—पहुँच जाता है। जो संकल्प या विचार स्थूल जगत से न आकर अनायास सीधे मानसिक लोक, सूक्ष्म शरीर 'ख' में प्रकट होते दिखाई देते हैं, वे कारण शरीर में पूर्वसंचित मानसिक शक्ति के प्रादुर्भाव मात्र हैं, जो कारण शरीर से नीचे उतरकर सूक्ष्मशरीर 'ख' में प्रकट होती है। इस प्रकार क, ख, और ग अर्थात् इन तीन शरीरों का पारस्परिक सम्बन्ध कुछ-कुछ वायु, जल और बाष्प के सम्बन्ध के समान है अथवा ऐसा है जैसे नदी का हिम-स्थित स्रोत, नदी का पर्वतीय भाग, और नदी का मैदानी

भाग। वास्तव में, इन तीनों का सम्बन्ध एक सिलसिले में चलता है।

मानो, तुमने राह में किसी बीमार को पड़े देखा। स्वभावतः तुम उसकी सहायता करने पहुँच गये। अब जब तुम उसकी सेवा-सुश्रूषा में लगे हुए हो, तब तुम्हारा ध्यान उस कर्त्तव्य की ओर बिलकुल नहीं जाता, तुम तो पीड़ित मनुष्य की पीड़ा हरने के लिए भरसक चेष्टा करते रहते हो, तुम्हारी सारी इन्द्रियां और सारे अंग पूर्णतया क्रियाशील हो जाते हैं। हाँ, जब तुम उस पीड़ित व्यक्ति की सेवा कर चुकते हो और तुम्हारा शरीर और इन्द्रियां विश्राम करने लगती हैं, तब तुम स्वतः देखोगे कि तुम्हारी वह क्रियाशीलता और शक्ति जो पहले इन्द्रियों के क्षेत्र में काम करती थी, 'ख' लोक में पहुँच गई है। दूसरे शब्दों में तुम्हारा चित्त स्वभावतः अपने किये हुए कार्य का चिन्तन करने लग जाता है, और तुम अपनी चेतना में उस कार्य की पवित्रता और महत्ता पर विचार करने लगते हो। कुछ देर बाद तुम देखोगे कि जो शक्ति 'ख' लोक में काम कर रही थी, वह वहाँ से विदा हो गई है। वह कहाँ चली गई? क्या वह समाप्त हो गई है? ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि प्रकृति में कुछ भी नष्ट नहीं होता। वेदान्त के अनुसार यह शक्ति सिर्फ अदृश्य हो गई है, और चेतना के निम्नतल 'क' में जाकर कारण शरीर में पहुँच गई है। इसी प्रकार कारण शरीर में जो मानसिक शक्तियाँ संचित होती रहती हैं, वही 'ख' लोक में हमारे स्वप्नों, हमारी हृदयस्थ भावनाओं, हमारी स्वाभाविक रुचियों, प्रवृत्तियों और कार्यों में प्रकट होती हैं। वेदान्त के अनुसार हमारी स्वाभाविक रुचियों की उत्पत्ति का यही रहस्य है।

परीक्षात्मक प्रमाण:—

जागृत या सम्मोहित अवस्था में किसी मनुष्य के कारण शरीर को सीधे या वक्र रेखा से स्पर्श कीजिये। वहां जिस प्रवृत्ति या अभिरुचि की भावना पहुंच जायगी, वह निस्संदेह ठीक समय पर स्वयं प्रकट होगी। जब कोई मनुष्य सम्मोहित किया जाता है, और उसे कोई ऐसी उत्तर-सम्मोहन-सूचना दी जाती है कि वह जागने के बाद किसी समय पर कोई विशेष कार्य करे तो वह सूचना उस कार्य की प्रबल रुचि के रूप में ठीक समय पर निस्सन्देह प्रकट होती है। इस प्रकार जैसा कि इस सम्मोहन-क्रिया के उदाहरण में बतलाया गया है कि कारण शरीर में प्रविष्ट सूचना के अनुरूप फल प्रकट किया जा सकता है, वैसे ही वेदान्त मानता है कि मनुष्य के सभी कामों में उनको प्रकट करनेवाले संकल्प कारण शरीर में पहले ही से विद्यमान रहते हैं। वेदान्त के अनुसार ये सूचनायें, ये संकल्प इंद्रियों के सम्मोहन से या मानसिक संवेदनाओं के सम्मोहन से अथवा सम्मोहन के और भी किसी रूप से कारण शरीर में प्रविष्ट होते रहते हैं, क्योंकि वेदान्त के अनुसार संपूर्ण संसार ही एक विशेष सम्मोहन-क्रिया से बना हुआ है। बस, कारण शरीर में स्वास्थ्य की सूचना भर दो, स्थूल शरीर स्वस्थ हुए बिना न रहेगा। कारण शरीर में परमेश्वरत्व की सूचना लगाने दो, मनुष्य महात्मा हुए बिना नहीं रह सकता। कारण शरीर में गुलामी और कमजोरी की सूचनायें भरने दो, स्थूल शरीर का दुर्बल और गुलाम होना अनिवार्य हो जायगा। अपने भले बुरे का मनुष्य आप ही विधाता है, क्योंकि उसका कारण शरीर ही उसके चारों ओर की परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी है।

जिस प्रकार स्वप्नाचार—सोते समय चलने फिरने की आदत या सम्मोहन की अवस्था में व्यक्ति विशेष को वहाँ झील दिखाई पड़ती है, जहां दूसरों के लिए झील-वील का कोई निशान तक नहीं होता; उसे वहाँ मछलियों से भरा तालाव दिखाई देता है, जहाँ दूसरों के लिए तालाव का नाम तक नहीं होता, वह ऐसी ऐसी चीजों को देखता है, जो दूसरों के लिए कभी मौजूद नहीं रहतीं; किन्तु जिस प्रकार ये सारे दृश्य, बनावटी पदार्थ उसी संमोहित मनुष्य की निजात्मा से उत्पन्न और पोषित होते हैं उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार हमको दिखाई देनेवाला यह संपूर्ण संसार विशुद्ध रूप से केवल हमारी निजात्मा से ही धारण होता है। अब उक्त सम्मोहनजन्य अथवा स्वप्नाचार के और सांसारिक दृश्यों में अन्तर केवल इतना है कि वे संसार की अपेक्षा अल्प कालीन और क्षणिक होते हैं। यह संसार की अवस्था ठीक ऐसी बात है जैसे कोई मनुष्य सम्मोहन की अवस्था में डाल दिया गया हो और फिर उसे उस अवस्था से बाहर निकालने की सुधि भुला दी गई हो। संसार के सभी मनुष्य संसार के इस विचित्रतम जादू से मोहित किये हुए हैं, और उनको इस सम्मोहित अवस्था से निकालने में बहुत, बहुत समय लग सकता है। यह सम्मोहन तब तक चलता रहता है, जब तक कोई ब्रह्मज्ञानी, जीवन-मुक्त आकर उनके मोह को दूर करके उनको असली ब्रह्मज्ञान का साक्षात् न करा दे, और वे स्वस्वरूप में न जाग उठें। वह जो सार तत्त्व है, जो सम्पूर्ण दृश्य जगत् का आधार है, वही वास्तव में सत् है, और जो कुछ उसके ऊपर आरोपित है, वह अवश्य ही भ्रमात्मक और सम्मोहित व्यापार है। 'कारण' शरीर का

आधार और अधिष्ठान जो सब अवस्थाओं में; सम्मोहित अवस्था में, जागृत अवस्था में, स्वप्न की अवस्था में, और सुषुप्ति की अवस्था में सदा एकरस रहता है, वही सच्ची आत्मा या परम सत् है। दूसरी हरेक वस्तु उसके ऊपर आरोपित अतएव भ्रमात्मक और संमोहित व्यापार है। आत्मानुभव का अर्थ है इसी लाचारी और सम्मोहन की अवस्था से मुक्त होना तथा इस दिखाई पड़नेवाले दृश्य जगत् को उस परम सत् में लीन कर देना। माता और पिता की सूचनाओं, सुझावों और प्रस्तावों (suggestions) के द्वारा तथा हमारी इन्द्रियों की सूचनाओं के द्वारा उनका अनुमोदन होने पर हमें संसार की मोह-निद्रा प्राप्त होती है, अतः, इनकी प्रतिकूल सूचनाओं के समुचित प्रयोग से निराकरण या निवारण हो सकता है।

वास्तविक आत्मा ने गलती क्यों की ?

आपकी यह 'क्यों और किसलिए' तथा सम्पूर्ण चिन्तायें उसी सम्मोहन-क्रिया का अंशमात्र और परिणाम हैं: उसी मूल कारण की सन्तति और अनुचर हैं। ऐसे प्रश्न करने का अर्थ होता है कि आप कार्य के द्वारा कारण की व्याख्या की आशा करते हैं। यह तो पुत्र को पिता के आगे रखना, और गाड़ी को घोड़े के आगे रखना जैसा है। यह 'क्यों', 'कैसे' की प्रवृत्ति और प्रश्न पर प्रश्न करने की अभिरुचि—यह सम्पूर्ण शृंखला उसी सम्मोहनावस्था का अंश-मात्र, सावयवांग मात्र है। सम्मोहन से मुक्ति की अवस्था में यह कुछ भी वर्तमान नहीं रहता। असली मूल अवस्था में इनमें से कुछ भी वर्तमान नहीं रहता, कोई प्रश्न संभव नहीं होता। यह संपूर्ण प्रश्न-माला कागज पर खिंची भूलभुलैयों का चक्कर है।

जिसका कहीं अन्त नहीं दिखाई देता। यह कार्य-कारण-शृंखला कभी रुकती नहीं, पेंच पर पेंच डालती हुई सदा घूमती रहती है किन्तु वास्तविक सत्य, परम सत् उस कागज के समान है जिस पर ये सारे चक्कर, घेरे और भूल-भुलैया बनी हैं! कागज, सत्य शृंखला से परे है। इसलिए 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करना, कागज को ही उस भूलभुलैया के चक्कर में आदि अथवा अन्त का सिरा बना देने के समान है। अरे, कागज तो चक्र के सभी घेरों, लपेटों और फेरों में एक समान मौजूद है। अतः राम सारे संसार को आदेश देता है कि अपने आपको भूलभुलैया या घूम-घुमौवा के चक्कर में, साँप की कुंडली में उलझा हुआ मत समझो। अपने आप को साँप की कुंडली का नियन्ता, शासक और स्वामी जानो, और अनुभव करो। बस, आपका कार्य-कारण-माला से परे हो जाना निश्चित, सुनिश्चित है। इसमें सन्देह नहीं। ॐ

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

मनुष्य स्वयं अपना भाग्य-विधाता है।

ता० २४ जनवरी १९०२ को गोलडेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान

* ॐ *

महिलाओं और सज्जनों के रूप में अखिल विश्व के स्वामिन्:—

आज का विषय है "मनुष्य आप ही अपने भाग्य का स्वामी है" अभी तक हम मनुष्य के वास्तविक स्वरूप पर ही विचार करते आये हैं। वास्तविक मनुष्य की आत्मा परमेश्वर है, ब्रह्म है, ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं। वास्तविक मनुष्य केवल एक ही शरीर का भाग्य विधाता नहीं है, वरन् सम्पूर्ण संसार, अखिल विश्व का स्वामी है।

किन्तु आज मनुष्य शब्द उसी अर्थ में ग्रहण किया जायगा जिसमें वेदान्तियों का 'सूक्ष्म शरीर' प्रयुक्त होता है। आप उसे इच्छा करने वाला, संकल्प करने वाला, वासना करने वाला मनुष्य कह सकते हैं। इस परिमित और संकीर्ण अर्थ में भी मनुष्य आप ही अपने भाग्य का स्वामी है। इस प्रश्न के बहुत से पहलू हैं। उन सब पर एक दिन में विचार नहीं किया जा सकता। आज हम केवल सूक्ष्म जगत् की दृष्टि से ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

शायद आप यह आसानी से विश्वास कर लेंगे कि पैदा होने पर मनुष्य अपनी परिस्थिति को बहुत-कुछ बदल सकता है। यदि एक मनुष्य किसी विशेष परिस्थिति में डाल दिया जाय, तो यह विश्वास करना आसान होगा कि

वह अपनी परिस्थति को थोड़ा-बहुत अपने अनुकूल बना सकता है, वह परिस्थितियों का संचालक बन सकता है, वह उनसे ऊपर उठ सकता है, और अपने आपको शिक्षित बना सकता है। गरीब से गरीब होकर भी मनुष्य अपने को देश का सबसे बड़ा धनी बना सकता है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया भी है। भिखारी भी अपने को लोकमान्य और लोक-विख्यात बनाने में सफल हुए हैं। वे नीचे से नीची और घृणित से घृणित दशाओं में सफल हुए हैं। पैदा होने वाले व्यक्ति अपने को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में सफल हुए हैं। नेपालियन बोनापार्ट को देखिये, शेक्सपियर को देखिये, लंदन के एक नगर-अधिपति (लार्डमेयर) व्हिटिंगटन को देखिये! चीन के एक प्रधान मंत्री तो किसी समय एक गरीब किसान, निर्धन खेतिहर थे। यह सिद्ध करना सरल है कि संसार में जन्म लेने पर हम अपने जीवन-काल में ही अपनी हालत सुधार सकते हैं। किन्तु प्रश्न का कठिन भाग तो वह है जब वेदान्त कहता है कि आप अपने जन्म और अपने माता-पिता के भी कर्त्ता-धर्त्ता हैं। बच्चा मनुष्य का पिता है, किन्तु केवल इतना ही नहीं, बच्चा अपने पिता का भी पिता है। यह सिद्ध करना कठिन है किन्तु वेदान्त कहता है कि चाहे जिस दृष्टि से प्रश्न पर विचार कीजिये आप स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं। यदि आप जन्मान्ध हैं, तो भी आप स्वयं अपने भाग्य के स्वामी हैं। आप ही ने अपने आप को अन्धा बनाया है। यदि आप दरिद्र माता-पिता की सन्तान हैं, तो भी आप अपने भाग्य के स्वामी हैं, क्योंकि आपही ने अपने आपको गरीब माता पिता के यहां पैदा किया है। यदि आप अत्यन्त अवांछनीय अवस्था में

पैदा हुए हैं, तो भी आप ही अपने भाग्य के स्वामी हैं, आप ही ने ऐसा किया है। पैदा होने पर भी आप अपने भाग्य के स्वामी हैं। आज हम प्रश्न के इसी पहलू पर विचार करेंगे; मनुष्य कैसे स्वयं अपने जननी-जनक को चुनता है? दूसरे शब्दों में, आज हम किसी हद तक जीव के आवागमन के सिद्धान्त पर विचार करेंगे। हम उसके केवल एक अंश को ही लेंगे।

कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मर जाता है, तब वह बिल्कुल मर जाता है, समूल नष्ट हो जाता है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि मनुष्य मर तो जाता है किन्तु उसके हृदय में एक जन्म-जात, स्वाभाविक अमरत्व की इच्छा विद्यमान रहती है जिसके फल स्वरूप हम चाहते रहते हैं कि हमारे सम्बन्धी कभी न मरें, हमें अपने मित्रों को मरते हुए देखकर भीषण संताप होता है, अतएव ऐसे लोग और कुछ धार्मिक सम्प्रदाय भी ऐसा मानते हैं कि इसी स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति के लिए हमें किसी अन्य काल्पनिक संसार के अस्तित्व में विश्वास करना परमावश्यक है। फिर चाहे हम उस काल्पनिक जगत् का इस संसार की दृष्टि से कोई यथार्थ प्रमाण दे सकें या न दे सकें। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है, और इन लोगों की बात में भी कुछ सत्यांश है। इन लोगों की बात जहाँ तक सत्य है उस पर इन्हीं व्याख्यानों में पहले विचार हो चुका है। किन्तु वह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। मृत्यु के बाद कुम्हारा नरक जाना या स्वर्ग में प्रवेश करना सम्पूर्ण सत्य नहीं है। हमें इस जगत्-भौतिक जगत् की दृष्टि से सारी बातें समझनी-समझानी होंगी। आपके आध्यात्मिक जगत् के नियमों को आपके स्थूल जगत् के नियमों

के विरुद्ध जाने का कोई अधिकार नहीं है। यहाँ एक मनुष्य भूमि के भीतर तुपा हुआ है। 'मिट्टी मिट्टी में मिल गई है"— ऐसा उसकी कब्र पर कहा गया था। किन्तु तनिक सोचिये। देह अवश्य मिट्टी में मिल जाती है, किन्तु देह का नाश कहां हुआ, उसका केवल रूपान्तर हो गया। देह के स्थूल तत्त्व बदले हुए रूप में, एक दूसरे रूप में वर्तमान हैं, वे नष्ट नहीं हुए हैं। तुम्हारे मित्र का वही शरीर फिर कब्र पर सुन्दर गुलाब के रूप में प्रकट होगा, तथा किसी दिन फिर फलों और वृक्षों के रूप में उसका आविर्भाव होगा। उसका नाश तो नहीं हुआ है।

अच्छा, फिर हमें सन्देह किस बात में है? क्या आत्मा, सत्य, वास्तविक परमेश्वर का नाश हो गया है? नहीं, नहीं। वह कदापि नष्ट नहीं हो सकता। असली व्यक्ति, मनुष्य की आत्मा का कदापि नाश नहीं हो सकता, वह कभी नष्ट नहीं की जा सकती। तो फिर हम संदिग्ध, शंकाकुल किस सम्बन्ध में हैं? यह सूक्ष्म शरीर हो सकता है, जिसे दूसरे शब्दों में आप मानसिक वासनायें, मानसिक भावनायें, मनोविकार, मनोभिलाषायें, चित्त की लालसायें, अन्तःकरण की आकांक्षायें और संकल्प कह सकते हैं। इन्हीं से सूक्ष्म शरीर बनता है। इस सूक्ष्म शरीर का क्या होता है? मनुष्य तो भूमि में गड़ा गया, क्या उसके साथ ये चीजें भी गड़ गईं।? नहीं, नहीं। ये तोपी नहीं जा सकतीं। तो फिर उनका क्या होता है? सारा प्रश्न इस सूक्ष्म शरीर का है, जो तुम्हारी मानसिक क्रिया-शक्ति, आन्तरिक क्रियाशीलता, भीतरी विकारों, भावनाओं और कामनाओं से बनता है। इस क्रिया-शक्ति, इन मनोविकारों, भीतरी इच्छाओं के समु-

भय, इनके संयोग या समूह का परिणाम क्या होता है ? यह कहना कि यह आध्यात्मिक जगत् में—यहाँ मेरा अभिप्राय उस जगत् से है जिसे आप यांत्रिक नियमों से सिद्ध नहीं कर सकते—चला जाता है, तुम्हारे विचार से भले ही बिलकुल ठीक हो, किन्तु विज्ञान इसी स्थूल जगत् की दृष्टि से प्रमाण चाहता है कि इस शक्ति का क्या होता है। विज्ञान ने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में किसी वस्तु का नाश सर्वथा नाश नहीं होता। यह एक अटल सार्वभौम नियम है। यह शक्ति के आग्रह का नियम है, यह द्रव्य के अविनश्वरत्व का नियम है। यह शक्ति के संरक्षत्व का नियम है। यह आपको बताता है कि कोई भी वस्तु समूल नष्ट नहीं हो सकती। अच्छा, यदि शरीर का नाश नहीं होता, केवल उसकी दशा बदल जाती है, और यदि हृदयस्थ परमेश्वरत्व ब्रह्मत्व का भी नाश नहीं होता, प्रत्युत वह नित्य, स्थायी निर्विकार रहती है तो फिर इन मनोभिलाषाओं, मानसिक क्रियाशक्ति, आन्तरिक जीवन का ही नाश क्यों हो जाना चाहिए ? उनका नाश क्यों हो ? शक्ति के संरक्षत्व का अनिवार्य नियम हमें बताता है कि उनका नाश कभी नहीं हो सकता। अतः तुम्हें यह कहने का कोई हक नहीं कि उनका नाश होगया। उन्हें भी जीवित रहना होगा, वे अवश्य जीवित रहेंगी। वे चाहे अपना स्थान बदल दें, वे चाहे अपनी दशा बदल दें, परन्तु उनका जीना जरूरी है, उनका नाश कदापि नहीं हो सकता। ठीक इस तरह जैसे तुम एक मोमबत्ती जलाते हो, तब हम क्या देखते हैं कि आध घंटे में सब कुछ गायब हो जाता है। किन्तु विज्ञान सिद्ध करता है। रसायन विद्या सिद्ध करती है कि उसका नाश नहीं हुआ, वह नष्ट

नहीं हुई है। एक वक्र जाँच-नली के द्वारा जिसमें तेजाब और कुछ अन्य रासायनिक द्रव्य होते हैं यह प्रकट हो जाता है कि मोमबत्ती के वे सब अंश जो नष्ट हुए प्रतीत होते थे वे नष्ट नहीं हुए उस वक्र जाँच-नली में रुक गये हैं। पानी से भरे हुए प्याले का सारा पानी भाप होकर उड़ गया। साधारण आदमी कहेगा, पानी नष्ट हो गया, समाप्त हो गया, किन्तु प्राकृतिक विज्ञान हमें बताता है कि जल नष्ट नहीं हुआ है। प्रयोगों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि वह हवा में विद्यमान है, उसका नाश नहीं हो सकता।

इसी तरह मनुष्य जब मरता है, तो उसकी मानसिक शक्तियों, उसकी इच्छाओं, मनोविकारों, भावनाओं की ऊपरी दृष्टि से हानि होती दिखाई देती है, जैसे उनकी मृत्यु हो गई हो, किन्तु वेदान्त मानो अपनी आध्यात्मिक रसायन विद्या लेकर आता है और प्रयोग से सिद्ध करके तुम्हें दिखा देता है कि उनका नाश नहीं हुआ है, उनका नाश नहीं हो सकता है। अच्छा, यदि उनका नाश नहीं हुआ, तो फिर क्या हुआ ? हमें इस प्रश्न को वैसे ही हल करना होगा जैसे हम गणित के प्रश्न को हल करते हैं। जब प्रश्न हमारे सामने आता है तब हमें उसमें दी हुई बातों और जो सिद्ध करना है उन दोनों पर अर्थात् प्रतिज्ञा और निष्पत्ति पर दृष्टि डालनी पड़ती है। हम दोनों पहलुओं पर विचार और मनन करते हैं। कभी कभी केवल प्रतिज्ञा पर ही विचार करने से हमें पूरी बात सिद्ध करने में सफलता प्राप्त हो जाती है, और कभी कभी हमें अन्तिम निष्पत्ति भी पर विचार करना पड़ता है, और बार बार विचार और मनन करना होता है, और प्रतिज्ञा को निष्पत्ति से जोड़ना पड़ता है, दी हुई और

सिद्ध होनेवाली बात में सम्बन्ध ढूँढ़ना पड़ता है। अच्छा, इस प्रश्न में प्रतिज्ञा क्या है, निष्पत्ति क्या है? जीवन और मृत्यु। जीवन दिया हुआ है और मृत्यु का रहस्य जानना है। जन्म का व्यापार प्रतिज्ञा के समान है, और मृत्यु का व्यापार निष्पत्ति के समान है. इसका विलोम भी ठीक माना जा सकता है। बात एक ही है। संसार में इतने अधिक मनुष्यों का जन्म होता है और रोज इतने अधिक मनुष्यों की मृत्यु होती है। अच्छा, जो लोग मरते प्रतीत होते हैं, यदि उनकी मानसिक शक्तियाँ, उनकी इच्छायें इत्यादि भी उनके साथ मरती हुई मान ली जायँ तो इस प्रकार का अनुमान करने से हम विज्ञान के स्थापित नियमों के विरुद्ध चल पड़ते हैं। यदि हमारी मानसिक शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं, तो कुछ तत्त्व शून्य में परिवर्तित होना माना जायगा। किन्तु आप जानते हैं कि ऐसा होना असम्भव है। कोई वस्तु 'कुछ नहीं' में कदापि परिणत नहीं हो सकती। इस भूल से बचने के लिए आपको अवश्यमेव विश्वास करना होगा कि मृत्यु के बाद मानसिक इच्छायें, मानसिक शक्तियाँ, मानसिक क्रिया-शीलता 'कुछ नहीं' शून्य में प्रवेश नहीं करती। तुम्हें पहले यह बात जरूर मान लेनी होगी, तुम्हें यह स्वीकार कर लेना होगा। तुम्हें ऐसा मान लेना उचित होगा, और तब आगे प्रश्न यह होगा, उनका होता क्या है?

अच्छा, अब अगले प्रश्न को कि हमारी मानसिक इच्छाओं का क्या होता है, हल करने के लिए हम जन्म के व्यापार पर विचार करेंगे। संसार में इतने अधिक मनुष्य पैदा होते हैं और सब हरएक बात में भिन्न भिन्न-विभिन्न

योग्यताओं, विभिन्न रुचियों, विभिन्न प्रवृत्तियों: विभिन्न मुखमुद्राओं, विभिन्न कपालरेखाओं, विभिन्न मस्तिष्क-रचनाओं के साथ कितने ही लोग इस संसार में पैदा होते रहते हैं। कुछ लोगों का दिमाग भारी होता है, कुछ का बहुत हलका, कुछ का सिर गोल होता है, और कुछ का अण्डाकार—तात्पर्य यह कि लोग संसार में भिन्न भिन्न गुप्त और प्रकट शक्तियों के साथ पैदा हो रहे हैं। सो क्यों? एक ही माता-पिता के बच्चे एकदम प्रतिकूल प्रवृत्तियों के होते हैं। कितने माता-पिता एक ही घर में राम और रावण को जन्म दे रहे हैं, कृष्ण और कंस को पैदा कर रहे हैं। महा-विद्यालय के विद्यार्थी, एक ही छात्रावास में रहते हैं और एक ही अध्यापक से पढ़ते हैं, फिर भी विभिन्न—बिलकुल विपरीत अभिरुचियों के होते हैं। एक गणित को पसंद करता है, दूसरे की रुचि इतिहास की ओर जाती है। एक कवि होता है, और दूसरा काठ का उल्लू। अच्छा, लोगों की मनोवृत्तियों और स्वभावों में कोई अन्तर है या नहीं? है, अवश्य है। तुम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। कुछ लोग जन्म ही से प्रौढ़ बुद्धि होते हैं, बचपन ही से तेज होते हैं। दूसरे लड़कपन में ही बड़े सुस्त होते हैं। ये भेद क्यों? वेदान्त पूछता है कि इन जन्मजात प्रवृत्तियों और रुचियों के भेद का क्या कारण है। मनुष्यों की विभिन्न रुचियाँ क्यों होती हैं? यदि आप यह कह कर इस समस्या को हल करते हैं कि यह तो परमेश्वर की मर्जी है, यह तो परमेश्वर का काम है, तो यह कोई जवाब नहीं हुआ। यह तो केवल प्रश्न को टालना है। प्रश्न का टालना अदार्शनिक, दार्शनिक पद्धति के विपरीत है, यह तो अपनी मूर्खता की घोषणा करना है।

विज्ञान के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार इसे समझाइये। यदि आप यह कहते हैं कि लोगों का बचपन से ही इन विभिन्न इच्छाओं के साथ जन्म ग्रहण करना परमेश्वर की मर्जी है तो यह विज्ञान के प्रस्थापित नियमों का उल्लंघन करना है। इस तरह तो आप असली तौर पर यह मनवाना चाहते हैं कि 'शून्य' से 'कुछ' की उत्पत्ति होती है। यह असंभव है, आप इतना जानते हैं। इस कठिनाई से बचने के लिए आपको यह मानना, स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वभावों और प्रवृत्तियों का यह भेद-भाव बच्चा मानो परलोक से ही अपने साथ लाता है। ये विभिन्न प्रकार की इच्छायें 'शून्य' से बच्चों में नहीं आती हैं, वरन् इनका भी 'कुछ' स्रोत होना है। 'शून्य' से उनका अस्तित्व, प्रादुर्भाव नहीं हो रहा है। उनका अस्तित्व पहले भी रहा है। दूसरे शब्दों में, ये सब वासनायें, जिनको लोग जन्म के समय अपने साथ लाते हैं, पूर्ववर्ती जीवन से आती हैं। ये इच्छायें कुछ समय पहले भी मौजूद थीं। यहाँ पर हम जन्म की निष्पत्ति और मृत्यु की प्रतिज्ञा पर विचार कर रहे हैं। वेदान्त दोनों का संबंध जोड़कर कहता है—जब मनुष्य मरता है तो मरने के समय उसकी अपूर्ण इच्छाओं का नाश नहीं होता। इसलिये, एक स्थान में विशेष कुछ स्पष्ट इच्छाओं से युक्त एक प्राणी पैदा होता है। उसकी ये इच्छायें 'शून्य' से तो आ नहीं सकतीं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो इच्छायें किसी मनुष्य के साथ कब्र में तोप दी गई थीं वही इस घर में पैदा होने वाले इस नूतन जीव के साथ फिर प्रकट हुई हैं। यदि आप यह स्वीकार कर लेते हैं, तो आप इस भयंकर फंदे से बच जाते हैं कि कुछ तत्व 'शून्य' में लीन हो जाता है, और

'शून्य' से तत्व विशेष की उत्पत्ति होती है। हिन्दू इसे कर्म का विधान कहते हैं। इसे मान लेने से आप उस विकट कठिनाई से छूट जाते हैं और मृत्यु तथा जन्म का सम्पूर्ण व्यापार बिलकुल स्वाभाविक हो जाता है—ठीक प्रकृति के नियमों के अनुसार, विश्व के सामंजस्य पूर्ण सर्वसम्मत नियमों के अनुसार चलने लगता है।

इसके सिवा आप देखेंगे कि आप तर्क के एक दूसरे नियम से भी, इस कर्म-विधान को मानने के लिए बाध्य हैं। जिसे दार्शनिक लोग अपव्यय-अवरोधक नियम कहते हैं। उसका मंशा है कि जब कोई बात स्वाभाविक साधारण नियमों से समझायी जा सकती है, तब हमें अस्वाभाविक आनुमानिक और खींचातानी के तर्कों से काम न लेना चाहिए। कर्म का विधान इस समस्या की अत्यन्त स्वाभाविक, अत्यन्त स्पष्ट और अत्यन्त वैज्ञानिक व्याख्या करता है। इसकी तुलना में अन्य अनर्गल या लौकिक व्याख्याओं को आप क्यों ग्रहण करें।

यहां एक नई बात उठती है। वैज्ञानिक कहते हैं—ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, नवजात शिशुओं की विभिन्न प्रवृत्तियों की व्याख्या हम कर्म के विधान के द्वारा नहीं करेंगे, हमें इस समस्या के लिए कर्म के विधान का सहारा नहीं लेना चाहिए, यह तो वंश-परम्परा के नियम के द्वारा बड़ी आसानी से समझाया जा सकता है। वंश-परम्परा का नियम उन सारी बातों की व्याख्या कर देता है। यहाँ वेदान्त कहता है कि कर्म का विधान वंश-परम्परा के नियम के विरुद्ध नहीं है। कर्म का यह विधान तो वंशपरम्परा के नियम को अपने में सम्मिलित करके, उसे अंगीकार कर

उसकी भी व्याख्या कर देता है। इतना ही नहीं, कर्म का विधान वंशपरम्परा के नियम की व्याख्या करने के अतिरिक्त, मृत्यु के समय, मानसिक शक्तियों की प्रत्यक्ष हानि की भी व्याख्या कर देता है। वंश-परम्परा का नियम मृत्यु के समय होने वाली मानसिक शक्तियों की प्रत्यक्ष हानि की व्याख्या नहीं करता। इसलिए अकेले वंशपरम्परा के नियम की अपेक्षा समस्त वैज्ञानिकों और तत्ववेत्ताओं को इस कर्म विधान पर अधिक ध्यान देना चाहिए। कर्म का विधान वंशपरम्परा के नियम को किस प्रकार समझाता है? मनुष्य के मरने पर उसकी सब इच्छायें देखने में भले ही नष्ट हो जांय किन्तु वेदान्त कहता है कि उनका नाश नहीं होता। जैसे जब कि मोमबत्ती जलती होती है, तब बत्ती और मोम की हानि होती रहती है, प्रत्यक्ष हानि होती रहती है पर उस नियम से जिसे रासायनिक प्रीति कहते हैं दूसरे रूप में उसकी प्राप्ति भी होती रहती है, अर्थात् रासायनिक प्रीति के द्वारा कार्बन ओक्सीजन में मिल जाता है, हाइड्रोजन भी उसी प्रीति से ओक्सीजन में मिल जाता है। इसी तरह ये इच्छायें, ये मानसिक शक्तियाँ या मनुष्य का सूक्ष्म शरीर, मृत्यु के बाद, एक आध्यात्मिक संबंध के नियम से अथवा हम इसे एक विशेष प्रकार का भौतिक संबंध भी कह सकते हैं—मिल जाता है। और ये सम्पूर्ण सम्मिलित मानसिक शक्तियां उन देहों में मिल जाती हैं, जहां की दशा और परिस्थिति, उनकी उन्नति के अनुकूल उनके फलने-फूलने में सहायक, और उनके विकास में हितकर होती है। दूसरे शब्दों में हमारी इच्छाओं का सम्मिलित सूक्ष्म का सीमा-फल उस स्थान को खिंच जाता है जहाँ उसके अनुकूल भूमि

मिलती है, जहाँ तुम्हारी अविकसित शक्तियां तुम्हारी अपूर्ण इच्छायें फलवती हो सकेंगी, उनकी पूर्ति हो सकेगी।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति आप ही माता-पिता चुनता है। हम यह देखते हैं कि जब तक मनुष्य जिन्दा रहता है तब तक उसके हृदय में अनेक इच्छायें रहती हैं। उसकी अधिकांश इच्छायें इसी जीवन में पूरी हो जाती हैं, किन्तु कुछ पूरी नहीं होती। इन इच्छाओं का क्या होगा? क्या उनकी बिलकुल उपेक्षा कर दी जायगी, क्या वे नष्ट हो जायँगी? नहीं, नहीं। जब कली बाग में दिखाई देती है, तब उसके फूलने और खिलने की आशा भी की जाती है। कली से की आशा पूरी होती है, वह खिलती और फूलती है। हम यह भी देखते हैं कि चींटियों जैसे क्षुद्र जीवधारियों की भी इच्छायें पूर्ण होती हैं। तो फिर मनुष्य की इच्छायें ही क्यों मारी जाय? प्रकृति या ईश्वर द्वारा मनुष्य की ही हँसी क्यों उड़ायी जाय। मनुष्य उपहास के योग्य नहीं है। उसकी इच्छाओं का सफल होना भी आवश्यक है। हमारी अधिकांश इच्छायें इसी जीवन में फलती फूलती हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हमारी इच्छायें ही हमारे कार्यों में रूपान्तरित हो जाती हैं, इच्छायें ही प्रेरक शक्तियाँ हैं। किन्तु जो अनेक इच्छायें पूर्ण नहीं होतीं उनकी क्या गति होती है। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य! तू ईश्वर द्वारा हँसे जाने के लिए नहीं बनाया गया है। तुम्हारी भी अपूर्ण और अतृप्त इच्छायें अवश्यमेव फलवती होंगी, यदि इस लोक में नहीं, तो दूसरे लोक में।

यहाँ एक प्रश्न और उपस्थित होता है। यदि इससे पूर्व हमारा कोई जीवन था, और यदि मृत्यु के बाद हमें फिर

जन्म लेना पड़ता है, तो फिर हमें पिछले जन्मों की याद क्यों नहीं रहती? वेदान्त पूछता है, स्मृति या स्मरणशक्ति क्या है? उदाहरण के लिए राम यहाँ तुमसे एक विदेशी भाषा में बोल रहा है। राम ने भारतवर्ष में कभी अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान नहीं दिया। तुम लोगों से अंग्रेजी में बोलते समय मातृभाषा का एक भी शब्द राम के चित्त में नहीं आता। किन्तु क्या उसकी भारतीय मातृ भाषा कहीं खो गई है? नहीं। वह राम के पास ज्यों की त्यों है। यदि राम चाहे तो उसे तुरन्त ही संस्कृत, हिन्दी और उर्दू-फारसी आदि भारतीय भाषायें याद पड़ सकती हैं। अच्छा, तो स्मृति क्या है? तुम्हारा मन एक झील जैसा है। इस समय राम के मानसरोवर में भी भारतीय भाषायें, संस्कृत हिन्दी, उर्दू, फारसी आदि इस झील की तह में बैठी हैं। बात की बात में हम इस झील को क्षुब्ध कर सकते हैं, और इन सब चीजों को ऊपरी तल पर ला सकते हैं, बस, यही किसी चीज को याद करना कहलाता है। तुम बहुतेरी बातें जानते हो, परन्तु हर समय तुम्हें सबका चेत नहीं रहता। इसी तरह तुम अपने मन की झील को हिला डुला कर उनसे सचेत हो सकते हो, उन्हें ऊपरी तल पर लाने से वे तुम्हारे चित्त या मस्तिष्क में आ जाती हैं।

इसी तरह वेदान्त कहता है, तुम्हारे सारे जन्म और पूर्व जीवन तुम्हारी चेतना की आन्तरिक झील में—तुम्हारे मन की आन्तरिक झील—विद्यमान रहते हैं। वे सदा रहते हैं। इस समय वे निम्नतम तट पर अवस्थित हैं। वे ऊपरी तल पर नहीं हैं। यदि तुम अपने पिछले जन्मों की याद करना चाहते हो, तो यह कोई कठिन बात नहीं है। [illegible]

सरोवर को खूब निम्नतम तह तक खलमला डालो और आप जो चीज चाहें उसे ऊपरी तल पर ला सकते हैं। यदि आप चाहें तो आप अपने पिछले जन्मों की भी याद कर सकते हैं, किन्तु एक बात है, ऐसा प्रयोग लाभदायक नहीं होता। क्योंकि एक दूसरे नियम–विकासवाद–के अनुसार तुम्हें आगे बढ़ना है, तुम्हें अग्रसर होते रहना है। इसलिए जो गया सो गया, उसकी क्या खबर करना। तुम्हारा उससे कोई सरोकार नहीं। तुम्हें तो आगे बढ़ना है।

फिर कर्म का विधान एक बात और बतलाता है, जिन चीजों में तुम्हें इतनी दिलचस्पी है, जिन्हें तुम इतना अधिक पसन्द करते हो, जिनसे तुम इतने आकृष्ट होते हो। जिन सबको तुम दुनिया में देखते हो, वेदान्त कहता है, कर्म विधान के अनुसार, तुम इन्हें पसन्द करते हो, तुम्हें इनसे दिलचस्पी है, तुम इन्हें प्यार करते हो, तुम इन्हें पहचानते हो, क्यों? केवल इसी कारण कि किसी समय तुम भी इन सब चीजों में होकर गुजर चुके हो, तुम चट्टानें थे, तुम चट्टानों में सो चुके हो, तुम नदियों में होकर बहे हो, तुम पौधों में उगे हो, तुम पशुओं में दौड़े हो, तुम अब उन सबको देखते और पहचानते हो। अब हम इसी बात को एक दूसरे तर्क से सिद्ध कर सकते हैं।

यह सुकरात, अधिकतर अफलातूं के तर्क का ही पहलू है। संस्मरण क्या है? संस्मरण से प्रतीत होता है कि जिस वस्तु को हम अभी याद कर रहे हैं उसे हम पहले से जानते थे। दृष्टान्त के लिए कल्पना करो कि दो मनुष्य एक साथ इन व्याख्यानों को सुनने आते रहे हैं, कभी न बिछुड़ने वाले जोड़े के रूप में। इस भवन में दिए हुए सात व्याख्यानों में

के साथ साथ आये किन्तु आठवें व्याख्यान में केवल एक अकेला ही आया है, दूसरा नहीं आया है। बिछुड़े हुए अकेले मनुष्य से मित्रगण स्वभावतः यह प्रश्न करेंगे, तुम्हारा मित्र—तुम्हारा प्रिय मित्र आज कहाँ है? वह कहाँ गया है?" ऐसा प्रश्न क्यों किया जायगा? इसका हेतु है संस्मरण का नियम, जो संग या संयोग का नियम भी कहा जा सकता है। हम दोनों को सदा साथ साथ देखते आये हैं, दोनों हमारे इतने सुपरिचित हो गये हैं, कि दोनों, हमारे चित्त में, मानों एक हो गये हैं, दोनों संयुक्त हो गये हैं, इसीलिए बाद को जब हम उनमें से एक को देखते हैं तो वह हमें तुरन्त दूसरे की याद दिलाता है। इसी तरह पर हमारे मस्तिष्क में संग या संयोग का नियम काम करता है, जिससे हमें उसके साथी की याद आई। इस याद का अर्थ है कि हमें उस वस्तु की पहले से जानकारी थी जिसकी हम अभी याद करते हैं।

यह एक क्रमबद्ध तर्क है। सब मनुष्य मरणशील हैं, शिवलाल मनुष्य है, अतएव वह मरणशील है। तुम्हारे सभी तर्क, तुम्हारी सभी युक्तियाँ, तुम्हारा सम्पूर्ण तर्क-शास्त्र इसी आधार, इन्हीं दो पूर्व-पक्षों पर अवलम्बित है—सब मनुष्य मरणशील हैं, शिवलाल एक मनुष्य है। केवल ये दो बातें कहिए, परिणाम रोक रखिए। तुरन्त संस्मरण की भाँति तुम्हारे चित्त में यह परिणाम—शिवलाल मरणशील है—उदित हो जायगा। यह परिणाम कैसे निकल आता है? अफलातूँ ने संस्मरण के नियम की व्याख्या की थी, क्या यह उसी नियम का फल नहीं है? है। एक तर्क में तीन बातें होती हैं। "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है," अतः

"शिवलाल एक मरणशील है।" इनमें से दो बातें तुम्हारे सामने रक्खी गयीं, "सब मनुष्य मरणशील हैं," "शिवलाल एक मनुष्य है'। केवल दो पक्ष तुम्हारे सामने रक्खे गये थे, तुरन्त ही उस नियम के अनुसार जिसे दार्शनिक भाषा में विचार का नियम कहते हैं, तीसरा पक्ष तुम्हारे चित्त में चमक जाता है। हरेक व्यक्ति के चित्त में, हरेक की बुद्धि में यह निष्कर्ष अपने आप उठता है। ऐसा कैसे होता है। यह ठीक उसी तरह होता है, जैसे कि जब हम एक मित्र को देखते हैं तो हमें उस दूसरे साथी की याद अपने आप आ जाती है, जिसे हम सदा इस मित्र के साथ देखते रहे हैं। अच्छा, यह याद क्योंकर आती है, संस्मरण का यह नियम क्यों इतना स्वाभाविक है? विचार का यह नियम जिसके द्वारा इस प्रकार की याद आती है हरेक व्यक्ति, प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि में क्यों इतना बद्धमूल है? एक प्रकार की संस्मरण-क्रिया से। संस्मरण में पूर्वज्ञान का होना निहित रहता है। हरेक बच्चा जिसमें बुद्धि का विकास हो गया है, तर्क करने की योग्यता रखता है, हम हर एक बच्चे से तर्क कर सकते हैं। जब उसमें सोचने-विचारने की थोड़ी सी योग्यता आ जाती है, तब यदि हम उसके सामने यह तर्क रक्खें तो वह उसे मंजूर कर लेगा।

जब हम रेखागणित की कोई साध्य (Proposition) सिद्ध करते हैं तो हम शीघ्र ही निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। यह निष्कर्ष हमें कैसे प्राप्त होता है—संस्मरण द्वारा। हरेक व्यक्ति और सभी मनुष्यों के मस्तिष्क में संस्मरण-प्रवृत्ति का बद्धमूल होना इस बात का समुचित प्रमाण है कि जो चीजें संस्मरण द्वारा तुम्हारे मस्तिष्क में फिर से संजीवित

हो जाती है, उससे तुम पहले ही से परिचित रहे होगे। संस्मरण से जो वस्तुयें तुम्हारे मस्तिष्क में फिर से संजीवित होती है उनसे परिचित और अवगत होने के लिए यह जरूरी है कि किसी न किसी समय तुमने उन्हें सीखा या प्राप्त किया है। अब यह ज्ञान तुम्हें कहाँ से मिला? वेदान्त कहता है, किसी भूतपूर्व जन्म में।

अब एक और दूसरा प्रश्न सामने आता है। अच्छा, यदि हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं, तो हम में से कोई गरीब कैसे होना चाहेगा। अधिकांश गरीब क्या पैदा होते हैं? हम सब गरीब धनी पैदा होना चाहेंगे, हममें से कोई भी गरीब पैदा नहीं होना चाहता। फिर भी हममें से बहुतेरे गरीब पैदा होते हैं—अधिकांश। इसका क्या कारण है? वेदान्त उत्तर देता है, तुम्हें सब बातों को ठीक ठीक समुचित रीति से परखना चाहिए, उन्हें पूरी तरह अध्ययन करना चाहिए। अधूरे तत्वों पर विश्वास मत करो। तथ्यों पर सब पहलुओं से विचार करो। यह बात ठीक नहीं है कि हरेक व्यक्ति लंदन का नगरपति होना चाहता है और कि प्रत्येक व्यक्ति लखपति ही होना चाहता है। देखिये—यह बात ठीक नहीं है। यहाँ एक मनुष्य है जो पाँच रुपये प्रति सप्ताह पाता है, उसकी अभिलाषा होती है कि सात रुपये प्रति सप्ताह की जगह मिल जाय। लंदन के नगर-पति होने का विचार, भाव उसके चित्त में कभी नहीं उठता। इस तरह तुम देख सकते हो कि हर एक व्यक्ति सचमुच लखपति होना चाहता है—यह बात ठीक नहीं है।

अब दूसरी दृष्टि से इस बात पर विचार कीजिये। लोगों की अभिलाषायें असंगत और विचारहीन होती हैं। वे अपनी

अभिलाषाओं को परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाते। वे अभिलाषाओं के गुलाम हो जाते हैं। वे अपनी इच्छाओं के स्वामी नहीं बनते, और इस प्रकार वे इच्छा न रहते हुए भी, अपनी ही इच्छाओं के द्वारा कठिनाइयों के चक्कर में पड़ जाते हैं, वे चिन्ता और विपत्ति में फंस जाते हैं।

अब आपमें से हरेक के लिए इस वार्तालाप का मनोरंजक अंश आता है। मान लो कि यहाँ एक मनुष्य है जो अपनी पाशविक वृत्तियों को तृप्त करना चाहता है। उसे विद्या या ज्ञान से कोई मतलब नहीं होता। वह आध्यात्मिकता, धर्म, सदाचार, यश और कीर्ति के झंझट में बिल्कुल नहीं पड़ना चाहता। वह ऐसी बातों से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। उसे केवल अपनी पाशविक इच्छाओं, अपनी इन्द्रियों की वासनाओं को तृप्त करने से प्रयोजन रहता है। अब यह मनुष्य मरता है। (यहां अपनी बात को समझाने के लिए पशुवृत्ति-प्रधान व्यक्ति की कल्पना भर की गई है) बताइये, वह किस प्रकार के माता-पिता अपने लिए चुने? ऐसे मनुष्य, उसकी इच्छाओं के लिए यह आवश्यक नहीं कि विद्वान् माता-पिता के यहां उसका जन्म हो। जिस प्रकार की क्रिया-शक्ति उसमें है, उसे अपने अनुकूल भूमि के लिए बलवान माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। इस क्रिया-शक्ति के लिए शिक्षित या सभ्य माता-पिता की आवश्यकता नहीं है। वेदान्त कहता है कि यदि ऐसा आदमी सचमुच पाशविक वृत्तियों का बना हुआ है, तो उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त और समुचित शरीर कुत्ते या सुअर का शरीर होगा, क्योंकि सुअर या कुत्ते की योनि ऐसी होती है जहां खाने-पीने की कोई रोक-टोक नहीं, जो पाशविक इच्छाओं

की वृद्धि से कभी थकती नहीं, ऐसी योनियों में जीव बेलगाम होकर मौज कर सकता है। अतः उसे इस प्रकार का शरीर मिलेगा। उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसका सुअर या कुत्ते के रूप में पैदा होना अनिवार्य है। इस तरह आप देखेंगे कि कुत्ता या सुअर होने पर भी वह आप ही अपने भाग्य का स्वामी है।

इस दुनिया के लोग जब किसी चीज की इच्छा करते हैं, तो वे यह नहीं देखते कि उसका परिणाम क्या होगा, वे यह नहीं देखते कि इसके द्वारा वे कहां पहुँचेंगे। और बाद में जब वे अपनी इच्छाओं का फल भोगते हैं, तब वे रोना-धोना, खीसना और अपने भाग्य को कोसना शुरू कर देते हैं। वे ग्रहों को दोष देते हैं, कभी रोते और कभी दांत पीसते और ओंठ काटते हैं। इसलिए जब तुम कोई इच्छा करो, तब खूब समझ लो कि परिणाम क्या होगा। तुम स्वयं ही अपने ऊपर दुख और कष्ट बुलाते हो और दूसरा कोई उसके लिए उत्तरदायी नहीं।

राम अब आपको पूर्वीय भारत के एक कवि का किस्सा सुनायेगा। वह कवि मुसलमान था—बड़ा भला और बड़ा चतुर। एक शब्द में वह सुयोग्य और हाजिरजवाब था। वह एक देशी राजा के दरबार में रहता था। राजा उससे बड़ा स्नेह करता था। एक दिन रात में राजकुमार ने बड़ी देरतक उसे अपने साथ रक्खा। कवि तरह तरह की कवितायें, सरस कथायें और अत्यंत रोचक कहानियां सुना सुनाकर उसका मनोरंजन करता रहा। उस चतुर कवि ने यहां तक राजा को प्रसन्न किया कि वह शयनागार में जाना ही भूल गया। रानी ने राजकुमार से पूछा, आज सोने के लिए शयनागार

आने में इतनी देर कैसे हुई ? राजा ने उत्तर दिया, "ओह, आज एक बड़ा ही विलक्षण पुरुष आया था, बड़ा ही मजेदार, रसिक, चतुर और हँसमुख ।" फिर रानी ने कवि का और अधिक हाल पूछा । रानी के कौतूहल के कारण राजा को भी कवि की योग्यताओं और गुणों का इस प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवसर मिला कि वे दोनों बहुत देर तक जागते रहे, यहां तक कि सोते समय सवेरा हो आया । रानी का कौतूहल चरम सीमा पर था । उसने राजा से प्रार्थना की कि किसी दिन उस रसिक कवि को मेरे महल में भी लाइये । दूसरे ही दिन वह रसिक कवि रानी के सामने लाया गया । आप जानते होंगे कि भारतवर्ष के रीतिरिवाज पाश्चात्य रीतियों से बिलकुल भिन्न हैं । भारत की स्त्रियाँ पृथक कमरों में रहती हैं और दूसरों से, पुरुषों से, बहुत मिलती जुलती नहीं । वे अलग रहती हैं, विशेषकर मुसलमान रमणियां । हिन्दु नारियों के विपरीत, वे बड़ा बुरका पहनती हैं, अपने पति या किसी महात्मा, सच्चरित्र और शरीफ व्यक्ति के सिवा अन्य किसी के सामने मुँह नहीं खोलतीं । बादशाह इस शायर को रनिवास में, जनानखाने में ले गया । वहाँ उसने अपनी कवितायें पढ़ीं और कहानियाँ सुनाईं । महिलायें बहुत खुश हुईं । वहाँ कवि ने यह बतलाया कि वह अन्धा है, नेत्र के रोग से पीड़ित है । किन्तु वास्तव में वह अन्धा था नहीं । इसमें कवि का दुष्ट अभिप्राय यह था कि किसी प्रकार उसे रनिवास में रहने दिया जाय, कोई उस पर सन्देह न करे, और स्त्रियाँ उसे अन्धा समझ कर बिना संकोच उसके सामने निकलें और बातचीत करें, इस कमरे से उस कमरे में जाते हुए वे अपने चेहरों पर

कभी मकानें न डालें। और हुआ भी यही। उसे अन्धा समझ कर राजा ने उसे रनिवास में रहने की आज्ञा दे दी। किन्तु आप जानते हैं, सत्य छिपाया नहीं जा सकता।

सत्य छिपाया नहीं जा सकता—एक दिन वह अवश्य प्रकट होगा। एक दिन कवि ने किसी लौंडी से कोई चीज लाने के लिए कहा। आप जानते हैं कि भारतवर्ष में जो लोग तनिक धनी हो जाते हैं वे बड़े आलसी बन जाते हैं। आलस्य धन और वैभव का लक्षण माना जाता है। आप बड़े कुलीन हैं यदि स्वयं कुछ काम नहीं कर सकते। यदि नौकर की सहायता से आप गाड़ी में बैठने हों, तो आप बड़े भारी आदमी हैं। यदि कपड़े पहिनने में भी आपको किसी नौकर से सहायता लेनी पड़ती है, तो आप और भी श्रेष्ठ हैं। यदि चलने-फिरने में भी आपको एक नौकर का सहारा लेना पड़ता है तो आपकी श्रेष्ठता का क्या कहना! इस प्रकार वहाँ परावलम्बन प्रतिष्ठा का चिन्ह माना जाता है। और स्वाधीन और स्वावलंबन पराधीनता और दासत्व का लक्षण! अब इस कवि को राज्य-भवन में एक अच्छी जगह मिल गई तो अपनी जगह से उठकर किसी दूसरे मनमाने स्थान पर कुर्सी ले जाकर रखना वह अपनी शान के ख़िलाफ़ समझने लगा। इसलिए एक दासी को उसने ऐसा करने की आज्ञा दी। किन्तु उसने कटुता से जवाब दिया—मुझे फ़ुरसत नहीं है, उसके बाद दूसरी दासी वहां आई। उसने भी अपने पास आने का संकेत किया। और कुर्सी हटा देने को कहा। वह बोली—कमरे में कोई कुर्सी नहीं है। फिर उसने कहा, "अच्छा, पानी का वह गिलास मेरे पास ले आओ।" उसने उत्तर दिया—एक भी गिलास इस कमरे में नहीं है। मैं

दूसरे कमरे से तुम्हारे लिए लाये देती हूँ। तब कवि बोल पड़ा–तुझे दिखाई नहीं पड़ता, एक गिलास तो वह रखा है।' अपना काम करा लेने की धुन में वह अपना अन्धापन भूल गया। यही हुआ करता है। इसी तरह पर सत्य झूठों से दिल्लगी करता है। आप जानते होंगे कि लेडी मैक्बैथ ने भी पाप किया था, परन्तु वह उसे छिपा न सकी। सत्य ने उसे विक्षिप्त कर दिया और अपने आप ही उसने डाक्टर से स्वीकार किया। यही हुआ करता है। यह कुदरत का कानून है। जब इस कवि ने कहा, "वहां रखा तो है, तुझे नहीं दिखाई देता?" तब दासी उसका काम करने के बदले तुरन्त दौड़ती हुई सीधी रानी साहिबा के पास पहुँची और सारा भेद खोल दिया, "देखिये तो! यह मनुष्य अन्धा नहीं है, यह बड़ा दुष्ट और पापी है, इसे घर से निकाल बाहर करना चाहिए।" वह घर से निकाल दिया गया, किन्तु लगभग तीन दिन के बाद ही सचमुच अन्धा हो गया। यह क्या बात हुई? किसने उसे अन्धा बना दिया। कर्म का विधान आप को बताता है कि वह मनुष्य अपनी ही मर्जी से अन्धा हुआ था। अपने भाग्य का वह आप ही विधाता था। उसकी अन्तरात्मा ने ही उसे अन्धा बना दिया। किसी दूसरे ने उसे नेत्रहीन नहीं किया, उसी की इच्छाओं ने उसे अन्धा बनाया। बाद में अन्धा होने पर उसने रोना-धोना मचाया, दांत पीसना और छाती पीटना शुरू किया।

एक आदमी भारी बोझ कंधों पर लिये जा रहा था। वह बुड्ढा और कमजोर था, ज्वर सा मालूम होने लगा, और गरमी के मारे बड़ा बेचैन हुआ। वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया और कंधों से बोझ उतारकर कुछ देर तक

विश्राम करने लगा। दुःख में उसने पुकारा—मौत ! आ जा, ऐ मौत। आ जा ! मेरा संकट हर ले; मुझे छुट्टी दे दे। कहानी आगे कहती है कि यमराज तुरन्त ही उसी ठौर उसके सामने प्रकट हो गये। जब उसने उनकी ओर देखा, तो बड़ा चकित हुआ, और थर थर कांपने लगा। कैसी भयानक मूर्ति, कैसी दानवाकार मूर्ति थी ! उसने यमराज से पूछा, "तुम कौन हो ?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं वही हूँ जिसको तुमने याद किया था, तुमने अभी अभी मुझे बुलाया था, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने आया हूं।" तब तो बूढ़ा काँपने लगा, और बोला, "मैंने तुम्हें केवल इसलिए बुलाया था कि मेरा बोझा उठवा दो, उसे मेरे कंधों पर धर दो।"

लोग ऐसा ही करते हैं। तुम्हारी सारी कठिनाइयां, तुम्हारी सारी परेशानियां, यह सब जिसे तुम यातना कहते हो—सबको लाने वाला तुम्हारा अपना ही आप है। तुम अपने भाग्य के आप ही विधाता हो। जब इच्छित वस्तु सामने आती है, तब तुम रोना और भीकना शुरू करते हो। तुम स्वयं मृत्यु का आवाहन करते हो, और जब मृत्यु आती है तब तुम रोने लगते हो। किन्तु अन्यथा हो नहीं सकता। जब एक बार तुम नीलाम में सबसे ऊँची बोली बोल देते हो, तब तुम्हें चीज लेनी ही पड़ेगी। जब तुम घोड़े को दौड़ाते हो, तब गाड़ी उसके पीछे पीछे दौड़ेगी ही। इसलिए जब एक बार तुम इच्छा करते हो, तो तुम्हें परिणाम भोगना ही पड़ेगा। लोग साधारणतः बुढ़ापे में मरते हैं और जवानी में बहुत कम मरते हैं—इसका क्या कारण है ? वेदान्त कहता है कि बूढ़े होने पर हमारे शरीर रोगी हो जाते हैं। बीमारी

हमें सताती है और तब हम मौत की इच्छा करने लगते हैं। हम संकट से छुटकारा चाहने लगते हैं, और छुटकारा हमारे सामने आता है। इस तरह आपकी मृत्यु आपही के द्वारा प्रकट होती है। वेदान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य आत्महन्ता है। मृत्यु उसी क्षण आती है, जब तुम उसके आने की इच्छा करते हो। कुछ लोग भरी जवानी में क्यों मर जाते हैं? इस समय शायद् आप राम की बात पर विश्वास न करेंगे, किन्तु यदि आप ठीक ठीक अवलोकन करेंगे तो आपको राम के इस कथन से सहमत होना पड़ेगा। राम ने बहुतेरों को चढ़ती जवानी में मरते देखा है। राम ने उनके निजी व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश किया, सारे मामले की जाँच-पड़ताल की, तो मालूम हुआ कि ये युवक दिलो-जान से मृत्यु के इच्छुक थे, अपनी परिस्थितियों के मारे परेशान थे, अपने वातावरण को बदलना चाहते थे। सदा ऐसी घटनाओं का रहस्य इसी प्रकार का होता है। अब प्रत्यक्ष उदाहरण देने के लिए समय नहीं रहा, परन्तु है यह एक तथ्य।

भारतवर्ष के किसी साम्प्रदायिक महाविद्यालय में एक होनहार युवक अध्यापक का काम करता था। एक सार्वजनिक सभा में उसने कहा कि मैं अपना जीवन इस सम्प्रदाय के निमित्त अर्पण कर दूँगा। उसने अपने आपको उसके प्रति अर्पण कर दिया। कुछ समय तक बड़ी सरगर्मी से वह वहाँ काम करता रहा किन्तु फिर उसकी राय बदली, उसके विचारों का प्रसार हुआ, उसका मस्तिष्क विस्तीर्ण हुआ, उसके विचार आगे बढ़े, उस सम्प्रदाय वालों के साथ मिल-जुल कर काम करना उसके लिए कठिन हो गया, वे सम्प्र-

दायवादी भी दिल ही दिल में जलने लगे। फिर भी उसे उन के साथ किसी तरह मिलकर काम करना पड़ता था, क्योंकि वह वचन दे चुका था, क्योंकि वह उस दल के प्रति अर्पण हो चुका था। इसलिए इस युवक के लिए छुटकारे का और कोई साधन न था। उसका मन तो दूसरी जगह था और तन दूसरी जगह, मन और तन भिन्न भिन्न हो गये थे। यह हालत कहाँ तक टिकती। विचारे की मृत्यु हो गई। मृत्यु के सिवा अन्य उपायों से वह अपनी अवस्था को नहीं बदल सकता था। मृत्यु उसे बचानेवाली सिद्ध हुई। इस तरह पर मौत भी हौवा नहीं है जैसा कि लोग समझते हैं।

तुम अपनी परिस्थितियों के स्वामी हो, आपही अपने भाग्य के निर्माता हो। फिर लोग दुःखी कैसे हो जाते हैं? हम पर मुसीबतें क्योंकर आती हैं? उत्तर—इच्छाओं के संघर्ष से। तुम्हें एक प्रकार की इच्छा होती है, जो तुमसे एक विशेष प्रकार का काम करवाती है और फिर तुम्हें दूसरी इच्छा होती है, जो तुमसे दूसरे प्रकार के काम करवाती है। दोनों इच्छायें मौजूद हैं। एक इच्छा तुम्हें लेखक, वक्ता, अध्यापक, व्याख्याता, या प्रचारक के पद पर आसीन करना चाहती है, साथ ही दूसरी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है कि तुम इन्द्रियों के दास बने रहो। ये परस्पर विरोधी इच्छायें हैं, जो साथ साथ नहीं चल सकतीं। ऐसी हालत में क्या होता है? दोनों की पूर्ति आवश्यक है। जब कि एक की पूर्ति होती है तब दूसरी को ठेस पहुँचती है और तुम्हें व्यथा का अनुभव होता है। जब कि दूसरी की पूर्ति होती है तो पहली को ठेस पहुँचती है और तुम्हें दुःख होता है। इसी प्रकार लोग अपने आपको क्लेश में डाले रहते

हैं। तुम्हारी पीड़ायें भी यह प्रकट करती हैं कि तुम अपने भाग्य के आप ही स्वामी हो। अब एक बड़ी सुन्दर कहानी से राम इस बात का दृष्टान्त देगा—.

एक भारतवासी के दो स्त्रियां थीं। आप जानते हैं कि हिन्दू बहुविवाह में नहीं विश्वास करते, किन्तु मुसलमान उसे मानते हैं। यह मुसलमान था, उसके दो स्त्रियां थीं। उनमें से एक कोठे पर रहती थी और एक नीचे। एक दिन एक चोर घर में घुसा। वह सारा माल असवाब चुराना चाहता था, किन्तु घर के आदमी जाग रहे थे, और चोर को चुराने का कुछ भी अवसर हाथ नहीं लगा। सवेरा होते ही घर के लोगों ने चोर को देख लिया, और वे उसे पकड़कर मजिस्ट्रेट के सामने ले गये। कोई चीज चोरी नहीं गई थी, फिर भी चोर ने घर में सेंध तो लगाई ही थी। यह भी एक अपराध है। मजिस्ट्रट ने चोर से कुछ प्रश्न पूंछे। उसने तुरंत स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी करने की नियत से ही घर में सेंध लगाई थी। मजिस्ट्रेट उसे कुछ दंड देने ही वाला था कि वह मनुष्य बोला "जनाब, ! आप जो चाहे दण्ड मुझे दें, आप मुझे कारागार में भेज दें, आप मुझे कुत्तों के सामने फेंक दें, आप मेरे शरीर को जलवा दें, किन्तु एक दण्ड मुझे न दीजियेगा।" मजिस्ट्रेट ने चकित होकर पूछा, 'कौन सा ?' मनुष्य ने उत्तर दिया, "मुझे दो स्त्रियों का पति कभी न बनाईयेगा। यह दंड मुझे कदापि न दीजियेगा।" यह क्यों ? तब चोर बताने लगा कि वह कैसे पकड़ा गया और उसे कोई वस्तु चुराने का अवसर क्योंकर नहीं मिला। उसने कहा कि सारी रात मकान के मालिक को जीने पर खड़ा रहना पड़ा, क्योंकि एक जोरू उसे ऊपर खींचती थी और

दूसरी उसे नीचे घसीटती थी। उसके सिर के बाल नुच गये और पैरों के मांस फट गये। सारी रात वह जाड़े के मारे कांपता रहा। बस, इसी कारण मैं न चुरा सका।

ऐसा ही होता है। तुम्हारे क्लेश और दुःख तुम्हारी परस्पर विरोधी इच्छाओं के कारण उत्पन्न होते हैं, तुम्हारी इच्छाओं में सामंजस्य नहीं होता। आप जानते हैं कि जिस घर में फूट होती है, वह नष्ट हो जाता है। इसलिए अपने दिलों को टटोलिये और देखिये कि वहां शान्ति है या नहीं। यदि आपका लक्ष्य एक होगा, आपके उद्देश्यों में एकता होगी तो आपको कोई कष्ट नहीं होगा, कोई व्यथा नहीं होगी। किन्तु यदि वहां विरोध और प्रतिकूल भाव रहेगा तो घर अवश्य गिर जायगा, आपको अवश्य अनेकों कष्ट भोगने पड़ेंगे।

तुम्हारी व्यथाओं का यही कारण है, आप स्वयं ही उनके लानेवाले हैं। आप अपने भाग्य के आप ही मालिक हैं। मनुष्य में निम्न आकांक्षायें भी होती हैं और उच्च भी। दोनों में लड़ाई होती रहती है। किन्तु विकास के सार्वभौम सिद्धान्त के अनुसार, इस झगड़े और टंटे में, योग्यतम ही विजयी होता है। योग्यतम की विजय प्रकृति को अभीष्ट है। इस प्रकार योग्यतम को विजय दिलाने वाले इस सार्वभौम विधान के सामंजस्य में, इस संसार में उन इच्छाओं की विजय होती है जो सबसे अधिक शक्तिशालिनी होती हैं। इनमें यह शक्ति कहां से आती है? शान्ति, सत्य से, और केवल सत्य से प्रकट होती है। केवल उन्हीं इच्छाओं की जीत होती है जिनमें सत्य, सदाचार, न्याय, पुरुषार्थ या शुद्धता की मात्रा अधिक होती है। तुम्हें संगीन की नोक पर,

खांड़े की धार पर उन्नति और सुधार करना पड़ेगा। तुम सदा विषयभोग में लिप्त होकर सड़ नहीं सकते। सदा स्वार्थ-पूर्ण तृष्णा और लोभ में तृप्त नहीं रह सकते। तुम्हें उठना होगा, धीरे धीरे किन्तु निश्चयपूर्वक। तुम्हारे सामने आनंद का पथ खुला हुआ है। यहां कर्म का विधान हरेक के लिए सबके लिए आनन्द लिये खड़ा है।

इच्छाओं की पूर्ति क्यों आवश्यक है? वेदान्त कहता है तुम्हारी असली प्रकृति, तुम्हारा असली आत्मा अजर-अमर है। राम अविनाशी, परमेश्वर है। अतः तुम्हारी इच्छायें, तुम्हारा तन, और मन सत्य के महासमुद्र में, नित्यता के महासागर में लहरों और तरंगों जैसा होने के कारण उसी तत्त्व के स्वभावानुकुल बन जाता है, जिससे वे बनते हैं। सत्यनारायण, परमात्मा या आत्मा दुनिया को अपनी श्वास के रूप में बनाता है। संसार मेरी सांस है। पलक मारते ही मैं सृष्टि की रचना करता हूँ। पलक मारते ही दुनिया की सृष्टि हो जाती है (मैं तुम्हारी आत्मा हूँ)। हमारी इच्छाओं में परमात्मा का और उसके साथ में तुच्छ अहंकार का भाव मिला जुला रहता है। इच्छाओं का वह पहलू जो आन्तरिक परमेश्वरत्व या अमरत्व पर निर्भर है इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रेरित करता है और इच्छाओं के वे अंश जो माया पर अवलम्बित हैं इच्छाओं की पूर्ति में विलम्ब लगाते हैं। तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति में जो देर होती है उसका कारण तुम्हारी इच्छाओं का माया-तत्त्व है, और तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति की असंदिग्धता, निश्चय का हेतु तुम्हारी इच्छाओं की आन्तरिक दैवी प्रकृति है। आप यहां पूछ सकते हैं कि हमारी इच्छायें दैवी या ईश्वरीय क्योंकर होती

है ! इच्छा-मात्र प्रेम के सिवा और कुछ नहीं है, और प्रेम ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। क्या प्रेम ईश्वर नहीं है? इच्छायें उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि आकर्षण-शक्ति। आकर्षण-शक्ति क्या है? एक ओर पृथिवी चन्द्रमा को आकर्षित कर रही है। दूसरी ओर सूर्य पृथिवी को अपनी ओर खींच रहा है। सभी ग्रह एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहे हैं—'सार्वभौमिक प्रेम' यही प्रीति या साम्यता का नियम है। हर एक अणु परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहा है। परमाणुओं में संसक्ति या संलग्नता की प्रवृत्ति क्या है ? एक परमाणु दूसरे परमाणु को खींच रहा है: यही आकर्षण की प्रवृत्ति तुम्हारे स्थिति विन्दु से इच्छा का स्वरूप है। यह आकर्षण, यह शक्ति, यह संसक्ति, यह संलग्नता, यह रासायनिक घनत्व और आकर्षण क्यों होता है ? यह सब इच्छा का प्रसार है। तुम्हारी इच्छायें दैवी या ईश्वरीय होती हैं। इसीलिए तुम्हारी इच्छाओं का ईश्वरीय स्वभाव उनकी पूर्ति का आग्रह करता है। किन्तु जब तुम स्वार्थपूर्ण अथवा व्यक्तिगत हो जाते हो, तब उनका स्वार्थपन उनको माया के स्वभाव का बना देता है और इस कारण उनकी पूर्ति में देर लगती है।

तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति सरलता और निर्विघ्नता-पूर्वक हो, वे पूर्ण संतुष्टि के साथ सफल हों; इसके लिए तुम्हें अपनी इच्छाओं के माया-स्वभाव को घटाना होगा, तुम्हें अपनी इच्छाओं की ईश्वरीय या निस्वार्थ-प्रकृति को प्रधानता देनी होगी, तब वे फलवती होंगी।

अब राम एक कविता पढ़कर इस विषय को समाप्त करता है। एक बार अनुभव करो कि तुम स्वयं अपने भाग्य

विधाता हो, फिर देखो तुम कितने सुखी होते हो। जब तुम ॐ जपते हो, और जब तुम यह भान करते हो कि अपने भाग्य के तुम आप ही स्वामी हो तब रोने-झीखने और दुखी होने की कोई जरूरत नही रह जाती। तुमने अपनी अवस्था ऐसी बनायी है। अपनी 'प्रभुता' की उपलब्धि करो। अपने आप को परिस्थति का गुलाम मत समझो, इस सत्य को पहचानो, इस सत्य का अनुभव करो कि तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो। और तुम चाहे जिस दशा में हो, वातावरण कुछ भी हो, देह चाहे कारागार में डाल दी जाय अथवा तेज धारा में बहा दी जाय, या किसी के पैरों तले कुचली जाय, याद रक्खो, "मैं ईश्वर हूँ" जो सारी अवस्थाओं का स्वामी है, मैं देह नहीं हूँ, मैं वह हूँ, भाग्य का विधाता।" तुम्हारे मित्र स्वयं तुम्हारे द्वारा प्रकट होते हैं, जिनको तुम मित्र कहते हो उनका तुम्हारी इच्छा तुम्हारे पास ला देती है। जिनको तुम शत्रु कहते हो उनको भी इच्छा ही तुम्हारे सामने खड़ा कर देती है। ऐ शत्रुओ! मैंने तुम्हें बनाया है, ऐ मित्रों! तुम भी मेरी कृति हो। इस संकल्प का अनुभव करो, और इसको हृदयगम करो और फिर देखो कि तुम कितने सुखी हो जाते हो।

Oh, brimful is my cup of joy,
    Fulfilled completely all desires
Sweet morning's zephyrs I employ;
    'Tis I in bloom their kiss admires,
The rainbow colours are my attires,
    My errands run like lightning fires,
The smiles of roses, the pearls of dew,

The golden threads, so fresh, so new,
All sun's bright rays, embalmed in sweetness,
The silvery moon, delicious neatness,
The playful ripples, waving trees,
Entwining creepers, humming bees,
Are my expression, my balmy breath,
My respiration is life and death,
What shall I do, or where remove ?
I fill all space, no room to move.
Shall I suspect or I desire ?
All time is me, all force my fire,
Can I be doubt or sorrow striken ?
No, I am verily all causation.
All time is now, all distance here,
All problems, solved, solution clear
All ill and good, all bitter and sweet
In those my throbbing pulse doth beat
All lovers I am, all sweet hearts I,
I am desires, emotions I.
No selfish aim; no tie, no bond,
To me do each and all respond,
Impersonal Lord in foe and friend,
To me doth every object bend.
ओ, मेरे हर्ष का प्याला है, लबालब भरा हुआ
सब इच्छायें बिलकुल पूर्ण हैं,
मधुर प्रभात की मंदवायु मेरी चेरी है,
मैं ही उसके प्रसार में उसके चुम्बन का मजा लेता हूँ,
और इन्द्रधनुष के रंग हैं मेरे वस्त्र,

विद्युत मेरे संदेशवाहक दूत अग्नि की भाँति दौड़ने वाले,
गुलाब की मुसक्यान, ओस के मोती,
सूर्य की चमकीली किरणें, सब मधुरता में लिपटी हुई,
रुपहला चाँद, मीठी मीठी स्वच्छता,
खेलभरी तरंगें, लहलहाते वृक्ष,
अंकधारिणी लतायें, भनभनाते भौंरे,
हैं मेरे प्रकाशन, मेरी सुगंधित श्वांस,
जीवन और मृत्यु है मेरा श्वासोच्छ्वास।
क्या मैं करूँ, और कहाँ हटूँ?
मैं ही सम्पूर्ण स्थान को भरे हूँ, कहीं सरकने की जगह नहीं।
क्या मैं सन्देह करूँ और क्या इच्छा करूँ?
सारा समय मेरा है, सारी शक्ति मेरी अग्नि है।
क्या मैं सन्देह या शोक पीड़ित हो सकता हूँ?
नहीं, मैं तो सचमुच हेतु मात्र हूँ,
सब काल अब है, सब अन्तर यहाँ,
सब समस्यायें हल हैं, सुलभाव स्पष्ट है।
सारा बुरा भला, कड़वा और मीठा।
उनमें चलती है मेरी फड़कती नाड़ी।
मैं ही प्रेमी हूँ, मैं ही प्रियतम
मैं ही इच्छायें, मैं ही भावनायें।
कोई स्वार्थपूर्ण लक्ष्य नहीं, न कोई संबंध, न कोई बन्धन,
हरेक और सब मेरे प्रति उत्तरदायी,
निराकार स्वामी, शत्रु और मित्र मैं,
हरेक पदार्थ करता है मुझे शत शत प्रणाम!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

मृत्यु के वाद

अथवा

सब धर्मों की संगति

२५ जनवरी १९०३ को गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में अमर और सब धर्मों के आदर्शरूप आत्मन्।

इस हाल में अभी तक जो व्याख्यान दिये गये हैं वे बहुत कठिन थे, उनके विषय कुछ नीरस और गूढ़ थे। किन्तु आज का भाषण अपेक्षाकृत सरल है।

कुछ वर्ष पूर्व जब राम भारतवर्ष में था, तब उसके हाथ एक पुस्तक लगी जो एक रेवरेंड डाक्टर, एक अमेरिकन सज्जन, भारत के एक विश्वविद्यालय के अध्यापक ने लिखी थी। इस पुस्तक का विषय था "मृत्यु के उपरान्त"। उसमें बड़े ही सुन्दर रूपक द्वारा दिखलाया गया था कि यह दुनिया एक स्टेशन के समान है और परलोक मानों अगम्य सागर के उस पार दूसरे स्टेशन के समान है और सागर के उस पार जाने वालों को टिकट खरीदना पड़ता है, जिनके पास ठीक प्रकार के टिकट नहीं होते, वे जहाज पर से नीचे गहरे गर्त में फेंक दिये जाते हैं। और जिनके पास ठीक तरह के टिकट होते हैं, वे ठिकाने पर पहुंचा दिये जाते हैं। टिकट कई तरह के होते हैं, पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, तीसरा दर्जा,

इत्यादि। फिर कुछ नकली टिकट भी होते हैं। जैसे सफेद, काले, पीले, हरे, आदि। किन्तु ठीक तरह के टिकट, जो तुमको ठिकाने पर पहुँचावेंगे, लाल होते हैं, क्योंकि वे ईसा के खून से रंगे होते हैं। जिनके पास ऐसे टिकट होंगे सिर्फ वही सफलतापूर्वक ठिकाने पर पहुँचने पावेंगे, दूसरे कदापि, कदापि नहीं जा सकते। सफेद, काले, पीले, तथा अन्य प्रकारों के टिकट मानो दूसरे धर्मों के टिकट हैं, और लाल टिकट जिसमें ईसामसीह का रक्त लगा हुआ है ईसाई धर्म के टिकट हैं। यही पुस्तक का विषय था और बड़ी सुंदरता से उपस्थित किया गया था। रेवरेंड डाक्टर ने अपनी सम्पूर्ण योग्यता और अँग्रेजी साहित्य का अपना विशाल ज्ञान मानो इस पुस्तक के लिखने में लुटा सा दिया था।

केवल ईसाईयों का ही नहीं, दूसरे धर्मों के लोगों का भी, कुछ कुछ ऐसा ही विश्वास है। मुसलमान कहते हैं कि मृत्यु के बाद, टिकट कलक्टर, सर्वोच्च स्टेशन मास्टर या हिसाब निरीक्षक हजरत मुहम्मद हैं, और जिनके पास हजरत मुहम्मद का चिन्ह न होगा, वे नरक में डाले जायँगे। दूसरे धर्मों के भी कुछ ऐसे ही विचार हैं। वे सब कहते हैं कि सब मनुष्य मरने के बाद चाहे कहीं के भी—अमेरिका, यूरोप, अफरीका, आस्ट्रेलिया या एशिया के रहनेवाले हों, भुगतान के लिए एक मनुष्य के हवाले कर दिये जायँगे, चाहे वह ईसा हो, चाहे मुहम्मद, चाहे बुद्ध, चाहे जोरोस्टर, कृष्ण, या कोई अन्य व्यक्ति। यही संसार के धर्मों में झगड़े, वाद-विवादों और संघर्षों का मूल कारण है। यही अन्ध विश्वास, यह दर्पपूर्ण विचार संसार में अधिकांशतः उस रक्तपात का कारण हुआ है, जो धर्म के नाम पर बहाया गया है।

अब इस विषय पर वेदान्त-दर्शन का विचार आपके सामने रक्खा जायगा। वेदान्त इन सब धर्मों का समन्वय करता है, और कहता है कि आपका मन दूसरे धर्मों के अधिकारों में दस्तन्दाज़ी किये बिना ही ठीक हो सकता है। आपके ठीक होने के लिए यह ज़रूरी नहीं कि आप अपने भाइयों को गलत समझें। यह एक बहुत बड़ा विषय है, और एकाध घंटे के थोड़े से समय में वेदान्त दर्शन की व्याख्या के अनुसार हम इस विषय के केवल मुख्य मुख्य पहलुओं पर ही विचार कर सकते हैं।

संसार में जितनी उन्नति हो रही है वह सब एक सौंदर्य-पूर्ण रेखा के रूप में हो रही है। विश्व का सारा विकास और उन्नति एक तालबद्ध रेखा में हो रही है। संसार के सारे आन्दोलन और स्फुरण स्वरबद्ध हैं। चढ़ाव और उतार ऊँचे उठना और नीचे गिरना भी एक नियमबद्ध क्रम में हो रहा है। जैसा कि गणित विद्या से प्रकट होता है कि प्रत्येक अधिकतम के लिये एक न्यूनतम होना भी ज़रूरी है। अधिकतम और न्यूनतम बिन्दु बारी बारी से हमारे सामने आते हैं। दिन और रात में भी हमारी गति तालबद्ध है। जब हमें चलना होता है, तब पहले एक पैर उठाते हैं और फिर दूसरा। वर्ष की ऋतुयें निश्चित क्रम में एक दूसरी के बाद आती हैं। यही ऋतुयें बार बार होती हैं, इसे ताल-बद्ध गति अथवा मौसम कहते हैं। इस संसार में प्रत्येक सामयिक गति है। नित्य तुम जागते हो और सोते हो, नित्य सोते हो और जागते हो। जिस प्रकार सोना और जागना ठीक क्रमपूर्वक एक दूसरे के बाद होता है, उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार, जीवन और मरण, मरण और जीवन

और ठीक एक बँधे क्रम से एक दूसरे का अनुगमन करते हैं। इस सम्पूर्ण विश्व में किसी भी स्थान पर यकायक रुकाव कहीं नहीं देखा जाता। कालचक्र क्या कभी रुकता है? कभी नहीं। क्या आप जानते हैं कि समय कब से शुरू हुआ? क्या देश की कहीं सीमा है? नहीं। इनका अन्त नहीं है। क्या नदियाँ कभी रुकती हैं? आप कहेंगे वे रुकती हैं। किन्तु नहीं, वे नहीं रुकतीं। जो नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, वे भाप के रूप में ऊपर उठती हैं, और फिर लौट कर पहाड़ों को जाती हैं, और फिर बह कर समुद्र में पहुँचती हैं, और समुद्र से फिर लौट कर पहाड़ों पर जाती हैं। यही चक्र चलता रहता है। मान लो, यहाँ एक मोमबत्ती है। एकाध घंटे में वह जल जाती है, बत्ती और सब कुछ। तुम कहते हो, वह मर गई। किंतु नहीं, वह मरती नहीं। रसायन विद्या हमें बताती है कि वह नहीं मरती। उसका केवल रूपान्तर हो जाता है। उससे उत्पन्न होनेवाले कार्बन डायोक्साइड गैस और जलअंश फिर उद्भिज् पदार्थों में, वनस्पतियों में प्रकट होते हैं। तात्पर्य यह, यहाँ कुछ भी मरता नहीं। दुनिया की सारी प्रगति एक चक्र में या गोलाकार होती है। देखो, तुम जिन्दा हो, फिर मरोगे। क्या मृत्यु के बाद की तुम्हारी दशा सदा वैसी बनी रहेगी? तुम्हें ऐसा कहने का कोई अधिकार नहीं। ऐसा कहना प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है। यदि तुम कहते हो कि मृत्यु के बाद केवल अनन्त नरक भोग है और जीवन बिलकुल नहीं होता, तो तुम संसार का संचालन करनेवाले अत्यन्त कठोर नियमों की अवज्ञा शुरू कर देते हो। तुम्हें ऐसी बात कहने का कोई अधिकार नहीं है। मरने के बाद मनुष्य को यदि परमेश्वर

सदा के लिए नरक में डाल देता है, तो ऐसा परमेश्वर सच-मुच बड़ा निर्दयी होगा। एक मनुष्य ७०-८० साल की ज़िंदगी टेर करके मर जाता है। बिचारे को ठीक प्रकार की शिक्षा पाने का अवसर कभी नहीं मिला, अपनी उन्नति के उचित उपाय उसके हाथ नहीं लगे। दीन माता-पिता के घर में उसका जन्म हुआ था, वे उसे शिक्षा नहीं दे सके, वे उसे किसी देव-स्थान और धर्म्म-सम्प्रदाय में नहीं ले जा सके, इस प्रकार वह बिचारा मर गया। इसे ईसा के रक्त से रञ्जित टिकट कभी प्राप्त नहीं हुआ। अब यह मनुष्य सदा के लिए नरक में डाल दिया जायगा? ओहो! यदि परमेश्वर ऐसा करे तो क्या वह अत्यन्त प्रतिहिंसा-परायण न कहा जायगा? न्यायानुसार तुम्हें ऐसी बात कहने का कोई अधिकार नहीं। वेदान्त के अनुसार, मर जाने के बाद मनुष्य सदा मुर्दा ही नहीं बना रहता, यह आवश्यक नहीं। मृत्यु के बाद जीवन है, और जीवन के बाद मृत्यु। वास्तव में मृत्यु एक नाम मात्र है। मृत्यु का अर्थ है केवल रूपान्तरित हो जाना, इससे अधिक वह कुछ नहीं। उसे बड़ा जूजू मानना भारी भूल है। उसमें भीषणता या भयानकता कुछ भी नहीं है, वह तो एक दशा का परिवर्तनमात्र है।

अच्छा, जितने दिनों तुम इस दुनिया में जीवित रहते हो, ७० साल या ८० साल, तब तक तुम एक दीर्घ, अति दीर्घ जाग्रत अवस्था का उपयोग करते हो। इस दुनिया का जीवन एक दीर्घ, चिरकाल तक चलनेवाली जाग्रत अवस्था है। जीवन के बाद यह नाम मात्र की मृत्यु वेदान्त के मत से उतनी ही लम्बी—एक सुदीर्घ निद्रा है। वेदान्त के अनुसार 'मृत्यु' एक दीर्घ निद्रा मात्र है। जिस तरह दिन के चौबीस घंटों

में लगभग तीन या चार घंटे की निद्रा का उपभोग करने के बाद तुम फिर जाग उठते हो, उसी तरह मृत्यु का विश्राम भोगने के बाद तुम्हें फिर इस दुनिया में जन्म लेना पड़ता है, तुम फिर अवतीर्ण होते या जन्म लेते हो। पुनर्जन्म या फिर देह धारण करना ऐसा है जैसे झपकी लेने के बाद हम फिर जाग उठते हैं।

वेदान्त के अनुसार, मर जाने के बाद मनुष्य तुरन्त उसी क्षण पुनर्जन्म नहीं लेता। जब बीज पेड़ से गिरता है तो उससे तुरन्त नया पेड़ नहीं उग आता, उसमें कुछ देर लगती है। जब मनुष्य एक घर छोड़ता है, तब वह तुरन्त दूसरे घर में प्रवेश नहीं करता, उसमें उसे कुछ समय लगता है। इसी तरह मरने के बाद मनुष्य तुरन्त दूसरी देह नहीं धारण करता। उसे एक मध्यवर्ती स्थिति से होकर गुजरना पड़ता है, जिसे हम 'मृत्यु' की दशा या दीर्घ निद्रा की दशा कहते हैं। अब इस दशा का पता लगाइये? यह दशा अर्थात् मृत्यु और दूसरे जन्म के बीच की दशा किस प्रकार की होती है? यह निद्रा की अवस्था है और इसमें निद्रा के सभी गुण विद्यमान हैं। आप जानते हैं कि जब कोई मनुष्य सो जाता है, तब स्वप्न में वह उसी प्रकार की चीजें देखता है जैसी उसने अपनी जाग्रतावस्था में देखी होती हैं। यह साधारण नियम है। कभी कभी इसके अपवाद भी देखने में आते हैं, किन्तु साधारणतः मनुष्य स्वप्नों में उसी प्रकार की चीजें देखता है जैसी वह अपनी जाग्रत अवस्था में देखता रहता है। जो लोग विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं के लिए पढ़ते हैं, वे राम के इस कथन का अनुमोदन करेंगे, कि जब उनकी परीक्षा निकट आती जाती है और वे बड़े यत्न से

परीक्षा की तैयारी करते हैं, तब उन्हें अपने स्वप्नों में प्रायः उसी प्रकार की बातें दिखाई पड़ती हैं और वे उसी तरह के काम करते रहते हैं जिनमें वे प्रायः दिन में लगे रहते हैं। जब उनकी परीक्षा समाप्त हो जाती है और वे परिणाम की आशा लगाये हुए इच्छा करते रहते हैं कि वे उत्तीर्ण हों, एवम् सफल उपाधिधारियों की सूची में सर्वप्रथम हों, तब उन दिनों में जब वे ऐसे सन्देह की दशा में होते हैं, तब वे प्रायः परीक्षा के परिणामों के सम्बन्ध में स्वप्न देखा करते हैं। जो लोग किसी विषय विशेष या पदार्थ विशेष से प्रेम करते हैं, वे रात को अवश्य ही उसके स्वप्न देखते हैं।

राम जब विद्यार्थी था और बी० ए० परीक्षा की तैयारी कर रहा था, तब उसका एक सहपाठी राम के साथ ही कमरे में रहता था। वह बड़ा खिलाड़ी था। नाचने-गाने, और खेलने में ही वह अपना समय बिता देता था, एक दिन एक सज्जन ने इस मित्र से पूछा कि पढ़ने-लिखने में तुम कितने घंटे लगाते हो। उसने मुस्कराते हुए कहा—"पूरे १८ घंटे।" मित्र ने कहा—"सरासर झूठ! तुम चार या पाँच घंटे तो मेरी उपस्थिति में नष्ट करते हो, मैं स्वयं देखता हूं। और तुम दिन में ८ या ९ घंटे सोते हो, तब तो केवल १० या १२ घंटे शेष बचते हैं, फिर भी तुम कहते हो कि मैं पूरे १८ घंटे पढ़ता हूं।" युवक ने कहा, "आपने अभी गणित पढ़ा नहीं। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि मैं पूरे १८ घंटे पढ़ता हूं।" उस सज्जन ने कहा, "भला, वह कैसे?" नवयुवक बोला—मैं और यह राम एक ही कमरे में रहते हैं। मैं कालेज में १२ घंटे पढ़ता हूं, और यह राम २४ घंटे पढ़ता है। कुल ३६ घंटे हुए। अब औसत निकालो, १८ राम के हिस्से के हुए

और १८ मेरे हिस्से के।" भद्रपुरुष ने कहा, "अच्छा, माना कि तुम १२ घंटे पढ़ते हो, परन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि राम चौबीसों घंटे पढ़ता है। यह कैसे संभव है? मैं जानता हूँ कि राम बड़ा मेहनती विद्यार्थी है, मैं जानता हूँ कि वह अनेक विषयों का अध्ययन कर रहा है, वह केवल विश्वविद्यालय ही का कार्य नहीं करता, वरन् चौगुने अन्य काम भी करता है, माना वह अन्य अनेक विषय तैयार कर रहा है, और सब तरह के कार्य करता है, फिर भी प्रकृति के नियम उसे २४ घंटे कैसे काम करने देंगे।" इस सहपाठी ने समझाना शुरू किया। उसने कहा, "मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ कि जब वह भोजन करता है तब भी वह अपने चित्त को एक क्षण भी विश्राम नहीं लेने देता। मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ कि हर समय उसके पास एक कागज रहता है जिस पर कोई न कोई वैज्ञानिक समस्या विचार के लिए रहती है, कोई गणित या दर्शन का विषय होता है, अथवा कोई पुस्तक या कविता कंठ करने के लिए रहती है। वह चाहे कोई कविता लिखे या दूसरे किसी प्रकार का काम करे, वह एक क्षण भी नष्ट नहीं करता—यहाँ तक भोजन के समय भी कुछ न कुछ करता रहता है। जब वह कपड़े पहनने के कमरे में जाता है, तब वहाँ खरिया से दीवाल पर आकृतियाँ ही खींचता रहता है। जब सोता है तब भी किसी न किसी समस्या को हल करता रहता है, वह सदा उन्हीं विषयों का स्वप्न देखता है जिनमें उसका चित्त दिन में लगा रहता है। इस प्रकार उसके चौबीसों घंटे पढ़ने में बीतते हैं।

निस्संदेह उसके कथन में कुछ सत्यता थी। जो मनुष्य अपने पूरे १८ घंटे अध्ययन में लगाता है, वह स्वप्नों में भी

वही काम करेगा जो दिन में करता रहता है, दूसरी बात वह सोच ही नहीं सकता। कभी कभी लोग कहते हैं कि वे अपने स्वप्नों में ऐसी चीजें देखते हैं जो पहले कभी देखने में नहीं आई थीं। वेदान्त कहता है, "नहीं, ऐसा नहीं होता।" एक मनुष्य आता है और कहता है कि मैंने कल स्वप्न में एक दानव देखा था। उसका सिर सिंह जैसा था, पीठ ऊँट की थी, दुम साँप की थी, पैर मेढ़क जैसे थे। वह कहता है कि पहले कभी मैंने ऐसा पशु नहीं देखा था। वेदान्त उससे कहता है—भाई! तुमने मनुष्य देखा है तुमने सर्प देखा है, तुमने ऊँट देखा है, तुमने मेंढ़क देखे हैं। बस, साँप की दुम, सिंह के सिर, ऊँट की पीठ तथा मेंढ़क के पैरों को तुमने अपने स्वप्न में एकाकार करके एक नये पदार्थ की रचना कर डाली है। सो वास्तव में हरेक वस्तु जो तुम स्वप्न में देखते हो, यहाँ तक नये नये प्रकार के दानव रूप पशु भी तुम जाग्रत अवस्था में देख चुके हो।"

जो मनुष्य पहले कभी रूस नहीं गया, जिसने कभी वहाँ का हाल नहीं सुना, वह स्वप्न में कभी सेंटपीटर्सबर्ग (रूस की राजधानी) नहीं पहुँचता। कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं होता। कभी कोई तत्त्ववेत्ता स्वप्न में चमार का काम नहीं करता! वह मोची का पड़ोसी भी हो और मोची को प्रायः अपने स्वप्नों में देखता भी हो, तो भी अपने को जूते टाँकने के काम में लगा हुआ कभी नहीं देखता।

जब यह सत्य है, तब मृत्यु रूपी दीर्घ निद्रा में आपको क्या आशा करनी चाहिए? मृत्यु और अगले जन्म के बीच का काल, दीर्घ निद्रा का समय, कैसे बीतेगा? वेदान्त कहता है: यह तुम्हारे स्वर्गों और नरकों में बीतेगा। यह तुम्हारे

वैकुंठ धामों और रौरव नरकों में वीतेगा। ये वैकुंठ, ये स्वर्ग और नरक क्या हैं? ये मृत्यु और भविष्यकालीन जन्म के बीच में पड़नेवाले स्वप्नलोक हैं। एक मनुष्य सच्चा ईसाई है, इसने बड़ा ही साधु और धार्मिक जीवन बिताया है, प्रत्येक रविवार को गिर्जाघर जाता रहा है, नित्य सायं को प्रार्थना करता रहा है। भोजन करते समय इसने ईश्वर से कल्याण की प्रार्थना की है, आजीवन ईसा की सूली अपनी छाती पर लगाये रहा है, जन्म से मृत्यु पर्यन्त जितनी देर जागा है, बराबर ईसा का ध्यान किया है, उठते-बैठते, सोते-जागते, हर घड़ी ईसा की पवित्र मूर्ति इसके सामने उपस्थित रही है। इसने ८०, ६० साल की लम्बी जाग्रत अवस्था को ईसा के प्रेम में लगाया है। इसका सारा जीवन ईसा के चिन्तन में बीता है। यह जीवन भर मृत्यु के बाद ईसामसीह के दक्षिण पार्श्व में बैठने की आशा लगाये रहा है, अपनी सारी ज़िन्दगी यही सोचता और स्वप्न देखता रहा है कि मृत्यु के बाद फरिश्ते, देवदूत और स्वर्गीय देव मेरा स्वागत करेंगे। भला, मृत्यु के अनन्तर उसकी कैसी स्थिति हो सकती है? वेदान्त के अनुसार, इस प्रकार का पक्का ईसाई मृत्यु के बाद अपने को ईसा के दाहिने पार्श्व में बैठा हुआ पावेगा। इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं! वह मृत्यु के उपरान्त अर्थात् इस मृत्यु और उसके बाद के जन्म, इन दोनों के बीच की उस दीर्घ-सुदीर्घ निद्रा में वह अपने को देवदूतों, स्वर्ग फरिश्तों से घिरा हुआ पावेगा, जो बराबर उसकी स्तुति कर रहे होंगे। कोई कारण नहीं कि वह अपने को उनके बीच में न पावे। वेदान्त कहता है, "ऐ ईसाइयो! यदि तुम भक्त हो, यदि तुम श्रद्धालु और सच्चे हो, तो तुम अपने धर्म ग्रंथों के

वचनों को पूरा होते देखोगे। किन्तु मुसलमानों और हिन्दुओं को बुरा न कहिये। (ये मुसलमान सच्चे, उत्साही और आप कह सकते हैं, कभी कभी कट्टर धर्मोन्मत्त होते हैं।) वही मुसलमान सच्चा मुसलमान है जिसने अपने जीवन के ७०-८० वर्ष की सम्पूर्ण जाग्रत अवस्था उसी तरह बितायी है जैसा मुहम्मद साहब का आदेश है, जो मुहम्मद साहब का चिन्तन और दर्शन करता रहा है, जो मुहम्मद के नाम पर दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता रहा है। मुसलमान २४ घंटों में पाँच बार नमाज पढ़ते हैं, बड़ी भक्ति और बड़े नियम के साथ, जो मुहम्मद के लिए अपनी जान देने को सदा तैयार रहा है, तब इस प्रकार के मुसलमान का क्या होगा ? जिसके जीवन का स्वप्न रहा है मुसलमानियत का हित करना, दुनिया के इस सिरे से उस सिरे तक मुहम्मद की कीर्ति फैलाना ! प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती। प्रकृति का नियम है कि जाग्रत अवस्था में हम जिसका स्वप्न देखते रहते हैं सोने पर भी वही वस्तु हमें स्वप्न में दिखाई देती है। वह जीवन भर मुहम्मद, बिहिश्त, आनन्द-कानन और हूरों एवं मद्य की नदियों का स्वप्न देखता रहा है, मौत के बाद उनकी प्राप्ति का वादा उसके धर्माचार्य ने किया था। वह सोचता रहा कि मरने के बाद उसे वैकुंठ के भव्य-भवनों और विलासिता की अटूट वस्तुओं की प्राप्ति होगी। वेदान्त कहता है, प्रकृति में ऐसा कोई नियम और शक्ति नहीं है जो उसे उस प्रकार के वैकुंठ का उपभोग करने से रोक सके जिसका स्वप्न वह आजीवन देखता रहा है। अवश्य उसको वैसा ही स्वर्ग देखने को मिलेगा, अपने धर्माचार्य के कथनानुसार वह अपने को वैसे

भी स्वर्ग में अवश्य पावेगा। अन्यथा नहीं हो सकता।

किन्तु वेदान्त कहता है, "ऐ मुसलमानो, तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम इस दुनिया के मनुष्यों को, मृत्यु के बाद, अपने धर्माचार्य पैगम्बर के हवाले कर दो, उन्हें केवल मुहम्मद की दया का भिखारी बनाओ। ईसाइयों को भी अपनी कल्पनाओं का उपभोग करने दो, उन्हें स्वतंत्रता दो, उन सबको, जो यूरोप, अमेरिका, भारत, जापान और चीन में मरते हैं मुहम्मद के अधीन करने की इच्छा न करो। तुम्हें यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि यदि वे मुहम्मद में विश्वास करते हैं तब तो ठीक है, अन्यथा उनका अमंगल होगा। ऐसा दावा सर्वथा निर्दयतामूलक है। यदि आप हजरत मुहम्मद के अनुयायी हैं, तो आपको उसी प्रकार का स्वर्ग मिलेगा जैसा आप चाहते हैं। यही बात सब धर्मों के सम्बन्ध में है। यदि आप अपने धर्म सिद्धान्तों एवं लक्ष्य के प्रति सच्चे हैं, तो मृत्यु के बाद आपको उसी प्रकार के स्वर्ग की प्राप्ति होगी जिसकी आप आशा करते हैं। वास्तव में मृत्यु के बाद स्वर्ग या नरक आप ही पर निर्भर है। मृत्यु के बाद आप ही स्वर्ग बनाते हैं और आप ही नरक बनाते हैं। वास्तव में स्वर्ग और नरक आपके स्वप्नमात्र हैं, जो आपको उस समय सत्य जान पड़ते हैं, इससे अधिक उनका कुछ मूल्य नहीं। आप यह तो जानते ही हैं कि स्वप्न देखते समय स्वप्न हमें सत्य प्रतीत होते हैं। अतएव मृत्यु के बाद ये नरक और स्वर्ग भी आपको सच्चे प्रतीत होंगे, किन्तु वास्तव में यथार्थतः स्वप्नों से अधिक ये कुछ भी नहीं हैं।

एक बात और कही जा सकती है। लोग कहते हैं कि हमारे धर्म ग्रंथों ने जो वचन हमें दे रक्खे हैं यदि वे मृत्यु के

बाद सत्य उतरें तो हमें सर्वकालीन सुख की प्राप्ति होगी।
हमारे धर्मग्रंथ मृत्यु के बाद हमें या तो शाश्वत कल्याण या
शाश्वत अकल्याण मिलने का वचन देते हैं। यह कैसी बात
है? इसका अर्थ क्या है? वेदान्त कहता है, निश्चितता क्या
चीज है? आप सोचते हैं कि निश्चितता एक ऐसी वस्तु है
जिसका सम्बन्ध समय, अनन्त समय से है। आप यह भी
जानते हैं कि जाग्रत अवस्था का समय स्वप्न अवस्था के
समय से भिन्न होता है। जाग्रत अवस्था में समय एक
प्रकार का होता है और स्वप्नावस्था में दूसरी प्रकार का।
तुम्हारी स्वप्नावस्था में कभी कभी कोई ऐसी वस्तु आपके
सामने प्रकट होती है जो आप को पाँच हजार वर्ष की
पुरानी मालूम हो। मान लो कि अपने स्वप्न में आप एक
पहाड़ देखते हैं। अब इसमें सन्देह नहीं कि यह पहाड़ स्वप्न
में आपने स्वयं तुरन्त ही वहाँ ला खड़ा किया है, जाग्रत
अवस्था के दृष्टि-बिन्दु से तो यही कहना पड़ेगा किन्तु स्व-
प्नावस्था के दृष्टि बिन्दु से यह पहाड़ पाँच हजार वर्ष
पहले का मालूम होता है। वेदान्त कहता है कि मरण-पश्चात्
आप अपने को स्वप्नवत् स्वर्ग में अनन्तकाल से पावेंगे;
स्वप्न-दर्शी अधिष्ठान के दृष्टि-बिन्दु से आप अपने को स्वर्ग
या नरक में अनन्त काल से रहते पावेंगे, किन्तु जाग्रत अव-
स्था के अधिष्ठान के दृष्टि बिन्दु से नहीं।

यह सत्य है कि इंजील ने आप को जो वचन दिये हैं उन
सब को आप यथार्थ पावेंगे, क्योंकि उस हालत में आप
ऐसा सोचेंगे कि हम सदा से इसी हालत में रहते आये हैं।
यह अवस्था आपको नित्य प्रतीत होगी। स्वप्नदर्शी दशा के
स्थितिबिन्दु से जो वस्तु नित्य है, वही जाग्रत दशा के दृष्टि-

विन्दु से नहीं के वरावर है। दोनों बातें सर्वथा पृथक हैं।

इस प्रकार आपको इस वात का कुछ पता लग जायगा कि वेदान्त किस तरह मृत्यु के वाद की अवस्था के विषय में विभिन्न धर्मों का समन्वय करता है।

अब आवागमन के सम्बन्ध में सोचिये! अच्छा, उन लोगों का क्या होता है कि जो मुक्त पुरुष, या मुक्त आत्मा कहलाते हैं। उनका आवागमन होता है, या नहीं। वेदान्त कहता है कि मृत्यु के वाद हरेक व्यक्ति को स्वर्ग और नरक के पड़ावों में होकर नहीं गुजरना पड़ता है, और न मृत्यु के वाद सवका पुनर्जन्म ही होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं होता। वे जिन्हें मुक्त आत्मा कहते हैं कौन हैं? इन्हें पुनर्जन्म के अधीन नहीं होना पड़ता। वे स्वतंत्र हैं। नरकों और स्वर्गों में कैद नहीं होते हैं। स्वर्ग या नरक सभी उन में हैं। सारे लोक उनमें है। यहाँ इनके सम्वन्ध में कुछ शब्द कहना जरूरी मालूम होता है।

स्वप्न में आप को दो प्रकार की वस्तुयें मिलती हैं—एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। ये सव नदियाँ, झील, पहाड़ और पहाड़िया, जिनसे आप स्वप्न में अपने आप को चारों ओर से घिरा हुआ पाते हैं, दृश्य पदार्थ हैं। और स्वप्नदर्शी दृष्टा (आत्मा) जो अपने को घिरा हुआ पाता है, पथिक जैसा तीर्थयात्री और द्रष्टा है। स्वप्न में आप जानते हैं कि अनेकों चीजें दिखाई देती हैं। उनमें से एक तो वह होती है जिसे आप 'मैं' 'मैं' कहते हैं, और दूसरी वस्तुयें वे हैं जिन्हें आप पदार्थ कहते हैं, जो 'मैं' 'मैं' से पृथक होती हैं। यह जिसे आप 'मैं स्वयं अथवा आत्मा' कहते हैं दृष्टा है, और दूसरी वस्तुयें जिन्हें आप मैं 'स्वयं नहीं' अथवा अनात्मा कहते हैं

दृश्य पदार्थ हैं। साधारणतः स्वप्न में ये दो मुख्य विभाग हुआ करते हैं, द्रष्टा और दृश्य। वेदान्त कहता है कि स्वप्न द्रष्टा और दृश्य आप ही की सृष्टि हैं, सच्चे आत्मा की सृष्टि, जाग्रत अवस्था के आत्मा की सृष्टि हैं। अंग्रेजी कोषकार डाक्टर जोहसन, जिसे आप जानते हैं, वाग्मियों का बादशाह कहलाता था, तर्क में परास्त होना कभी कबूल ही न करता था। अन्तिम बात सदा उसी की रहती थी, अन्तिम परिणाम सदा उसी के पक्ष में होता था। किसी ने उसके सम्बन्ध में यह कहा था कि यदि उसके तमंचे का निशाना चूक जाय तो वह उसके कुन्दे के बल से अपने प्रति-स्पर्धी को गिरा कर चित्त कर दे। सारांश यह कि वह सदा अपनी ही जीत रखता था, यदि कभी कोई तर्क में उससे प्रबल पड़ जाता, तो उससे बदला निकालने के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देता था। एक बार उसने स्वप्न देखा कि व्याख्यान वाचस्पति एडमंड बर्क ने उसे तर्क में हरा दिया है। जोहसन जैसे प्रकृति के मनुष्य के लिए यह स्वप्न महा भयंकर जू जू के समान था। इसने चौंका दिया, वह जाग उठा। बड़ी बेचैनी में पड़ गया, उसे किसी तरह नींद ही न आती थी। आप जानते हैं कि आपके चित्त का यह गुण है कि वह सदा विश्राम चाहता है। जब वह बहुत व्याकुल होता है तो शान्ति की प्राप्ति उसके लिए अनिवार्य हो जाती है। इसका कारण यह है कि शान्ति ही चित्त का असली निवास-स्थल है, अपना घर वह ढूंढ़ता ही चाहे। इसलिए किसी न किसी तरह शान्ति का अन्वेषण डा० जोहसन के लिए बहुत जरूरी था। अन्त में उसने इस विचार से अपने को शांत किया कि यदि मैं एडमंड बर्क से

पास जाऊँ और कहूँ—रे वर्क ! मेरे स्वप्न में किस तर्क
तुमने मुझे हराया है, तो वह उस तर्क को दोहरा न सकेगा
स्वप्न में जो प्रबल तर्क उसने दिये हैं और जिन दुर्बल तर्कों
मेरी हार हुई, उनको मैं ही जानता हूँ। मैं दोनों पक्ष जान
हूँ। मं विजयी और पराजित दोनों पक्षों को खूब जानता
किन्तु एडमंड वर्क उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। क्यों
कि मेरे ही दिमाग से दोनों पक्ष के तर्क पैदा हुए हैं, मैं
स्वयं एक ओर तो एडमंड वर्क के रूप में प्रकट हुआ औ
दूसरी ओर पराजित जोह्नसन के रूप में।

बस, वेदान्त कहता है कि अपने स्वप्नों में आप स्व
ही एक ओर तो दृश्य पदार्थों के रूप में प्रकट होते हैं औ
दूसरी ओर दृश्य पदार्थों के द्रष्टा बन जाते हैं। सब तुम
हो; वह तुम्हारी असली आत्मा है जो एक ओर तो पहाड़
नदियाँ, जंगलों और पशु-पक्षियों के रूप में प्रकट होती
और दूसरी ओर चकित होनेवाले तीर्थयात्री के रूप में
तुम्हीं द्रष्टा हो और तुम्हीं दृश्य हो।

इस प्रकार वेदान्त के अनुसार, मृत्यु के अनन्तर आ
वाली निद्रा में, आप ही नरक और आप ही स्वर्ग हो, औ
आप ही वह मनुष्य हो जो स्वर्ग के सुख भोगता है
नरक के दुख उठाता है। बस, इस तत्व का अनुभव क
और स्वतंत्र हो जाओ।

एक ऐसी नारी थी जिसे वेदान्त का यह ज्ञान प्राप्त थ
एक दिन एक हाथ में अग्नि और दूसरे हाथ में शीतल ज
लिये वह सड़क पर जा रही थी। लोगों ने उसके पास आ
कर पूछा; "एक हाथ में ठंढा पानी और दूसरे में अग्नि
चलने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है?" जिस मनुष्य ने उस

यह प्रश्न किया था वह एक धर्म-प्रचारक था। नारी ने कहा, "इस अग्नि से मैं आपके स्वर्ग और बैकुंठ में आग लगाऊँगी, और इस जल से मैं आपके नरक को ठंडा करूँगी।" जो मनुष्य सचमुच जानता है कि वह स्वयं नरक और स्वर्ग स्वर्ग है, उसके लिए न आपके स्वर्ग से कोई प्रलोभन होता है और न आपके नरक से कोई भय। वह उनसे परे हो जाता है। धर्म प्रचारक निरुत्तर हो गया अब इस दुनिया पर आइये और जाग्रत अवस्था के बारे में सोचिये, जिस पर आप इतने लट्टू रहते हैं। वेदान्त सिद्ध करता है कि यह स्थूल ठोस मालूम पड़नेवाली दुनिया भी, यह पत्थर जैसी कठोर दुनिया भी असत्य है, यह तुम्हारे स्वप्नों से भिन्न नहीं। भेद केवल दर्जे का है, तुम्हारी जाग्रत दुनिया भी एक स्वप्न है, यह एक ठोस और घनीकृत स्वप्न है। वेदान्त कहता है कि तुम्हारी इस सुदृढ़ प्रतीत होनेवाली दुनिया में द्रष्टा और दृश्य पदार्थ तुम्हारी सच्ची आत्मा की सृष्टि है, इससे अधिक कुछ नहीं। यह तुम्हारी सच्ची आत्मा ही है, जो एक ओर तो नगर, कस्बे, नदियां, तथा पहाड़ बन जाती है, और दूसरी ओर इस दुनिया में एक भूला-भटका, निराश्रय बटोही। जाग्रत अवस्था में भी जो द्रष्टा के रूप में प्रकट होता है वही दृश्य पदार्थ है, और जो दृश्य पदार्थ के रूप में प्रकट होता है वही द्रष्टा है।

मृत्यु में केवल द्रष्टा का बदला जाता है, और पदार्थ ज्यों के त्यों रहते हैं जैसे तुम स्वप्न देख रहे हो। मान लो कि तुम स्वप्नावस्था में अपने को बर्लिन शहर में पाते हो यद्यपि वास्तव में तुम सनफ्रांसिस्को में सोये हुए थे। यह तुम्हारे स्वप्न में बर्लिन क्या है और बर्लिन में रहनेवाले

रखने वाले सारे दृश्य क्या हैं? ये सब दृश्य पदार्थ थे और तुम बर्कले में रहने वाले द्रष्टा। अब यहां ध्यान दीजिये—कभी कभी हमें दोहरी निद्रा आती है, कभी कभी हमें नींद में स्वप्न में नींद आजाती है, ठीक वैसे जैसे चक्र-वृद्धि ब्याज होता है। यह एक स्वप्न में स्वप्न या दोहरा स्वप्न होता है। जैसे यदि तुम्हें बर्कले में निद्रा आती है, तो यह दोहरी निद्रा का दृष्टान्त है। क्या होता है? तुम फिर जागते हो। कभी कभी स्वप्न में हम जिस स्थान पर सोते हैं उसी स्थान पर एक लम्बे स्वप्न में फिर जाग पड़ते हैं। इसी तरह यहाँ तुम बर्कले लेटे हुए थे, स्वप्न में तुम अपने को बर्कले शहर में देखते हो। बर्कले शहर पदार्थ दृश्य है और तुम द्रष्टा हो। फिर द्रष्टा सो गया, दृश्य पदार्थ बर्कले वहीं बना रहा, द्रष्टा मानो दबक गया और फिर कुछ काल बाद उठ बैठा। तुमने अपने को फिर बर्कले में पाया, किन्तु तुम्हारी नींद ठीक जैसी की तैसी जारी रहती है। अब बर्कले से तुम लोजेंजिलस गये। वहाँ लोजेंजिलस में तुम्हारे मित्र का मकान आदि पदार्थ दृश्य हुए और तुम द्रष्टा। मानो वहाँ द्रष्टा फिर सो जाता है और फिर जागता है। लोजेंजिलस में एक झपकी लेने के बाद तुम लिक आबजर्वेटरी (वेधशाला) में भी एक झपकी लेने लगते हैं। लिक आबजर्वेटरी दृश्य हुई और तुम द्रष्टा हुए। कुछ देर के लिए द्रष्टा सोकर दबक जाता है, और फिर उठता है। लिक आबजर्वेटरी से तुम ग्रीष्मावास में जाते हो, और तुम जब ऐसा स्वप्न देख रहे हो तब तुम्हारे कुटुम्ब के कोई सज्जन आकर तुमको जगा देता है। यहाँ आपही ग्रीष्मावास थे और आपही उस ग्रीष्मावास का सुख भोगनेवाले व्यक्ति भी। जब आप जाग पड़ते हो तो द्रष्टा और दृश्य

पदार्थ दोनों बल बसते हैं, दोनों गायब हो जाते हैं। द्रष्टा और दृश्य दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। किन्तु जब आप स्वप्न में सोते और उठते थे, तब केवल द्रष्टा द्वकना था और दृश्य पदार्थ ज्यों के त्यों बने रहे थे। तुम असलियत में पूरे नहीं जागे थे।

अब इस दृष्टान्त को घटाइये। वेदान्त के अनुसार यह विश्व, यह विशाल संसार भी एक स्वप्न है। इस विशाल दुनिया के स्वप्न में सारा देश, काल और वस्तु (कार्य-कारण सम्बन्ध) यह समस्त विश्व जिसे आप अपने बाहर देखते हैं, दृश्य पदार्थ है; और जिसे आप "मेरा शरीर", मेरा तुच्छ अपना आप कहते हैं, वह भी पदार्थ जैसा है। जब एक साधारण मनुष्य मर जाता है, तब क्या होता है? माया या अविद्या का लम्बा स्वप्न भंग नहीं होता ज्यों का त्यों चलता है, वह मरता है। मृत्यु का अर्थ केवल द्रष्टा का द्वक जाना, लुप्त हो जाना है, दृश्य पदार्थ वहीं का वहीं बना रहता है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। सो जब एक मनुष्य यहाँ मरता है, और दूसरे जन्म में फिर जगता है तो वह वही संसार अपने चारों ओर पाता है जिसे वह मरते समय बहुत प्यार करता था। मान लो कि इस दूसरे जन्म में यह मनुष्य ८०-६० साल जीता है, और फिर मर जाता है। दूसरे जन्म में जो बर्कले या लॉजेंजिलस शहर के तुल्य है, दृश्य पदार्थ वही बना रहता है, केवल द्रष्टा कुछ देर के लिए लुप्त हो जाता है। परिणाम मे कुछ समय के बाद वह फिर पैदा होता है। इस तीसरी जिन्दगी में वह फिर ६० या ८० वर्ष जीता है, और तदुपरान्त मर जाता है। यहाँ उदाहरण की भाँति दृश्य पदार्थ जो लिक वेधशाला

के समान है, वह ज्यों का त्यों बना रहता है; और दृष्टा दबक कर तिरोधान हो जाता है, और पुनः प्रकट होता है। इस प्रकार जन्म और मृत्यु का यह सिलसिला तब तक जारी रहता है जब तक दृष्टा और दृश्य दोनों एक साथ ही न दब जायँ, लुप्त न हो जायँ। जब तक दुनिया आपको अपने से भिन्न मालूम पड़ती है, तब तक आप इस संसार में कैदी हैं, आप सदा आवागमन, इस जन्म और मृत्यु के चक्र में बँधे रहेंगे। तुम्हारे इर्दगिर्द यह पहिया और तुम्हें कुचलता ही रहेगा, तुम्हें कभी ऊपर और कभी नीचे ले जायगा। आपको कभी विश्राम या शान्ति न मिल सकेगी।

अब वेदान्त की बात सुनिये। बचता वही है जो अपने आप ही में दृष्टा और दृश्य दोनों पा लेता है। जब जागने पर हमें डाक्टर जाह्नसन की तरह इस ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है कि हम ही स्वप्न के दृष्टा हैं, और हम ही पदार्थ, तब हम मुक्त हो जाते हैं। दुनिया मेरा शरीर है, सम्पूर्ण विश्व मेरा शरीर है, जो ऐसा कह सकता है वही आवागमन के बन्धन से मुक्त है। वह कहाँ जा सकता है, कहाँ से आ सकता है? कोई स्थान ऐसा नहीं जो उससे परिपूर्ण न हो. वह तो अनन्त है। वह कहाँ जायगा? कहाँ से आवेगा? सारा विश्व ब्रह्मांड उसमें है। वह प्रभुओं का प्रभु है, आवागमन के बन्धन से मुक्त। भारतवर्ष का हरेक बच्चा माता के दूध के साथ मानो इस एक इच्छा को पिया करता है कि मैं आत्म - अनुभव प्राप्त करके आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ, मुझे बार-बार जन्म मरण में फँसना पड़े और ईश्वरीय ज्ञान, ब्रह्मानुभूति में निवास कर परमानन्द और परम कल्याण की प्राप्ति कर सकूँ।

मिलटन की जीवनी में एक महिला के सम्बन्ध में, उसकी स्त्री के सम्बन्ध में, एक बड़ी सुन्दर कथा दी हुई है। उस स्त्री ने स्वप्न में अपने पति को देखा, उसका हृदय पति के लिए छटपटाने लगा। उसने उसे अंक में भरकर कहा, "मेरे प्यारे स्वामिन्! मैं सर्वथा तुम्हारी हूँ, पूर्णतः तुम्हारी।" ठीक इसी क्षण उसकी आँख खुल गई। और उसने देखा कि जो कुत्ता उसके पलंग पर सोया हुआ था अपना शरीर उसके शरीर से सटा रहा है। स्त्री के जगने पर कुत्ता बिस्तरे से उछल कर भागने लगा। वास्तव में कुत्ते की दाब या लिपटाव से उसे स्वप्न में अपने पति की दाब या लिपटाव की प्रतीति हुई थी। यदि कुत्ता अपने पूर्ण बल से चिपटा होता और वह जागी न होती तो उसे एक महान् हिमालय अपनी छाती पर प्रतीत होता। वेदान्त कहता है जब तक अविद्या का कुत्ता, माया का कुत्ता तुम्हें नीचे दबोचे रहता है, तबतक तुम्हारे स्वप्न निरन्तर कभी अच्छे से बुरे और कभी बुरे से अच्छे रूप में बदलते रहते हैं, कभी तुम्हें पति की प्रतीति होगी और कभी प्रबल हिमालय की। आँसू और मुसक्यान के बीच तुम सदा लटकन की तरह भूलते रहोगे, संसार तुम्हारे दिल पर बोझ समान पड़ा रहेगा, तुम्हें चैन का नाम न मिलेगा। वेदान्त कहता है, "अविद्या के इस कुत्ते से अपना पिण्ड छुड़ाओ, अपने को सर्वशक्तिमान परमेश्वर बनाओ, अपने को ब्रह्म बनाओ, ब्रह्मरूप से अनुभव करो और तुम एकदम मुक्त हो।

चाहे हजारों रूपों में तू मुझे चकित करे, तथापि ऐ मेरे प्यारे! मैं तुझे अच्छी तरह पहचानता हूँ, तू अपने चेहरे को चाहे आड़ से छिपावे, पर मुझसे छिप नहीं सकता।

वेदान्त और समाजवाद

सबसे पहले समाजवाद (Socialism) नाम के विषय में ही कुछ कहना है, राम उसे व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद (Individualism) कहना अधिक पसन्द करेगा। समाजवाद का नाम समाज के शासन की कल्पना को प्राधान्य देता है, किंतु राम कहता है कि सत्य का यथार्थ तत्व तो यह है कि व्यक्ति को ही सारी दुनिया, सम्पूर्ण विश्व और ब्रह्मांड के समस्त प्राधान्य दिया जाय। जहाँ न कोई हैरानी हो, न कोई चिन्ता और न कोई झंझट। इसी को राम व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद कहता है, लोगों की यदि इच्छा हो तो वे उसे समाजवाद, समष्टिवाद चाहे जो कहें पर व्यक्ति के स्थिति बिन्दु से वेदान्त की शिक्षा ऐसी ही है।

दूसरी बात जिस पर ध्यान देना है, यह है कि यथा कथित समाजवाद का लक्ष्य पूंजीवाद के गढ़ को ढा देना है। और इस बात में वह वेदान्त के लक्ष्य से पूर्णतः एकमत है, क्योंकि वेदान्त भी आपको साधारणतः स्वामित्व के हर प्रकार के भाव से रहित कर देना चाहता है। वेदान्त सम्पत्ति के भाव, संग्रह के भाव तथा स्वार्थपूर्ण अधिकार के भाव को हवा में उड़ा देना चाहता है। यही वेदान्त है और यही समाजवाद है। दोनों के लक्ष्य एक हैं।

वेदान्त समता की शिक्षा देता है, और यही लक्ष्य निस्संदेह सच्चे समाजवाद का है। समाजवाद में भी बाहरी सम्पत्तियों के लिए कोई सम्मान, कोई आदर, और कोई इज्जत नहीं है। यह आदर्श बहुत ही विकट और बड़ा ही कठोर सा जान पड़ता है, किन्तु जब तक मनुष्य सम्पत्ति के भावों और अधिकारों को, मोह और आसक्ति को सम्पूर्णतः त्याग नहीं देता, तब तक पृथिवी पर कोई सुख और आनंद विद्यमान नहीं हो सकता। परन्तु समाजवाद केवल इतना ही चाहता है कि मनुष्य इन सब बातों को त्याग दे, और वेदांत ऐसा करने के लिए एक महान् कारण भी बतलाता है। यथाकथित समाजवाद तो वस्तुओं के केवल ऊपरी स्तिह, बाह्य रूप का ही अध्ययन करता है, और इस परिणाम पर पहुँचता है कि मानव जाति को समता, बन्धुत्व और प्रेम के आधार पर जीवन बिताना चाहिए। वेदान्त इस दृश्यमय जगत् का अध्ययन स्वाभाविक और आन्तरिक दृष्टिकोण से करता है। वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना अपनी आत्मा, आन्तरिक स्वरूप के विरुद्ध पापाचार करना है। वेदान्त के अनुसार मनुष्य का एकमात्र अधिकार केवल अर्पण करना है, लेना या माँगना-याचना नहीं। यदि तुम्हारे पास देने को और कुछ नहीं है, तो अपनी देह ही कौओं के खाने के लिए दे दो। जो कुछ तुम्हारे पास है उसका कोई मूल्य नहीं, उनके कारण तुम्हें कोई भी धनी नहीं कह सकता। जो कुछ तुम दे डालते हो इसी से तुम अमीर होते हो। हरेक व्यक्ति काम करे किसी वस्तु का स्वामी बनने के लिए नहीं, किन्तु हरेक वस्तु को दे डालने के लिए। दुनिया सबसे बड़ी भूल यह करती है कि

वह लेने में सुख का भाव मानती है। वेदान्त चाहता है कि आप सत्य को पहचानें और अनुभव करें कि सुख सबका सब देने में है, और लेने या माँगने में नहीं। ज्योंही तुम माँगने या भिक्षा की वृत्ति को अपने अन्दर प्रवेश होने देते हो, उसी क्षण तुम अपने आपको संकीर्ण या संकुचित बना डालते हो और अपने अन्दर के आनन्द को बाहर निचोड़ देते हो। आप चाहे जहाँ हों, दाता के रूप में काम करें और भिखारी के रूप में कदापि नहीं, तभी आपका काम विश्वव्यापी काम होगा और उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की गन्ध न पैठ सकेगी।

भारत के वेदान्तवादी साधु आज भी ऐसा समाजवादी जीवन हिमालय के पर्वतों पर व्यतीत करते हैं, ऐतिहासिक काल के पूर्व से ही वे ऐसा जीवन व्यतीत करते आये हैं। वे कड़ी मेहनत करते हैं, वे निठल्ले नहीं रहते, वे आरामतलब और विलासी नहीं होते, क्योंकि उन्हीं के प्रयत्नों से भारत के उस विशाल और महान् साहित्य की सृष्टि है। यही लोग भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि, नाट्यकार, वैज्ञानिक, तत्वज्ञानी वैयाकरणी, गणितज्ञ, ज्योतिर्विद, रसायनशास्त्री, आयुर्वेदज्ञ हुए हैं, और ये वे लोग हैं जिन्होंने रुपया कभी छुआ नहीं। ये ही वे लोग हैं जिन्होंने यथासाध्य कठोरतम जीवन व्यतीत किया है। इससे समाजवाद पर लगाया जानेवाला यह कलंक धुल जाता है कि वह लोगों को कायर, आलसी और परावलम्बी बना देगा। काम वही खूब कर सकता है जो अपने को स्वतन्त्र समझता हो।

वेदान्त और समाजवाद के भी अनुसार आपको अपने

बच्चों, स्त्री, घर-बार या अन्य सभी वस्तुओं पर अधिकार जमाने का कोई हक नहीं है।

सभ्य समाज के माथे पर यह एक कलंक का टीका लगा हुआ है कि स्त्री वाणिज्य की वस्तु बनी हुई है और मनुष्य उसी अर्थ में उस पर अपना अधिकार जमाता और शासन करता है, जैसे वृक्षों पर, घरों पर या रुपया-पैसा पर। इस प्रकार सभ्य समाज में नारी को जड़ पदार्थों जैसी स्थिति हो गई है, तथा नारी के हाथ और पैर दोनों बांध दिये गये हैं जबकि मनुष्य अपने कामों में स्वतंत्र है। स्त्री कभी एक मनुष्य की सम्पत्ति हो जाती है, कभी दूसरे की। समाजवाद और वेदान्त के भी अनुसार यह स्थिति अति विचित्र जान पड़ती है किन्तु नारी को अपनी स्वाधीनता ठीक उसी तरह पहचानना और पकड़ना चाहिए जिस तरह मनुष्य पहचानता और पकड़ता है। वह उतनी ही स्वाधीन है जितना कि मनुष्य। हाँ, यदि मनुष्य को किसी वस्तु पर अपने अधिकार रखना ठीक नहीं है तो नारी को भी किसी वस्तु पर अधिकार न जमाना चाहिए। अपना आनन्द स्थिर रखने के लिए उसे भी अपने पति पर स्वत्व जमाने का कोई अधिकार न होगा। यहाँ पर समाजवाद के विरुद्ध एक गंभीर आपत्ति उठती है। यदि समाजवाद नर और नारी को पूर्ण स्वाधीनता दे देता है तो वह समाज को पशुता की अवस्था में ले आवेगा, और दुनिया को लम्पटों और दुराचारियों की दुनिया बना देगा। राम कहता है कि नर और नारी के लिए स्त्री-पुरुष के संबंध के विषय में इससे उत्तम और कुछ हो नहीं सकता। गाय और भैंस जैसे पशु अपने कामव्यवहार में बड़े ही बुद्धि-संगत होते हैं, अपने इस बर्ताव में वे बड़े ...

ऋतु-संगत और युक्ति-संगत होते हैं। यदि मनुष्य भी उसी ढँग से वर्ताव करे, तो सभ्य समाज की सारी कामुकता और मनोविकारों का अन्त हो जाय।

कैसा आश्चर्य है! कामासक्त पुरुष को पशु कह कर हम कैसी भयंकर भूल करते हैं, जब कि पशु निस्सन्देह मनुष्यों से कम कामासक्त होते हैं। उनमें अनुचित काम-विकार का लेशमात्र नहीं होता। जब उन्हें सन्तानोत्पत्ति करना होती है, तभी वे मैथुन करते हैं। मनुष्य का यह हाल उलटा है। जो मनुष्य शान्त और विकारहीन है वह कामी मनुष्य की अपेक्षा पशुओं जैसा जीवन अधिक व्यतीत करता है। अतः कामासक्त मनुष्य को पशु नहीं कहना चाहिये, पशु तो आजकल का सभ्य मनुष्य है—यह हमारी सभ्यता की विशेषता है, न कि प्रारम्भिक असभ्य समाज की। असभ्य लोग तो स्वाभाविक और बुद्धि-संगत होते थे। उनका हरेक कार्य ऋतु में और नियत समय पर होता था। वेदान्त और समाजवाद के अनुसार जितनी अधिक विकार हीनता और नैसर्गिक शान्त अवस्था की प्राप्ति होगी, उतनी इन उत्तेजक मनोविकारों की कमी होगी, और साथ ही साथ मनुष्य में पति या स्त्री और पिता या पुत्र का स्वत्वाधिकार जमानेवाला भाव भी न रहेगा।

"हमें इस बच्चे या इस स्त्री अथवा इस बहन की चिन्ता करना है," निरन्तर ऐसी भावना का बोझ मनुष्य को अपने अध्ययन या अपने ब्रह्मत्व का अनुभव करने में बाधक होता है। समाजवाद या वेदान्त तुम्हारी छाती पर से ऐसी दशा में से यह बोझ हटा देना चाहता है, तुम्हें स्वच्छन्द कर देना चाहता है। जब तुम किसी अन्वेषण के सागर में उतरते

हो, तो तुम विजय-पताका उड़ाते हुए बाहर निकलते हो। जब तुम किसी अनुसन्धान की रंगभूमि में प्रवेश करते हो, तो तुम पूर्ण कृतकार्य निकलते हो. यदि तुम स्वच्छन्दता से, पाशमुक्त होकर सब प्रकार के बन्धनों और चिन्ताओं से मुक्त होकर काम करते हो, हर समय तुम अपने को स्वतन्त्र समझते हो, यदि तुम निश्चयपूर्वक इस विशाल जगत् को अपना घर समझते हो।

हमें करना केवल इतना ही है कि लोग यह समझ जायें कि उनके रोगों और विपत्तियों की एकमात्र दवा दूसरों पर स्वत्व जमाने की कल्पना को दूर कर देना है। एकबार जब भारी जनसमुदाय इस बात को समझ लेगा तो समाजवाद सारे संसार में वन-वह्नि की तरह फैल जायगा। यही वेदान्त-समाजवाद उन सब रोगों की एकमात्र औषधि है। एक बार जहाँ यह वेदान्त-समाजवाद दुनिया की समझ में आगया तहाँ यह स्वर्ग बन गई। उस समय हमारी उल्टी दृष्टि तथा आस पास की परिस्थिति के परिच्छिन्न ज्ञान से उत्पन्न होनेवाली आपत्तियाँ गायब हो जायँगी। इस समाजवाद की दशा में बादशाहों, राष्ट्रपतियों, धर्माचार्यों की जरूरत नहीं है, सेनाओं की भी कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वविद्यालयों की भी कोई जरूरत न पड़ेगी, क्योंकि हरेक मनुष्य स्वयं अपना विश्वविद्यालय आपही होगा। हम ऐसे पुस्तकालय रक्खेंगे जिनमें हरेक मनुष्य जाकर पढ़ सकेगा। अध्यापक न होंगे, सिवाय छोटे बच्चों के लिए। डाक्टरों की जरूरत न होगी, क्योंकि वेदान्त के उपदेशानुसार स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने से आप कभी बीमार ही नहीं पड़ सकते, फिर आपको डाक्टर क्यों चाहिए! लोग स्वाद जा करेंगे, जहाँ

जी चाहेगा घूमेंगे, आज की तरह अपने भाइयों का डर उन्हें न होगा, वे भलाई करेंगे और वास्तव में हितकारी अध्ययनों, तत्वज्ञानों और अध्यात्म के अनुसन्धानों में अपना समय लगावेंगे, जिससे अपने ब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व का पूर्णतम अनुभव करते हुए वे जीवनमुक्त हो सकें।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

स्वामी राम के वचन

भारतवर्ष का पतन वेदान्त के अभाव से हुआ।

\+ + +

वेदान्त हमें शक्ति और बल प्रदान करता है: न कि कम-जोरी और शिथिलता।

\+ + +

वेदान्त रसायन विद्या के समान प्रयोगात्मक विज्ञान है।

\+ + +

यदि बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करता तो वह वेदान्त के विषय में कुछ नहीं जान सकता।

\+ + +

जंगलों में वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करके साधक को संसार में आकर काम करना चाहिए और उसे अपने दैनिक जीवन में उतारना चाहिए।

\+ + +

वेदान्त निराशावाद नहीं है, वह तो आशावाद का सर्वोच्च शिखर,!

\+ + +

यदि आप वेदान्त का साक्षात् कर लेते हैं तो नरक भी आपके लिए स्वर्ग बन जायगा। जीवन सचमुच जीने योग्य होगा, कभी कोई चिन्ता, कोई परेशानी नहीं हो सकती। चित्त सदैव एकाग्र, प्रसन्न, तत्पर और प्रफुल्ल रहेगा।

\+ + +

तुम परम निर्गुण सत्य हो जिसमें यह समस्त संसार, समस्त ब्रह्मांड केवल लहरों या भवरों के समान है। उस सत्य का साक्षात् करो और स्वतन्त्र हो जाओ सर्वथा मुक्त।

\+ + +

राम आपको स्वतन्त्रता, विचार-स्वतन्त्रता, कार्य-स्वतन्त्रता प्रदान करता है। आपको बन्धन-मुक्त करता है।

\+ + +

अपने विश्वासों के पीछे मरने की अपेक्षा उनके लिए जीवित रहना कठिन है।

\+ + +

यदि दर्शनशास्त्र का लक्ष्य यह हो कि हम शान्तिपूर्वक मृत्यु का आलिंगन कर सकें तो उसके लिए वेदान्त दर्शन के अध्ययन से बढ़कर और कोई तैयारी नहीं हो सकती।